समाययौ ब्रह्मचारी द्वितीयो गाधिजाश्रमात् । तं दृष्ट्वा पूर्ववद्रामः प्रत्युद्गम्य द्विजोत्तमम् ॥५१॥
आसनेऽन्ये चोपवेश्य पूजयामास सादरम् । ततस्तत्पुरतः स्थित्वा तं प्रपच्छ रघूत्तमः ॥५२॥
यदर्थं श्रमितोऽसि त्वं तन्ममाज्ञाप्यतां मुने । तद्रामवचनं श्रुत्वा ब्रह्मचारी वचोऽब्रवीत् ॥५३॥
राम त्वां गाधिजेनाहं प्रेषितोऽस्मि जवेन हि । यष्टुकामो महायज्ञं विश्वामित्रोऽस्ति राघव ॥५४॥
त्वं तेनाकारितश्चासि प्रस्थानं कुरु सत्वरम् । ब्रह्मचारिणोस्तद्वाक्यमुभयोः स रघूत्तमः ॥५५॥
श्रुत्वा विहस्य प्रोवाच द्विजाभ्यां वै तथेति च । तदाश्चर्यं जनाः प्रापुः प्रोचुस्ते तु परस्परम् ॥५६॥
कथमद्योभयोः साकं रामो गच्छति तन्मखौ । केचिदूचू राघवाय किमशक्यं तथाऽत्र हि ॥५७॥
यथा स्त्रीणां वने पूर्वं यथाऽस्माकं हि दर्शनम् । यथा गतोऽस्ति लंकायाः पुरा भरतदर्शने ॥५८॥
भिन्नरूपेण रामेण सर्वेषामर्पितं पृथक् । तद्वदत्रापि द्विविधा भूत्वा गत्वा च तन्मखौ ॥५९॥
किमाश्चर्यमिदं चाद्य किमशक्यं परात्मनि । एवं वदत्सु पौरेषु लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥६०॥
अद्यैवाहं गमिष्यामि भोजनानन्तरं बहिः । वासोगेहानि नेयानि बहिः सेनां प्रचोदय ॥६१॥
आज्ञापनीयं वाद्यानां ध्वनिं कर्तुं हि सेवकान् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः ॥६२॥
कारयामास वाद्यानां ध्वनिं दूतैश्च संभ्रमात् । सैन्यं प्रचोदयामास बहिर्वासोगृहाण्यपि ॥६३॥
नेतुमाज्ञापयामासुर्दूतास्ते निन्युरादरात् । ततो रामोऽपि विप्राभ्यां गृहं गत्वा विदेहजाम् ॥६४॥
सर्वं वृत्तं निवेद्याथ कृत्वा विप्रैर्हि भोजनम् । सीतां च करिणीपृष्ठे बंधुनाऽऽरोहयत् प्रभुः ॥६५॥
पुष्पके पौरनारीश्च करिणीषूर्मिलादिकाः । समारोहयच्छ्रीरामः स्वयं तस्थौ गजोपरि ॥६६॥
लक्ष्मणाद्या गजेष्वेव ते समारुरुहुस्तदा । निनेदुश्चाथ वाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः ॥६७॥

ब्राह्मण कह ही रहा था कि इतनेमें एक दूसरा ब्रह्मचारी विश्वामित्रके आश्रमसे आ पहुँचा। पहलेकी तरह रामने उसका भी स्वागत किया ॥ ४८-५१ ॥ उसे एक दूसरे आसनपर बिठाकर उन्होंने उसकी भी उसी तरह पूजा की। इसके अनन्तर उसके भी आगे बैठकर उन्होंने कहा कि जिस कार्यके लिए आपने कष्ट किया हो, मुझे आज्ञा दीजिए। रामकी बात सुनकर ब्रह्मचारीने कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे राम! मुझे विश्वामित्र-जीने आपके पास भेजा है। वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं। उसमें उन्होंने आपको बुलाया है। इसलिए आप शीघ्र प्रस्थान कीजिए। रघूत्तम राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके सन्देश सुनकर मुसकराए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उन दोनोंसे कहा—"अच्छा चलेंगे"। इस बातको सुनकर सभाके लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे परस्पर कहने लगे—॥ ५६ ॥ राम इन दोनोंके साथ जाकर कैसे उन दोनों यज्ञोंमें सम्मिलित हो सकेंगे। किसीने कहा कि रामके लिए अशक्य कौन-सा काम है, वे क्या नहीं कर सकते? ॥ ५७ ॥ जैसे वनमें उन्होंने उन हजारों स्त्रियोंको हजारों रूपोंसे दर्शन दिया था। जिस प्रकार लंकासे लौटकर आनेपर भरत-मिलापके समय प्रत्येक मनुष्यसे मिले थे ॥ ५८ ॥ उसी तरह इस समय भी राम अपना दो रूप बनाकर दोनों जगह चले जायँगे ॥ ५९ ॥ इसमें आश्चर्य करनेकी बात ही कौन-सी है। जिसकी आत्मा इतने ऊँचे दर्जेपर पहुँच गयी है और जो साक्षात् परमात्मा है, उसके लिए अशक्य कोई काम नहीं है। इस तरह लोग आपसमें बतकही कर रहे थे, तभी रामने लक्ष्मणसे कहा—॥ ६० ॥ लक्ष्मण! आज ही भोजन करनेके पश्चात् हमलोग बाहर चलेंगे। तम्बू कनात आदि भेजवा दो और सेना भी तैयार करवाओ ॥ ६१ ॥ बाद्य बजानेके लिए सेवकोंको आज्ञा दे दो। रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने "तथास्तु" कहा ॥ ६२ ॥ तत्काल उन्होंने दूतोंको तुरही बजानेकी आज्ञा दी। लक्ष्मणके आज्ञानुसार सेवक सब सामान ठीक करने लगे। इसके अनन्तर राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके साथ सीताके महलोंमें गये ॥६३॥६४॥ जानकीजीको भी निमन्त्रणका समाचार सुनाया और दोनों ब्राह्मणोंके साथ भोजन किया। फिर बन्धुओंके साथ सीताको हाथीपर सवार कराया। बाकी पुरवासिनी नारियोंको पुष्पक विमानपर एवं उर्मिलादिको हाथीपर बिठलाया। उन सबको सवारियोंपर बिठाकर स्वयं भी एक हाथीपर सवार हुए और लक्ष्मणादि भी हाथीपर बैठे। उस समय विविध प्रकारके बाजे बजने लगे और

तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च प्रजगुः सुस्वरं नटाः । एवं समाययौ रामस्तदा वासोगृहाणि सः ॥६८॥
तां रात्रिं समतिक्रम्य प्रभाते रघुनन्दनः । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा गजारूढोऽभवत्पुनः ॥६९॥
क्रोशद्वयं ततो गत्वाऽग्रे द्वौ मार्गौ निरीक्ष्य च । ससैन्ये द्वे निजे देहे चकार रघुनन्दनः ॥७०॥
तदा द्वयोर्मार्गयोश्च ससैन्यौ सीतया युतौ । पुत्राभ्यां बन्धुभिर्युक्तौ द्वौ रामौ सकला जनाः ॥७१॥
ददृशुः पुष्पके द्वे च द्वौ जातौ ब्रह्मचारिणौ । वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी त्वेकः स स्वं गुरुं ययौ ॥७२॥
विश्वामित्राध्वरं चान्यः श्रीरामेण मुदा युतः । गाधिजेयो ब्रह्मचारी त्वेकः स स्वं गुरुं ययौ ॥७३॥
वाल्मीकेरध्वरं चान्यः श्रीरामेण ययौ मुदा । एवं ते सास्मेयांताः सर्वदेहद्वयानि हि ॥७४॥
निजानि ददृशुस्तत्र विस्मयाविष्टमानसाः । एवं तौ रघुवीरौ हि तयोर्मुन्योस्तदाश्रमे ॥७५॥
ससैन्यौ सीतया युक्तौ बन्धुपुत्रसमन्वितौ । जग्मतुर्वै मुनिभ्यां हि प्रत्युद्गम्यातिपूजितौ ॥७६॥
तयोर्यागौ विधायाथ परिपूर्णौ पुनः पुरीम् । समाजग्मतुः श्रीरामौ ससैन्यौ पूर्ववन्मुदा ॥७७॥
यत्र द्वे निजदेहे वै कृते तत्र रघूत्तमौ । समागत्य पुनश्चैकं निजदेहं चकार सः ॥७८॥
वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी विश्वामित्रद्विजस्तथा । भिन्नदेहे त्वेकरूपं भजतस्तौ तदा द्विजौ ॥७९ ।
ससैन्यं पुष्पकं चापि बभूवैकं तु पूर्ववत् । ततः श्रीरामचन्द्रः स विवेश नगरीं निजाम् ॥८० ।
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । पौरनार्यो विमानस्था ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८१॥
तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च प्रजगुस्ते नटादयः । एवं नानाकौतुकानि पश्यन्मार्गे शनैः शनैः ॥८२॥
ययौ निजगृहं रामः सभायां संविवेश ह । सीताऽपि निजगेहं सा संविवेशोर्मिलादिभिः ॥८३॥
एवं भूसुर रामेण कौतुकानि महान्ति च । अमानुषाणि यान्यत्र कृतानि च सहस्रशः ॥८४॥
वाल्मीकिना विस्तरेण वर्णितानि हि कृत्स्नशः । सारं सारं मया तेभ्यः संगृह्याथ कथानकम् ॥८५॥

वेश्यायें नाचने लगीं ॥ ६५–६७ ॥ बन्दीजन रामको विरुदावली सुनाने तथा नटगण मीठे मीठे स्वरोंमें गाने लगे। इस प्रकार अपने राजभवनसे प्रस्थान करके राम रास्तेमें बने हुए डेरेपर पहुँचे ॥ ६८ ॥ वह रात्रि रामने वहाँ बितायी। सबेरे उठे तो स्नानादि नित्यक्रिया की और फिर हाथीपर बैठकर चल दिये ॥ ६९ ॥ दो कोस आगे जानेपर जहाँसे विश्वामित्र तथा वाल्मीकिके आश्रमोंके रास्ते अलग होते थे, वहाँसे उन्होंने सेना समेत अपना दो स्वरूप बना लिया ॥ ७० ॥ उस समय दोनों रास्तेमें राम सेना, सीता तथा पुत्रवधू आदिसे युक्त होकर चले। उस समय जितने भी मनुष्य साथ थे, वे सब एकके दो दिखायी दिये ॥ ७१ ॥ पुष्पक विमान भी दो हो गया और दोनों ब्रह्मचारियोंमेंसे एक रामको विश्वामित्रके आश्रमकी ओर ले चला, दूसरा वाल्मीकिके आश्रमको ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उस समय मनुष्यसे लेकर साथके कुत्ते तक दो हो-होकर दिखायी दे रहे थे। वे लोग अपने दो शरीरोंको देख-देखकर बड़े विस्मित हुए ॥ ७४ ॥ इस प्रकार वे दोनों राम अपनी-अपनी सेना, सीता और बन्धुओंके साथ दोनों आश्रमोंको चले। जब कि आश्रमपर पहुँचे तो दोनों ऋषियोंने अगवानी करके उनकी पूजा की ॥ ७५ ॥ इस प्रकार पहुँच-पहुँचकर उन दोनोंका यज्ञ समाप्त हो जाने-पर फिर वे दोनों राम पहलेकी तरह अयोध्याको लौटे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ जाते समय जिस स्थानपर रामने अपना दो रूप बनाया था, वहाँ पहुँचनेपर फिर एक हो गये। विश्वामित्रका ब्रह्मचारी तथा वाल्मीकिका ब्राह्मण ये दोनों भी एक ही एक हो गये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उसी तरह पुष्पकविमान और सेना भी एक हो गयी। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी आनन्दपूर्वक अपनी अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥ ८० ॥ उस समय भी नाना प्रकारके बाजे बजे और वेश्यायें नाचीं। पुरवासिनी नारियोंने पुष्पक विमानसे रामपर फूलोंकी वर्षा की, बन्दीजनोंने स्तुति की और गानेवालोंने अच्छे-अच्छे गायन गाये। इस प्रकार रास्तेमें तरह-तरहके कौतुक देखते हुए धीरे-धीरे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वे अपने भवनमें गये और सभामें पहुँचकर राजसिंहासनपर बैठे। सीता उर्मिला आदिके साथ महलके भीतर गयीं ॥ ८३ ॥ हे विप्र ! रामने हजारों प्रकारके जिन महान् और अलौकिक कामों-को किया था, उनका वाल्मीकिने विस्तृत वर्णन किया है और मैंने तो उसमेंसे सारभागमात्र लेकर सब कथा सुनायी

तवाग्रे कथ्यते शिष्य संक्षेपेणाज्ञया प्रभोः । त्वं धन्योऽसि यदर्थं च रामेणाज्ञापितस्त्वरम् ॥८६॥
वक्तुं स्वचरितं पुण्यं रम्यमानन्ददायकम् । वाल्मीकिश्चापि धन्यः स भावि संवादमावयोः ॥८७॥
यः पूर्वं विरचितवान् स्वीयकालेऽत्र भूतवत् । यथा रामस्य चरितं पूर्वं रामावतारतः ॥८८॥
एवं संवर्णितं कृत्स्नं गोप्यं यच्च कृतं रहः । न वाल्मीकोपमः कश्चित्कविर्भूतो भविष्यति ॥८९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डेऽत्तरार्धे दासीवरदानं तथा रामादीनां देहद्वयकरणं नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः

(सीता द्वारा टूटा तुलसीपत्र पुनः डालमें जोड़ना)

श्रीरामदास उवाच

इदानीं रामचन्द्रस्य लीलाकौतुकमुत्तमम् । अन्यद्रम्यं वर्ण्यते हि मया तच्छृणु सादरम् ॥ १ ॥
एकदा राघवस्तस्थौ सभायामासनोपरि । बन्धुभिर्मंत्रिवर्गैश्च पौरैर्जानपदैः सह ॥ २ ॥
पुत्राभ्यां च सुहृद्भिश्च मित्रैर्मन्त्रिजनैः सह । एतस्मिन्नन्तरे भूरिकीर्तिना सुहृदा चरैः ॥ ३ ॥
द्राक्षाफलादिभिः पूर्णास्तथा पुष्पैः सुपूरिताः । करण्डिकाः प्रेषिताश्च राघवार्थं सहस्रशः ॥ ४ ॥
ताः सर्वा राघवो दृष्ट्वा प्रेषयामास जानकीम् । युक्ता सखीभिः सीता सा क्रीडागारस्थिता मुदा॥ ५ ॥
दृष्ट्वा करण्डिकाः सर्वास्त्वेकामुद्घाटयत्तदा । तस्यां तामरसान्येव दृष्ट्वा रम्याणि जानकी ॥ ६ ॥
करेणादाय पद्मं च राघवायार्पणं विना । सा तत्सुगन्धं जग्राह वारं वारं मुदान्विता ॥ ७ ॥
करण्डिकां पूर्ववच्च समाच्छाद्य विदेहजा । स्थापयामास गेहेषु सर्वास्ताश्च करण्डिकाः ॥ ८ ॥
तद्वृत्तं रामचन्द्रोऽपि सर्वं ज्ञात्वा सभास्थितः । चिन्तयामास वारं वारं मुदान्वितः ॥ ९ ॥
सीतयेदं कृतं कर्म योग्यं भुवि स्मृतं न हि । यन्मया सीतनाऽमुक्ते पद्मे स्वादितं तया ॥१०॥

है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ क्योंकि प्रभुने मुझे ऐसा [illegible] करनेकी आज्ञा दी थी। तुम धन्य हो, जिसके लिए भगवान्‌ने स्वयं मुझे कथा सुनानेकी आज्ञा दी है ॥ ८६ ॥ वे महर्षि वाल्मीकि धन्य हैं, जिन्होंने हमें और तुमको सुनने-सुनानेके लिए भूतकालकी तरह भविष्यका सारा रामचरित रामावतारके पहले ही लिख डाला था ॥८७॥८८॥ वह वर्णन भी इतना सच्चा किया कि रामने जो कुछ गुप्त रूपसे एकान्तमें किये थे, वह सब लिख दिया। वाल्मीकिके समान न कोई कवि हुआ है, न होगा ॥ ८९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

श्रीरामदासने कहा—अब मैं तुम्हें रामका एक दूसरा रम्य और उत्तम चरित्र सुनाता हूँ। उसे आदर-पूर्वक सुनो ॥ १ ॥ एक समय रामचन्द्रजी सिंहासनपर बैठे हुए थे। उस समय उनके समस्त भ्राता, मन्त्री, पुरवासी, दोनों पुत्र, सम्बन्धी तथा मित्र आदि भी उपस्थित थे। उसी समय उनके सुहृद् राजा भूरिकीर्तिने दूतों द्वारा अंगूर आदि विविध प्रकारके फलोंसे भरी हुई बहुत सी पिटारियाँ भेजीं ॥ २-४ ॥ उनको देखकर रामने उसे भीतर सीताके पास भेजवा दिया। उस समय सीता अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ाभवनमें थीं ॥ ५ ॥ उन पिटारियोंको देखा तो बड़ी उत्सुकताके साथ खोल-खोलकर कुछ पिटारियाँ देखीं, किन्तु उनके भीतर कमलका फूल भरा दीख पड़ा ॥ ६ ॥ तब प्रसन्न मनसे सीताने उसमेंसे एक कमलका फूल निकाला और रामको अर्पण किये बिना ही सूँघ लिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर पिटारियोंको पहलेकी तरह ठीक करके घरमें रखवा दिया ॥ ८ ॥ सभामें बैठे बैठे ही रामको यह बात मालूम हो गयी। उन्होंने बार-बार इसपर विचार किया ॥ ९ ॥ तब उन्होंने सोचा कि सीताने यह ठीक नहीं किया, जो मेरे सूँघे बिना ही कमल सूँघ

अग्रेऽप्येवं स्त्रियः सर्वाः करिष्यंत्यत्र वै भुवि । सीतादर्शितमार्गेण तस्माच्छिक्षां करोम्यहम् ॥११॥
एवं मनसि निश्चित्य ततः स रघुनन्दनः । तूष्णीमेव गृहं गत्वा पूर्ववज्जानकीं मुदा ॥१२॥
रंजयामास विविधैर्नानाक्रीडादिकौतुकैः । सीताऽपि पेटिकाः सर्वा राघवाग्रे सहस्रशः ॥१३॥
आनीय दर्शयामास फलपुष्पादिपूरिताः । रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वाः समुद्घाट्य पृथक् पृथक् ॥१४॥
प्रेषयामास बंधूनां गेहेषु दश पंच च । फलादीनां पेटिकाश्च नानाचित्रविचित्रिताः ॥१५॥
मातॄणां सकलानां च गृहेष्वपि तथा पुनः । पुत्रयोः सुहृदां चापि मंत्रिणां च गुरोस्तथा ॥१६॥
पौराणां चापि गेहेषु सेवकानां गृहेष्वपि । दासीभ्यश्च शुभा दत्त्वा पेटिकाः सप्त पञ्च च ॥१७॥
सीतायै शतशो दत्त्वा मुदा ताभ्यो रघूत्तमः । फलानि दश पञ्चाष्ट स्वयं भुक्त्वा ततः परम् ॥१८॥
पद्मादीनि सुपुष्पाणि विभज्य पूर्ववत्पुनः । सीतायै शतशो दत्त्वा स्वयमंगीचकार सः ॥१९॥
अज्ञात इव तद्वृत्तं गोपयामास चेतसि । अथैकदा जनकजा हरिदिन्यामुपोषणम् ॥२०॥
कृत्वाऽपरे दिने स्नात्वा ययौ वृन्दावनांतिकम् । तुलसीं पूजयित्वा तां सा चकार प्रदक्षिणाः ॥२१॥
एतस्मिन्नंतरे सीता निराहारा श्रमान्विता । त्यक्त्वा प्रदक्षिणामार्गं किंचिदेव चचाल सा ॥२२॥
चलितायाश्च सीतायाः पल्लवेन हि वाससः । पत्रमेकं तुलस्याश्च पपात भुवि वै तदा ॥२३॥
तत्पत्रं जानकी दृष्ट्वा द्वादश्यां त्रुटितं शुभम् । ज्ञात्वाऽधर्मः कृतश्चेति भयभीताऽभवत्तदा ॥२४॥
ततः सा तत्करेणैव गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । नत्वा वृंदावने सीता चिक्षेप परमादरात् ॥२५॥
ततः प्रदक्षिणाः कृत्वा प्रार्थयित्वा मुहुर्मुहुः । तुलसीं सा ययौ गेहं रञ्जयामास राघवम् ॥२६॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र नारदश्च समाययौ । वीणावाद्यस्वनेनैव कुर्वन्कीर्तनमुत्तमम् ॥२७॥
पालय मां दीनमिति राघवेति पुनः पुनः । पालय मां दीनमिति मनुं पञ्चदशाक्षरम् ॥२८॥

लिया ॥ १० ॥ यदि मैं इस समय चुप रह जाता हूँ तो सीताके दिखाये इस मार्गपर चलकर सब स्त्रियाँ ऐसा ही करने लगेंगी। इसलिए सीताको इसकी सजा देता हूँ ॥ ११ ॥ ऐसा निश्चय करके राम चुपचाप सीताके घर पहुँचे ॥ १२ ॥ वहाँ सदाकी तरह विविध प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक करके उन्होंने सीताको प्रसन्न किया। सीताने भी वह सब पिटारियाँ मँगवाकर रामके आगे रख दीं। वे सब नाना प्रकारके फलों-फूलोंसे भरी थीं। रामने भी उन्हें अलग-अलग खोलकर देखा ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनमेंसे पन्द्रह पिटारियाँ भाइयोंके यहाँ भिजवा दीं। इसके बाद सब माताओंके पास भेजीं। उसी तरह दोनों पुत्रों, सम्बन्धियों, मन्त्रियों, गुरुजनों, पुरवासियों, सेवकों तथा दासियोंके घर भी पाँच-पाँच सात-सात पिटारियाँ भिजवायीं। इसके अनन्तर सैकड़ों पिटारियाँ सीताको दीं और उनमेंसे स्वयं भी दस-पाँच फल निकालकर खाये ॥ १५-१८ ॥ इसके बाद कमल आदि अच्छे-अच्छे फूलोंको पूर्ववत् विभक्त करके सैकड़ों फूल सीताको दिये और स्वयं भी लिये ॥ १९ ॥ किन्तु सीताने रामको अर्पण किये बिना ही जो फूल सूँघ लिया था, उस बातको जानते हुए भी राम अनजान जैसे बने रहे। इसके अनन्तर एक दिन सीताने एकादशीका व्रत किया ॥ २० ॥ दूसरे दिन वे वृन्दावन (तुलसीकी बगीची) में गयीं। वहाँ तुलसीकी पूजा करके प्रदक्षिणा करने लगीं ॥ २१ ॥ उस समय एकादशीका व्रत करनेसे उन्हें थकावट-सी लगी थी। जिससे प्रदक्षिणाका मार्ग छोड़कर वे दूसरी ओर चलने लगीं ॥ २२ ॥ चलते-चलते सीताके कपड़ोंका पल्ला लगनेसे तुलसीका एक पत्र टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ द्वादशीके दिन उस गिरे पत्रको देखकर सीताने सोचा—"ओह ! मैंने बड़ा भारी अधर्म कर डाला" यह सोचकर वे कुछ भयभीत-सी हो गयीं ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् सीताने वह पत्र उठा लिया और उसे प्रणाम करके आदरसे उसी वृन्दावनमें फेंक दिया ॥ २५ ॥ ऐसा करनेके बाद प्रदक्षिणा करके बारम्बार प्रार्थना की। फिर महलमें जाकर रामचन्द्रजीका मनोरञ्जन करने लगीं ॥ २६ ॥ इसी समय वीणा बजाते और हरिकीर्तन करते हुए नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥ २७ ॥ वे आते ही "मुझ दीन-

कीर्तयामास स मुनिर्वारं वारं मुदान्वितः । कलकंठस्वरेणैव महापातकनाशनम् ॥२९॥
॥ पालय मां दीनं राघव पालय मां दीनम् ॥ इति मंत्रः ।
तं मुनिं राघवो दृष्ट्वा प्रत्युद्गम्याथ भक्तितः । नत्वाऽऽसने संनिवेश्य पूजयामास सादरम् ॥३०॥
ततः प्रक्षाल्य तत्पादौ सीतया रघुनन्दनः । धेनुं निवेद्य गंधाद्यैः पूजयं तं मुनिपुंगवम् ॥३१॥
हेमपात्रं भोजनार्थं मुनेरग्रे निवेश्य च । परिवेषणार्थं श्रीरामस्त्वरयामास जानकीम् ॥३२॥
सीताऽपि कामधेनूत्थवराण्यानि विगृह्य सा । हेमपात्रे ययौ वेगात्पात्रेषु परिवेषणम् ॥३३॥
कर्तुं कंकणमंजीरकिंकिणीनूपुरस्वना । तां दृष्ट्वा नारदः सीतां प्राह श्रीराघवं तदा ॥३४॥
राम राजीवपत्राक्ष नाहं सीतासमर्पितैः । दिव्यान्नैरशनं चाद्य करिष्यामि रघूत्तम ॥३५॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा सीताऽऽसीच्चकिता तदा । अज्ञात इव रामोऽपि संभ्रमेण मुनिं तदा ॥३६॥
पप्रच्छ कारणं व्यग्रः सर्वकर्ता स्वयं प्रभुः । किं कारणं वद मुने किमर्थमनयाऽर्पितैः ॥३७॥
अन्नैस्त्वं भोजनं नाद्य करोषि मुनिपुङ्गव । इति रामवचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥३८॥

नारद उवाच

सीतयाऽद्य कृतं पापं किं त्वं वेत्सि न वै प्रभो । यदि त्वं नैव जानासि तर्हि शृणु वदामि ते ॥३९॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रमनयाऽद्य निकृंतितम् । यद्यसत्यं तर्हि पश्य गत्वा वृन्दावने प्रभो ॥४०॥
संक्रमेषु चतुर्दश्योर्द्वादश्योः पातपर्वसु । तुलसीं न हरेत्संध्योर्भृग्वंगारापराह्णके ॥४१॥
नष्टे सूर्येन्दुग्रहणे प्रसूतिमरणे तथा । तुलसीं ये निकृंतंति ते छिंदंति हरेः शिरः ॥४२॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके । लुनाति यो नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥४३॥
अकाले तुलसीपत्रं छेदयंत्यः स्त्रियः पुमान् । पत्रमेकं ब्रह्महत्यासममाहुर्मनीषिणः ॥४४॥
एवं तु वचनं सर्वैर्मुनिभिर्हि प्रकीर्त्यते । पुरुषाणामयं दोषस्तत्र स्त्रीणां कथाऽत्र का ॥४५॥

की रक्षा करो। हे राघव ! मेरा पालन करो।" इस महापातक-नाशक पञ्चदशाक्षर मन्त्रका सहर्ष उच्चारण करने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ "पालय मां दीनम्, राघव पालय मां दीनम् ।" यह पञ्चदशाक्षर मन्त्रका स्वरूप है। राम नारदको देखते ही उठ खड़े हुए। उन्होंने आगे बढ़कर प्रणाम किया और आसनपर बिठाला। तब सादर पूजन किया ॥ ३० ॥ सीताके साथ रामने मुनिके पैर धोये और गोदान दिया। इसके पश्चात् उनके सामने सुवर्णके पात्र रखे और शीघ्र परोसनेके लिये सीतासे कहा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सीता भी कामधेनुसे उत्पन्न अच्छे-अच्छे सामान परोसनेके लिये कङ्कण, मञ्जीर तथा नूपुरकी ध्वनि करती हुई चलीं। सीताको चलती देखकर नारदने रामसे कहा—हे राम ! हे राजीवपत्राक्ष !! मैं आज सीताके हाथों परोसे हुए दिव्यान्न नहीं खाऊँगा ॥ ३३–३५ ॥ मुनिकी बात सुनकर सीता चकरा गयीं और सब-कुछ करनेवाले स्वयं प्रभु रामने भी अनजान बनकर विस्मित हो व्यग्रभावसे पूछा—क्यों मुनिराज ! आज आप सीताके हाथका अन्न क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर नारदने कहा—॥ ३६–३८ ॥ आज इन्होंने एक बड़ा पाप किया है। सो क्या आपको नहीं मालूम है ? अच्छा मैं ही सुनाता हूँ ॥ ३९ ॥ आज द्वादशीको इन्होंने तुलसीपत्र तोड़ डाला है। यदि आप मेरी बात सच न मानते हों तो स्वयं चलकर देख लीजिये ॥ ४० ॥ संक्रान्ति, चतुर्दशी, द्वादशी, प्रतिदिन सवेरे-साँझके समय, शुक्र और मङ्गलके दिन तथा दोपहरके बाद, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय, घरमें सन्तति होनेपर या किसीका देहान्त होनेपर जो लोग तुलसीका पत्र तोड़ते हैं, वे मानों तुलसीका पत्र न तोड़कर भगवान्‌का सिर काटते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़ता है या कार्तिकमासमें आँवलेकी पत्तियाँ नोचता है, वह अतिशय निन्दित नरकमें जाता है ॥ ४३ ॥ जो लोग असमयमें तुलसीका एक भी पत्र तोड़ते हैं। विद्वान् लोग ऐसोंको ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकारका वचन समस्त मुनियोंने कहा है। फिर जब पुरुषोंके लिये ऐसा नियम बना हुआ है तो स्त्रियोंके लिये क्या

एतन्निमित्तं श्रीराम सीतया परिवेषितैः । वरान्नैर्भोजनं नाद्य करिष्यामि व्रतस्थितः ॥४६॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः । मुने त्वमेव सीतां मे पूतां कर्तुमिहार्हसि ॥४७॥
वरदानं व्रतं वाऽपि येन पूता भवेत्क्षणात् । त्वामहं प्रार्थयाम्यद्य स्वीयं पल्लवमुत्तमम् ॥४८॥
प्रसार्य शिरसा चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः । तद्रामवचनं श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥४९॥
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृत्यर्थं मुनीश्वरैः । प्रायश्चित्तानि चोक्तानि संति नानाविधानि च ॥५०॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रच्छेदनाघप्रशांतये । प्रायश्चित्तं मया नैव दृष्टं राघवसत्तम ॥५१॥
उपायस्त्वेक एवात्र वर्तते रघुनन्दन । पातिव्रतबलात्सीता पत्रं तत्तुलसीं पुनः ॥५२॥
योजयिष्यति मेऽद्योऽद्य तर्हि पूता भविष्यति । क्षणादेव न सन्देहः सत्यमेव वचो मम ॥५३॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा रामः सीतां व्यलोकयत् । तदा सीताऽब्रवीद्वाक्यं शृणु ब्रह्मसुतोत्तम ॥५४॥
अद्याहं योजयिष्यामि पत्रं तत्तुलसीं पुनः । पातिव्रत्यबलेनैव तवाग्रे पश्य कौतुकम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा जानकी देवी तत्पात्रमन्नपूरितम् । पाकस्थाने पुनर्नीत्वा स्थापयामास वेगतः ॥५६॥
ततो वृंदावनं सीता ययौ नूपुरनिःस्वना । नारदो रामचन्द्राद्या ययुर्वृन्दावनं प्रति ॥५७॥
तदा ता उर्मिलाद्याश्च चंपिकाद्याः स्त्रियो ययुः । लक्ष्मणाद्या बंधवश्च कुशश्चाथ लवस्तथा ॥५८॥
तेषां मध्यगता सीता तदा वृंदावनस्थिता । नत्वा तां तुलसीं भक्त्या प्राह वाक्यं सखीयुता ॥५९॥
भो भो तुलसि मद्वाक्यं शृणुष्वाद्य सुशोभने । पातिव्रतबलं पूर्णं मयि यद्यस्ति पावनम् ॥६०॥
तर्ह्यस्य तव पत्रस्य त्वयि सन्धिर्भविष्यति । एवमुक्त्वा जानकी सा यावत्पश्यति वै पुरः ॥६१॥
तावत्पत्रं तुलस्यां तत्सधिं नैव गतं तदा । तदा विषण्णा सा सीता बभूव चकिताऽपि च ॥६२॥
तदा देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । गुह्यका ऋषयः सर्वे तद्द्रष्टुं कौतुकं ययुः ॥६३॥
ततः सीतां विषण्णां तां दृष्ट्वा स नारदो मुनिः । एकांते जानकीं नीत्वा बोधयामास सादरम् ॥६४॥

कहना ॥ ४५ ॥ इसी कारण आज व्रतका पारण करनेके समय मैं सीताका परोसा अन्न नहीं खाऊँगा ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नारदकी बात सुनकर रामने कहा-हे मुने ! तब तुम्हीं सीताको पवित्र कर दो ॥ ४७ ॥ यह वरदान तथा व्रत जिस उपायसे पवित्र हो सके, वैसा करो। एतदर्थ मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और मस्तक झुकाकर पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। रामका विनय सुनकर नारदने कहा—॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यादि पापोंसे छुटकारा पानेके लिये तो मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ ५० ॥ किन्तु द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़नेसे जो पातक होता है। उसका प्रायश्चित्त तो मैंने कहीं देखा ही नहीं ॥ ५१ ॥ हे रघुनन्दन ! इस विषयमें केवल एक उपाय है। वह यह कि सीता अपने पातिव्रतके बलसे वह पत्र फिर वृक्षमें जोड़ दे तो ये क्षणमात्रमें पवित्र हो सकती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं जो कह रहा हूँ, सो सत्य है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ नारदके ऐसा कहनेपर रामने सीताकी ओर देखा। सीताने कहा—हे ब्रह्माके पुत्रोंमें श्रेष्ठ पुत्र नारद ! ॥ ५४ ॥ अभी मैं आपके सामने ही अपने पातिव्रतके बलसे उस तुलसीपत्रको डालमें जोड़ दूँगी, आप यह कौतुक देखें ॥५५॥ ऐसा कहकर सीता वह अन्नपात्र वेगके साथ लौटा ले गयीं और रख दिया ॥५६॥ इसके अनन्तर वे वृन्दावनमें गयीं। नारद और राम भी वहाँ पहुँचे ॥ ५७ ॥ उर्मिलादिक स्त्रियाँ तथा लक्ष्मणादि बन्धु एवं लव-कुश आदि पुत्र भी वृन्दावनमें पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन सबके बीचमें सीताने उस तुलसीके वृक्षको प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक कहने लगीं—॥ ५९ ॥ हे सुशोभने तुलसि ! मेरी बात सुनो। यदि मुझमें पातिव्रतका बल हो तो यह टूटा हुआ पत्र फिर तुम्हारे अङ्कमें जुड़ जाय। ऐसा कहकर सीताने सामने पत्र देखा तो वह जुटा नहीं, यों ही पड़ा था। उस समय आश्चर्यके साथ-साथ सीताको बड़ा विषाद भी हुआ ॥ ६०-६२ ॥ समस्त देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, गुह्यक तथा ऋषिगण वह कौतुक देखनेको एकत्रित हो गये थे ॥ ६३ ॥ जब सीताको इस प्रकार दुःखित देखा तो नारद मुनि उन्हें एकान्तमें ले गये और आदरपूर्वक समझाया। नारदने

शृण्वत्र कारणं सीते सर्वं त्वां प्रवदाम्यहम् । पतिव्रताभिर्नारीभिर्विना स्वपतिना मुदा ॥६५॥
पुष्पादीनां सुगन्धोऽपि नावग्राह्यः कदाचन । सोऽवग्राहितः पूर्वं मुदा तामरसस्य च ॥६६॥
तद्बुद्ध्वा रामचन्द्रेण मायेयं रचिताऽद्य हि । तदिच्छया तुलस्याश्च तत्पत्रं पतितं भुवि ॥६७॥
त्वद्बुद्ध्यपल्लवाग्रेण शिक्षां कर्तुं तवात्र हि । रामस्यांतर्गतं ज्ञात्वा दोषारोपः कृतस्त्वयि ॥६८॥
मया सीते क्षमस्वाद्य मा क्रोधं भज मां प्रति । नारीणामुपकारार्थं तेन त्वामत्र शिक्षितम् ॥६९॥
नोचेत्त्वद्दर्शितपथा स्त्रियः सर्वाः पतिं विना । एवमेवाचरिष्यन्ति नानाभोगान्मुदान्विताः ॥७०॥
इदानीं शृणु मद्वाक्यं येन श्रीराघवाग्रतः । पत्रस्य च तुलस्याश्च दृढा सन्धिर्भविष्यति ॥७१॥
वृन्दावने पुनर्गत्वा त्वं ब्रूहि यन्मयोच्यते । विना पद्मसुगन्धस्यावघ्राणाद्यदि रक्षितम् ॥७२॥
पातिव्रत्यं ममास्त्यत्र तर्ह्येतत्तुलसीदलम् । तुलस्यां संधिमाप्नोतु नोचेन्नाप्नोतु वै त्वियम्॥७३॥
अनेन वचनेनाद्य तत्पत्रं सन्धिमाप्नुयात् । तुलस्याः क्षणमात्रेण पूर्ववच्च भविष्यति ॥७४॥
अतस्त्वं याहि तुलसीं विषादं भज मा रमे । इत्युक्त्वा सीतया शीघ्रं तुलसीं नारदो ययौ ॥७५॥
सीताऽपि तुलसीं नत्वा शृण्वत्सु सकलेष्वपि । समूहेषु मुनीनां च देवादीनां वचोऽब्रवीत् ॥७६॥
विना पद्मसुगन्धस्यावघ्राणाद्यदि रक्षितम् । पातिव्रत्यं मयाऽस्त्यत्र तर्ह्येतत्तुलसीदलम् ॥७७॥
तुलस्याः संधिमाप्नोतु नोचेन्नाप्नोतु वै त्विदम् । एवं वदति जानक्या वाक्ये पत्रं क्षणेन तत् ॥७८॥
प्राप्तं सन्धिं पूर्ववच्च पश्यत्सु सकलेष्वपि । तदा निनेदुर्वाद्यानि देवानां राघवस्य च ॥७९॥
देवनार्यो विमानाग्रे संस्थिताः पुष्पवृष्टिभिः । ववर्षुर्जानकीं रामं विप्रा ऊचुर्जयस्वनान् ॥८०॥
तदा सीतां समालिंग्य राघवो मुदिताननाम् । आह तुष्टमनाः श्रीमान् वसनाहारभूषितः ॥८१॥
हे सीते कञ्जनयने मुनीनामपि मोहिनि । नेदं मया शिक्षितं ते सर्वस्त्रीणां सुशिक्षितम् ॥८२॥
धर्मसंस्थापनार्थाय साधूनां पालनाय च । दुष्टानां च विनाशाय मयेदं रूपमाश्रितम् ॥८३॥

कहा—हे सीते ! इस पत्रके न जुटनेमें जो कारण है, वह मैं बतलाता हूँ। पतिव्रता स्त्रियोंको चाहिए कि यदि उनके पतिने हर्षपूर्वक सुगन्ध न लिया हो तो स्वयं भी पुष्पादिकका सुगन्ध न लें। आपने उस रोज रामके सूँघे बिना ही कमलका फूल सूँघ लिया था ॥ ६४–६६ ॥ रामको यह बात मालूम हो गयी थी। इसीसे उन्होंने यह माया रची है। तुलसीका पत्र भी उन्हींकी इच्छासे टूट गया था ॥ ६७ ॥ आपको शिक्षा देने ही के लिए उन्होंने ऐसा किया है। रामकी इच्छा देखकर ही मैंने आपपर दोषारोप किया है। सो क्षमा करें। मेरे ऊपर कुपित न हों। नारीजातिको शिक्षा देनेके लिए ही उन्होंने यह कौतुक रचकर आपको उपदेश दिया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ वे यदि ऐसा न करेंगे तो आपके बताये मार्गके अनुसार संसारकी समस्त स्त्रियाँ अपने-अपने पतिको अलग करके स्वयं विविध प्रकारके भोगोंका उपभोग करने लगेंगी ॥ ७० ॥ सुनिए, अब मैं बतलाता हूँ कि किस तरह वह पत्र वृक्षमें जुड़ेगा ॥ ७१ ॥ आप फिर वृन्दावनमें जाकर कहें कि उस कमलका फूल सूँघनेके सिवाय यदि मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह पत्र जुड़ जाय और यदि मैं अपने धर्मको सुरक्षित न रख सकी होऊँ तो न जुड़े ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ आपके इस वचनसे तत्काल वह जुड़कर पहिलेकी तरह हरा-भरा हो जायगा ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मीस्वरूपिणी सीते ! अब चलें, किसी प्रकारका विषाद न करें। ऐसा कहकर नारदजी सीताके साथ साथ उस वृक्षके पास गये ॥ ७५ ॥ सीता भी जब समस्त परिवारके सभी लोग तथा सारे देवता एकत्र होकर सुन रहे थे, तब उन्होंने कहा—॥ ७६ ॥ यदि उस कमलका सुगन्ध लेनेके अतिरिक्त मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह तुलसीदल अपने स्थानपर जुड़ जाय, अन्यथा नहीं जुड़े। सीताके ऐसा कहते ही क्षणमात्रमें वह पत्र पहलेकी तरह वृक्षमें जुड़ गया। सब लोग खड़े यह कौतुक देख रहे थे। पत्रके जुड़ते ही देवताओंने बाजे बजाये और देवनारियोंने पुष्पवृष्टि की एवं ब्राह्मणोंने एक स्वरसे जयजयकार किया ॥ ७७–८० ॥ इसके बाद रामने सीताको हृदयसे लगा लिया और प्रसन्न मनसे कहा कि हे मुनियोंके भी मनको मोहनेवाली सीते ! यह मैंने तुम्हींको नहीं, समस्त नारीजातिको शिक्षा दी है। धर्मकी

पातिव्रत्यं सदा स्त्रीभिः पालनीयं धियेति च । मया ते शिक्षितं सीते मा विषादं भज प्रिये ॥८४॥
इत्याश्वास्य मुहुः सीतां कृत्वा तामतिहर्षिताम् । विसर्जयित्वा श्रीरामः सुरादीन्समपूजयत् ॥८५॥
ततः सर्वान्नारदादीन् जानकी परिवेषणम् । वेगाच्चकार मुदिता स्वेदबिंदुकिताननाः ॥८६॥
ततः सर्वे नारदाद्याश्चक्रुर्भोजनमुत्तमम् । ततो भुक्त्वाऽथ तांबूलं रामं तुष्टाव नारदः ॥८७॥

श्रीनारद उवाच

श्रीरामं मुनिविश्रामं जनसद्धामं हृदयारामं सीतारञ्जनसत्यसनातनराजारामं घनश्यामम् ।
नारीसन्तुतकालिंदीनतनिद्राप्रार्थितभूपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामिच्छेदितसत्तालम् ॥८८॥
नानाराक्षसहन्तारं शरधर्तारं जनताधारं बालीमर्दनसागरबन्धननानाकौतुककर्तारम् ।
पौरानन्ददनारीतोषकस्तूरीयुतसद्भालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥८९॥
श्रीकांतं जगतीकांतं स्तुतसद्भक्तं बहुसद्भक्तं सद्भक्तहृदयेप्सितपूरकपद्माक्षं नृपजाकांतम् ।
पृथ्वीजापतिविश्वामित्रसुविद्यादर्शितसच्छीलं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९०॥
सीतारंजितविश्वेशं धरपृथ्वीशं सुरलोकेशं ग्रावोद्धारणरावणमर्दनतद्भ्रातृकृतलंकेशम् ।
किष्किंधाकृतसुग्रीवं प्लवगवृन्दाधिपसत्पालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९१॥
श्रीनाथं जगतां नाथं जगतीनाथं नृपतीनाथं भूदेवासुरनिर्जरपन्नगगन्धर्वादिकसन्नाथम् ।
कोदण्डधृततूणीरान्वितसंग्रामे कृतभूपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९२॥
रामेशं जगतामीशं जम्बुद्वीपेशं नतलोकेशं वाल्मीकिकृतसंस्तवहर्षितसीतालालितवागीशम् ।
पृथ्वीश हृतभूभारं नतयोगींद्रं जगतीपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९३॥

स्थापना करने, सज्जनोंका रक्षा तथा दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही मैंने यह अवतार लिया है। स्त्रियोंको अपनी बुद्धिसे पातिव्रत धर्मकी रक्षा करनी चाहिए। यह मैंने तुम्हें उपदेश दिया है। इससे कहीं कुपित न हो जाना ॥ ८१–८४ ॥ इस प्रकार बारम्बार सीताको आश्वासन देकर रामने उन्हें फिर हर्षित कर दिया और उन आये हुए देवताओंका पूजन किया ॥ ८५ ॥ फिर नारदादि मुनियोंको साथ लेकर महलमें गये। वहाँ जल्दीसे सीताने भोजन परोसा ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर सबोंने भोजन किया। फिर ताम्बूल खाकर नारद रामकी स्तुति करने लगे ॥ ८७ ॥ नारदने कहा—मैं उन रामको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, जो मुनियोंके विश्राम-स्थान हैं, निजजनोंके सुन्दर धाम हैं, हृदयको आनन्द देनेवाले, सीताको प्रसन्न रखनेवाले, सत्य, सनातन, राजा राम, मेघकी तरह श्याम स्वरूपधारी, यमुना आदिसे वन्दित, निद्रासे प्रार्थित उन भूपाल रामको, जिन्होंने बड़े भारी सात तालके वृक्षोंको एक बाणसे गिरा दिया था, मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ अनेक राक्षसोंके प्राण लेनेवाले, धनुर्बाणधारी, जनताके आधार, बालिके नाशक, समुद्रमें सेतु बाँधने और अनेक प्रकारके कौतुक करनेवाले, पुरवासियोंके आनन्ददाता, नारियोंके प्रसन्नकर्ता और माथेमें कस्तूरीका तिलक लगानेवाले आप रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८९ ॥ लक्ष्मीके पति, जगत्पति, अच्छे अच्छे भक्तोंसे वन्दित, जिनके बहुतसे भक्त हैं, जो मानसिक कामना पूर्ण करनेवाले तथा पृथ्वीकी पुत्री सीताके पति हैं, विश्वामित्रकी सुविद्यासे जिनका शील उत्तम हो गया है, ऐसे महान् सात तालके वृक्षोंको काटनेवाले आप रामको मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९० ॥ सीताको प्रसन्न करनेवाले, समस्त विश्वके ईश, पृथ्वीके ईश, देववृन्दके अधिपति, (अहल्यारूपी) पत्थरका उद्धार करनेवाले, रावणके विनाशकारी, रावणके भ्राता विभीषणको लंकेश बनानेवाले, सुग्रीवको किष्किन्धाका अधिपति बनानेवाले, वानरोंके अधिपति सुग्रीवकी भली-भाँति रक्षा करनेवाले और महान् तालके वृक्षोंको काटनेवाले रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीके नाथ, जगतीके नाथ, जगत्के नाथ, राजाओंके राजा, विप्र, असुर, देवता, पन्नग तथा गन्धर्वोंके नायक, धनुष और तरकस लेकर संग्राममें लड़नेवाले राजा राम जिन्होंने महान् तालवृक्षोंको काट गिराया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ ॥ ९२ ॥ ईश, जगत्के ईश, जम्बुद्वीपके ईश, समस्त लोकपालोंके

चिद्रूपं जितसद्रूपं नतसद्दिक्पं नतसद्भूपं सप्तद्वीपजवर्षजकामिनिसंनीराजितपृथ्वीपम् ।
नानापार्थिवनानोपायनसम्यक्तोषितसद्भूपं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९४॥
संसेव्यं मुनिभिर्गेयं कविभिः स्तव्यं हृदि संधार्यं नानापण्डिततर्कपुराणजवाक्यादिकृतसत्काव्यम् ।
साकेतस्थितकौसल्यासुतगन्धाद्यंकितसद्भालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम्॥९५॥
भूपालं घनसन्नीलं नृपसद्बालं कलिसङ्कालं सीताजानिवरोत्पललोचनमन्त्रीमोचिततत्कालम् ।
श्रीसीताकृतपद्मास्वादनसम्यक्शिक्षिततत्कालं रामं त्वा शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ९६॥
हे राजन् नवभिः श्लोकैर्भुवि पापघ्नं नवकं रम्यं मे बुद्ध्या कृतमुत्तमनूतनमेतद्राघव मर्त्यानाम् ।
स्त्रीपौत्रान्नादिकक्षेमप्रदमस्मत्सद्वरदश्चालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९७॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

एवं स्तुत्वा रमानाथं राघवं भक्तवत्सलम् । प्रणम्याज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययौ नारदो मुदा ॥९८॥
अमरा मुनयः सर्वे जग्मुस्ते स्वस्थलानि वै । एवं श्रीरामचन्द्रेण नररूपधरेण च ॥९९॥
कौतुकानि विचित्राणि कृतानि जगतीतले । कस्तान्यत्र क्षमो वक्तुं विस्तरेण द्विजोत्तम ॥१००॥
तेषु यद्यद्राघवेण स्मारितं त्विह वै मम । तत्तत्प्रकथ्यते शिष्य तवाग्रे राघवाज्ञया ॥१०१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
उत्तरार्द्धे सीतया तुलसीपत्रसन्धिर्नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

प्रभु वाल्मीकिसे नमस्कृत, प्रसन्न सीताके द्वारा लालित, वागीश, पृथ्वीश, भूभारहारी, योगीन्द्रोंसे नमस्कृत, जगतीके पालक और विशाल तालवृक्षको काट गिरानेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९३ ॥ चिद्रूप, अच्छे-अच्छे राजाओंको भी परास्त करनेवाले, अच्छे-अच्छे दिक्पालोंसे नमस्कृत, बड़े-बड़े राजाओंसे नमस्कृत, सप्तद्वीप तथा समस्त देशमें उत्पन्न नारियोंसे नीराजित, पृथ्वीके पालक, अनेक राजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके उपहार देकर प्रसन्न किये गये राजा राम जिन्होंने विशाल तालके वृक्षोंको काट गिराया था, उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९४ ॥ जो मुनियोंके सेव्य, मंत्रियोंसे गेय, हृदयमें धारण करने योग्य, अनेक पंडितों द्वारा विविध प्रकारके तर्क-पुराण तथा काव्योंसे सत्कृत एवं साकेत-निवासिनी कौसल्याके पुत्र हैं और गन्धादि द्रव्योंसे जिनका मस्तक अलंकृत है, सात तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले आप रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९५ ॥ भूपाल, मेघके समान श्यामस्वरूप, महाराज दशरथके अच्छे पुत्र, पापोंके लिये कालस्वरूप, सीतापति, सुन्दर, कमलकी नाईं आँखोंवाले, प्रबल कालके गालसे अपने मन्त्रीको तत्काल छुड़ानेवाले, पतिको बिना अर्पण किये कमलका फूल सूँघ लेनेपर सीताको भलीभाँति शिक्षाके दाता, विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे राजन् ! संसारके प्राणियोंका पाप नष्ट करनेवाले इन नौ श्लोकोंसे मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति की है । मेरे वरदानसे यह स्तुति स्त्री-पुत्र आदि सब वस्तुओंको देनेवाली होगी । विशाल तालके वृक्षोंका भेदन करनेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार भक्तवत्सल, रमानाथ, राघव, रामचंद्रकी स्तुति करके और उनसे आज्ञा लेकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे विदा हुए ॥ ९८ ॥ तब सब देवता तथा मुनिगण भी अपने-अपने स्थान-को चले गये । नररूपधारी रामचंद्रने ऐसे-ऐसे कितने ही कौतुक किये हैं । हे द्विजोत्तम ! विस्तारपूर्वक उनका वर्णन करनेके लिए इस संसारमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ९९ ॥ १०० ॥ उन चरित्रोंमेंसे स्वयं रामचंद्रजीने जो जो चरित्र हमें स्मरण कराया है, वह-वह उन्हींकी आज्ञासे मैंने तुम्हारे आगे कहा है ॥ १०१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषा-टीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

(आनन्दरामायणकी महिमा)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः स वैदेह्या बन्धुभिस्तनयादिभिः । चकार राज्यं धर्मेण लोकवंद्यपदांबुजः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यापुर्यां श्रीरघुनायकम् । नत्वैकदाऽब्रवीद्दूतो हे राम कञ्जलोचन ॥ २ ॥
करोमि तव सेवां न तपश्चर्यां करोम्यहम् । ददस्वाज्ञां मम त्वं हि गच्छामि निजमन्दिरम् ॥ ३ ॥
तथेति राघवेणोक्तः स ययौ निजमन्दिरम् । तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वाऽऽनन्दरामायणं शुभम् ॥ ४ ॥
पठित्वा नवरात्रं तु ततस्तूर्णं बहिर्ययौ । एतस्मिन्नन्तरे एकदेशे पौरा मृतं नृपम् ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तस्य सुतं बालं ज्ञात्वा कर्तुं हि मन्त्रिणम् । चक्रुस्ते निश्चयं तत्र केचिद्ब्रुवयं शुभः ॥ ६ ॥
केचिद्ब्रुवयं नैव कार्यो मन्त्री खलस्त्वयम् । एवं विवदमानास्ते चक्रुर्वै निश्चयं तदा ॥ ७ ॥
करिणी निजशुण्डाग्रमालया यं वरिष्यति । सोऽस्तु मन्त्री निश्चयेन ततस्तां करिणीं वरैः ॥ ८ ॥
वस्त्रलङ्कारभूषाद्यैः शोभयामासुरादरात् । तच्छुण्डायां रत्नमालां दत्त्वा तां मुमुचुस्तदा ॥ ९ ॥
ततस्ते नववाद्यानि वादयामासुरादरात् । तदा सा करिणी ग्रामाद्बहिस्तूर्णं ययौ शनैः ॥१०॥
अयोध्यायाःपथाऽयोध्यां ययौ देशान् विलंघ्य सा । तत्पृष्ठे सकलाः पौरा नानावाहनसंस्थिताः ॥११॥
ययुस्तूर्णं कौतुकेन कोटिशो मुदिताननाः । ततः सा करिणी गत्वाऽयोध्यां हट्टस्थितं तदा ॥१२॥
तं दूतं वरयामास येन पारायणं कृतम् । आनन्दरामचरितस्याहो तत्कौतुकं महत् ॥१३॥
बभूव सकलान् लोकान् ततस्तं मालयांकितम् । करिण्या मन्त्रिणं चक्रुस्ते पौरा ये समागताः ॥१४॥
तं निस्युः करिणीसंस्थं पत्नीपुत्रसमन्वितम् । स्वदेशे मन्त्रिणं चक्रुस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१५॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर संसारसे वन्दित राम जब सीता, पुत्रों और भ्राताओंके साथ धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे ॥ १ ॥ उसी समय एक दूतने अयोध्यापुरीमें रामके पास जाकर कहा कि हे कमललोचन राम ! अब आपकी सेवा न करके मैं तपस्या करना चाहता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिए तो अपने घर जाऊँ ॥ २ ॥ ३ ॥ रामने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह अपने घर चला गया । वहाँ पवित्र मनसे उसने नौ रात्रि तक इस कल्याणदायक आनंदरामायणका पाठ किया और बादमें घरसे बाहर निकला । उसी समय एक देशका राजा मर गया था ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसका पुत्र बालक था । सो उसके लिये किसीको मंत्री बनानेकी आवश्यकता पड़ी । अब पुरवासियोंमें मंत्रणा होने लगी कि किसको मंत्री बनाया जाय । कोई किसीको कहता कि अमुक मनुष्य अच्छा है, उसे मंत्री बना दिया जाय । किन्तु उसकी बात काटकर दूसरा कहता कि नहीं, वह बड़ा दुष्ट है । उसे मंत्री नहीं बनाया जा सकता । इस तरह परस्पर झगड़ा करते-करते यह निश्चय हुआ कि ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजाकी हथिनी अपनी सूँड़में माला लेकर जिसके गलेमें डाल दे, वही व्यक्ति राजकुमारका मंत्री बनाया जाय । तदनुसार अच्छे-अच्छे वस्त्र-आभूषण आदि पहिनाकर हथिनीको सुसज्जित किया गया और उसकी सूँड़में एक माला देकर उसे छोड़ दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद वे लोग हर्षसे बाजे बजाने लगे । वह हथिनी धीरे-धीरे नगरसे बाहर निकली ॥ १० ॥ वहाँसे चलकर वह अयोध्या पहुँची । उसके पीछे अनेक प्रकारके वाहनोंपर सवार होकर नागरिक लोग भी कौतुकवश बड़े वेगके साथ प्रसन्न मनसे अयोध्या तक चले आये । उस हथिनीने बाजारमें खड़े उस मनुष्यके गलेमें माला डाल दी जिसने नौ रात तक आनंदरामायणका पाठ किया था । उन लोगोंके लिये यह एक असाधारण कौतुककी बात हुई ॥ ११–१३ ॥ तब माला पहिने हुए उस दूतको लोगोंने राजकुमारका मंत्री चुन लिया । उसी हथिनीपर बिठाकर पत्नी-पुत्र समेत उसे अपने देश ले गये और राजकुमारके

ततः परस्परं श्रुत्वा राजदूताः सहस्रशः । नानादेशेषु सर्वत्र साकेतेऽपि तदा मुदा ॥१६॥
राजसेवां परित्यज्य जग्मुस्ते स्वगृहाणि हि । ततः सर्वे स्वगृहेष्वानन्दरामायणस्य च ॥१७॥
केचित्पारायणं चक्रुः केचित्तच्छ्रवणं मुदा । केचित्तत्पठनं वाऽपि केचिच्चक्रुश्च कीर्तनम् ॥१८॥
केचिच्चक्रुश्च व्याख्यानमेवं तन्निष्ठमानसाः । बभूवुः सकला दूताः कोटिशो जगतीतले ॥१९॥
तदा केन धनं लब्धं केन लब्धं महद्धनम् । केन राजपदं लब्धं केन लब्धं गृहं वरम् ॥२०॥
केन ग्रामाधिकारश्च केन लब्धा कृषिर्वरा । केन वृत्तिः शुभा लब्धा केन स्वर्गो मनोरमः ॥२१॥
केन लब्धं तु पातालं कैर्लोका विविधाः शुभाः । लब्धं कैश्चित्सूर्यपदं लब्धं स्वर्गं मनोहरम् ॥२२॥
केचिदिन्द्रपदं प्रापुः केचिदग्निपुरं गताः । केचित्ते धर्मराजस्य लोकं वा निर्ऋतेरपि ॥२३॥
वरुणस्याथ वायोश्च कुबेरस्येश्वरस्य च । लोकान् जग्मुस्तदा दूतास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२४॥
केचिज्जग्मुश्चद्रलोकं केचिद्ध्रुवपदं गताः । केचित्ते ब्रह्मलोकं च वैकुण्ठं चापि केचन ॥२५॥
एवं यथा यस्य पुण्यं दूतस्यान्यजनस्य च । आनन्दरामचरितपाठश्रवणसंभवम् ॥२६॥
तथा तस्य गतिर्जाता सद्य एवावनीतले । तदा कोऽपि न कस्यासीद्दूतो देशान्तरेष्वपि ॥२७॥
त्यक्त्वा सेवां समस्ताश्च राघवस्यापि ते गताः । रामं पृष्ट्वा गताः केचिदपृष्ट्वैव गताः परे ॥२८॥
एवं सर्वत्र देशेषु दूताभावोऽभवत्तदा । एकदा राघवं द्रष्टुं गन्तुं सर्वे नृपोत्तमाः ॥२९॥
सैन्यान्याकारयामासुः स्वीयानि तु पृथक्पृथक् । तदा कुत्रापि सैन्यानि ददृशुर्न नृपोत्तमाः ॥३०॥
आः किमेतदिति प्रोक्त्वा स्वसुहृद्भिः सुतादिभिः । ययुस्ते राघवं द्रष्टुं विस्मयाविष्टमानसाः ॥३१॥
तानागतान्नृपान् ज्ञात्वा तान्पुरो गन्तुमादरात् । आकारयत्स्वसैन्यानि न तदा प्राप लक्ष्मणः ॥३२॥

मन्त्रि-पदपर बिठा दिया। यह घटना एक अद्भुत प्रकारसे घट गयी ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ फिर क्या था, जब रामके दूतोंको यह खबर मिली तो अयोध्यापुरीके तथा अन्यान्य देशोंके हजारों दूत प्रसन्नतापूर्वक अपनी-अपनी नौकरी छोड़कर घर चले गये। घरपर कुछने आनन्दरामायणका पाठ करना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ कुछ इसे दूसरेके मुखसे सुनने लगे, कुछ इसका पारायण करने लगे और कुछ लोग इसके कीर्तनमें लग गये ॥ १८ ॥ कुछ लोग इसकी व्याख्या करने लगे और कुछने चारों ओरसे अपनी चित्तवृत्ति हटाकर इसी आनन्दरामायणमें लगा दी। इस तरह राजसेवा छोड़कर आनन्दरामायणका आराधन करनेवालोंकी संख्या संसारमें करोड़ोंके लगभग हो गयी ॥ १९ ॥ ऐसा करनेसे कुछको धन मिला, कुछको बहुत अधिक सम्पदा मिली, किसीको राज्यपद प्राप्त हुआ और किसीको अच्छा-सा घर मिला ॥ २० ॥ कुछको ग्रामका अधिकार मिला, किसीको अच्छी खेती मिली, किसीको सुन्दर जीविका मिली और किसीको मनोरम स्वर्गलोक प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ किसीको पाताललोक मिला और कुछ लोगोंको विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे लोक प्राप्त हुए और कुछ लोगोंको सूर्यलोक मिला ॥ २२ ॥ कुछ लोगोंको इन्द्रपद प्राप्त हुआ, कुछ अग्निलोकको गये, कुछ धर्मराजके लोक तथा कितने ही लोग निर्ऋतिलोकको चले गये ॥ २३ ॥ कुछ अरुणलोकको, कुछ कुबेरलोकको, कुछ चन्द्रलोकको, कुछ ध्रुवलोकको, कुछ ब्रह्मलोकको तथा कुछ लोग वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचे ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस तरह आनन्दरामायणके पाठसे उन दूतों तथा अन्य लोगोंको भी वे ही लोक प्राप्त हुए, जिनका जैसा पुण्य था। इस प्रकार पृथ्वीलोकमें सबकी शुभ गति प्राप्त हुई। उस समय अयोध्या तथा देशान्तरमें भी कोई सिपाही नहीं रहा ॥ २६ ॥ २७ ॥ सब रामकी भी सेवा त्याग-त्यागकर चले गये थे। उनमेंसे कुछ लोग तो रामसे पूछकर गये थे, कुछ बिना पूछे-जाँचे ही चले गये ॥ २८ ॥ इस तरह उस समय सारा देश दूतविहीन हो रहा था। एक बार संसारके जितने अच्छे-अच्छे राजे थे, वे सब रामचन्द्रजीसे मिलने जानेके लिये तैयार हुए। उन्होंने जब साथ चलनेके लिए सेना बुलायी तो पता चला कि सेना है ही नहीं ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह खबर पाकर राजाओंने कहा—आह! यह क्या हुआ? विस्मितभावसे वे अपने-अपने मित्रों और पुत्रोंको साथ लेकर अयोध्या आये ॥ ३१ ॥ जब अयोध्यामें लक्ष्मणको यह सम्वाद मिला तो

ततो निवेदयामास तद्वृत्तं राघवाय सः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्यासीद्विस्मयाविष्टमानसः ॥३३॥
सुहृज्जनैर्युतं बन्धुं लक्ष्मणं प्रेष्य पार्थिवान् । स्वपुरीमानयामास ते नेमू रघुनायकम् ॥३४॥
ततस्ते तस्थुः सदसि सेनावृत्तं न्यवेदयन् । रामोऽपि कथयामास स्वसेनावृत्तमादरात् ॥३५॥
तदा विहस्य श्रीरामः समाहूय निजं गुरुम् । पृष्टवान्मम सैन्यानि नृपाणां चापि वै गुरो ॥३६॥
किं जातानि क्व वै सन्ति तद्वदस्व सविस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा कृत्वा ध्यानं क्षणं गुरुः ॥३७॥
तदा प्राह सभामध्ये विहस्य रघुनन्दनम् । राम राम महाबाहो सर्वं वेत्सि त्वमेव हि ॥३८॥
यदि पृच्छसि मां राम तर्हि सर्वं वदाम्यहम् । शतकोटिमितं रामचरितं तव पावनम् ॥३९॥
वाल्मीकिना कृतं पूर्वं तन्मध्ये रघुनन्दन । आनन्दरामचरितं नवकांडसमन्वितम् ॥४०॥
तस्य श्रवणपाठाद्यैः सर्वसैन्येषु ये नराः । ते गतास्त्वत्पदं केचित्केचिल्लोकांतरादिषु ॥४१॥
न संति भुवि सैन्यानि सत्यं राम वचो मम । नवकाण्डमितं तच्च रम्यमानन्ददायकम् ॥४२॥
तस्यैतच्छ्रवणाद्विद्धि फलं रघुकुलोद्भव । येन ते हीनजातिस्था दृताश्च मुक्तिगामिनः ॥४३॥
सारकांडश्रवादेव संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकांडेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥४४॥
यागकांडेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकांडश्रवणादप्सरोभिर्विमोदते ॥४५॥
जन्मकांडेन चाप्नोति नरः पुत्रादिसंततिम् । विवाहकांडश्रवणाद्भुवि रम्यां स्त्रियं लभेत् ॥४६॥
राज्यकांडेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । कांडं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसेप्सितम् ॥४७॥
पूर्णकांडश्रवादेव ते पूर्णस्य पदं लभेत् । सर्वं तान्मानवैः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं भुवि ॥४८॥
सच्चिदानन्दरूपे ते लीनो भवति मानवः । एवं राम त्वया पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ॥४९॥
यदग्रेऽत्र चिकीर्षा ते तत्कुरुष्व रघूत्तम । इति रामं वसिष्ठस्तु यावत्प्राह नृपाग्रतः ॥५०॥

उन्होंने राजाओंकी अगवानी करनेके लिए सेना बुलवायी तो उन्हें भी सेना नहीं मिली ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणने रामको यह वृत्तान्त सुनाया तो राम भी भौंचक-से रह गये ॥ ३३ ॥ अन्तमें रामने भी अपने परिवारके लोगोंको भेजकर राजाओंकी अगवानी करायी । राजाओंने अपनी-अपनी सेनाका समाचार सुनाया । सो सुनकर रामने आदरपूर्वक अपना भी सब हाल कहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठको बुलवाया और हँसकर उनसे कहा—हे गुरो ! हमारा तथा इन राजाओंकी सेना कहाँ चली गयी है, सो विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आप स्वयं सब बातोंको जानते हैं ॥ ३६–३८ ॥ फिर भी यदि हमसे पूछ रहे हैं तो बतलाता हूँ । बहुत दिनों पहले महर्षि वाल्मीकिने सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके पावन चरित्रका वर्णन किया था । उसके मध्यमें नौ काण्डोंका आनन्दरामायण है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसका श्रवण तथा पाठ करनेसे आपकी सेनाके सारे सैनिकोंमेंसे कुछ तो आपके परमपद (वैकुण्ठ) को और कुछ अन्यान्य लोकोंको चले गये हैं ॥ ४१ ॥ हे राम ! आप मेरी इस बातको सच मानिए । इस समय संसारमें कोई भी सेना नहीं है । नौ काण्डोंवाला आनन्ददायक एवं रमणीक वह आनन्दरामायण है ॥ ४२ ॥ उसका श्रवण करनेसे नीच जातिवाले लोग भी मुक्तिपद प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४३ ॥ सारकाण्डके श्रवणसे प्राणी संसारसे मुक्त हो जाता है । यात्राकाण्डके श्रवणसे तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ यागकाण्डसे यज्ञोंका शुभ फल प्राप्त होता है । विलासकाण्डके श्रवणसे प्राणी स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ ४५ ॥ जन्म-काण्डके श्रवणसे पुत्रादि सन्तति पाता है । विवाहकाण्डको सुननेसे मनुष्य संसारमें सुन्दरी स्त्री पाता है ॥ ४६ ॥ राज्यकाण्डके सुननेसे प्राणी राज्यपद पाता है और मनोहरकाण्डके सुननेसे अपनी अभिलाषाके अनुसार सब वस्तुयें पा जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्णकाण्डके श्रवणसे पूर्णपद प्राप्त होता है और समस्त आनन्दरामायण श्रवण करके मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मामें लीन हो जाता है । हे राम ! आपने मुझसे जो पूछा, सो सब मैंने

तावद्भूम्यां हि किं जातं तच्छृणुष्व सविस्तरम् । गतिं श्रुत्वा तु दूतानां नानादेशेषु ये नराः ॥५१॥
तेऽपि सर्वे तदानन्दरामायणश्रवादिभिः । नानाविमानसंस्थास्ते ययुः स्वर्लोकमुत्तमम् ॥५२॥
शून्यं दृष्ट्वा निजं लोकं यमो विधिसमन्वितः । कैलासे शंकरं गत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
शिवः श्रुत्वा विहस्याथ यमेन केन दुर्गया । ययौ स वृषभारूढः साकेतं वेष्टितोऽमरैः ॥५४॥
शिवमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्य रघूद्वहः । सिंहासने शिवं देव्या निवेश्य पूजनं व्यधात् ॥५५॥
ससीतो ब्रह्मणश्चापि सुराणां च यमस्य च । एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा राघवं प्राह वै तदा ॥५६॥
राम राजीवपत्राक्ष यमं पश्य निरुद्यमम् । शून्या संयमनी जाताऽऽनन्दरामायणश्रवात् ॥५७॥
शून्योजातोऽस्तिभूलोकः खेऽवकाशो न दृश्यते । सर्वेषां तत्र वै वस्तुमग्रे किंचिद्विचारय ॥५८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा समाहूय रघूत्तमः । शत्रुघ्नं प्रेष्य वाल्मीकिं तस्मै वृत्तं न्यवेदयत् ॥५९॥
सोऽपि श्रुत्वा विहस्याथ राघवं वाक्यमब्रवीत् । येन मत्कवितानाशो न भविष्यति वै भुवि ॥६०॥
तथा सुखं च सर्वेषां तेन तत्कुरु राघव । तथेति राघवश्चोक्त्वा तदा वचनमब्रवीत् ॥६१॥
सप्तजन्मार्जितं पुण्यं ममार्चनसमुद्भवम् । यस्य स्यात्तस्य चानन्दरामायणकथारुचिः ॥६२॥
भविष्यति न सर्वेषां भवत्वत्र कदाचन । इति रामवचः श्रुत्वा सर्वे सन्तुष्टमानसाः ॥६३॥
ययुः स्वं स्वं पदं देवाः स्वं स्वं देशं नृपा ययुः । तदारभ्य विष्णुदास शतकोटिमिते शुभे ॥६४॥
रामायणे शिवेनोक्तमानन्दाख्यमिदं शुभम् । रामायण क्वचित्कुत्र कश्चिद्वेत्स्यति मानवः ॥६५॥
न भूम्यां सकला लोका वेत्स्यंति द्वापरे कलौ । सप्तजन्मार्जितं पुण्यं येषां वेत्स्यंति ते नराः ॥६६॥

कह सुनाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भविष्यमें आप जो कुछ करना चाहते हों, सो करते चलिए। इस प्रकार वसिष्ठ रामसे कह ही रहे थे, तब तक पृथ्वीमण्डलमें क्या हुआ सो कहते हैं। उन दूतोंकी गति सुनकर संसारमें जितने मनुष्य थे ॥ ५० ॥ वे अब आनन्दरामायणके पठन और श्रवणसे अनेक प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर उत्तम स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अपने लोकको शून्य देख यमराज ब्रह्माको साथ लेकर शंकरजीके पास पहुँचे और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५३ ॥ शिवजी यह समाचार सुनकर ब्रह्मा, पार्वती और यमराजको साथ ले तथा बहुतसे देवताओंसे वेष्टित होकर अयोध्यामें रामके पास गये ॥ ५४ ॥ जब रामको यह समाचार मिला कि शिवजी आये हैं तो प्रेमपूर्वक अगवानी करके पार्वतीके साथ शिवजीको एक दिव्य सिंहासनपर बिठाकर उनकी पूजा की ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा यमादि देवताओंकी भी पूजा की। थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा—॥ ५६ ॥ हे राजीवपत्राक्ष राम! सर्वथा निरुद्यम इन यमराजकी ओर निहारिए। आनन्दरामायणके श्रवणसे इनकी संयमनी पुरी सूनी हो गयी है ॥ ५७ ॥ भूलोक खाली हो चुका है और स्वर्गमें उन सबके रहनेके लिए कुछ जगह ही नहीं रह गयी है। अब उनको रहनेके लिए कोई और स्थान सोचिये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिवजीकी बात सुनकर रामने शत्रुघ्नको बुलाया और उनको यह समाचार सुनानेके लिये वाल्मीकिके पास भेजा ॥ ५९ ॥ शत्रुघ्न गये और वाल्मीकिको बुला लाये। रामके मुखसे यह वृत्तान्त सुना तो वाल्मीकि हँसकर कहने लगे—जिस तरह संसारमें मेरी कविताका नाश न हो ॥ ६० ॥ और सब लोग प्रसन्न भी रहें, ऐसा कोई उचित उपाय सोचकर करिये। रामने उनकी बात मान ली और बोले—॥ ६१ ॥ मेरा पूजन करते-करते जिनके पास सात जन्मोंका पुण्य एकत्रित होगा, उनकी ही रुचि आनन्दरामायण सुननेकी होगी ॥ ६२ ॥ भविष्यमें साधारण लोगोंकी रुचि ही इस ओर नहीं होगी। इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर सबका मन प्रसन्न हो गया ॥ ६३ ॥ तब देवतागण अपने-अपने लोकोंको तथा राजा लोग अपने-अपने देशोंको लौट गये। तभीसे हे विष्णुदास! शतकोटिरामचरितान्तर्गत इस आनन्दरामायणके विषयमें ऐसा हो गया कि कहीं-कहीं कोई ही कोई मनुष्य आनन्दरामायणको जानने लगा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ द्वापर और कलिमें तो बहुत ही कम लोग इसे जाननेवाले होंगे। क्योंकि उस समयसे यह नियम बन गया है कि रामचन्द्रके पूजनसे सात जन्मोंके पुण्य जब एकत्रित होंगे, तब आनन्दरामायणमें

तद्रामवचनाद्भूम्यां बभूव पूर्ववत्तदा । नाभूत्कस्य कदा मेधाऽऽनंदरामायणं प्रति ॥६७॥
सहस्रेषु नरः कश्चित्सप्तजन्मसु पुण्यवान् । आनन्दरामचरितं वेद स्तोत्रं न चापरः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे
उत्तरार्द्धे आनन्दरामायणमहिमावर्णनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

(रामका यमको उपदेश, सुमन्त्रका वैकुण्ठगमन और प्रजाको रामकी शिक्षा)

श्रीरामदास उवाच

एकदा संस्थितं रामं सभायां सेवकोऽब्रवीत् । राजराज महाराज रविवंशैकमण्डन ॥ १ ॥
सुमंत्रस्तेऽतिवृद्धः स मन्त्री नाकं गतः प्रभो । तत्पत्न्यस्तेन गन्तुं त्वामाज्ञां पृच्छन्ति राघव ॥ २ ॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा चांकतः खिन्नमानसः । शीघ्रं सुमन्त्रगेहे स ययौ यानेन राघवः ॥ ३ ॥
सुमन्त्रजन्मपट्टं तस्यायुःसंख्यां ददर्श सः । जन्मकालात्सहस्राणि नव नवशतानि च ॥ ४ ॥
नवनवतिवर्षाणि मासास्त्वेकादशैव हि । एकविंशद्दिनाश्चातिक्रांताः शेषा दिना नव ॥ ५ ॥
ज्ञात्वेत्थं रामचन्द्रः स तदा प्राह गुरुं प्रति । कृते युगे तु लक्षायुः सहस्रं द्वापरे स्मृतम् ॥ ६ ॥
शतवर्षं कलौ प्रोक्तं सहस्राणि दशैव च । त्रेतायां कथितं चायुस्तन्मद्राज्ये मृषा कृतम् ॥ ७ ॥
यमेन मामवज्ञाय मद्दण्डं लब्धुमिच्छता । दिनानि नव शेषाणि सति मे मन्त्रिणः कथम्॥ ८ ॥
यमेन नीतस्त्वद्यैव यमं बद्ध्वा नयाम्यहम् । सुमन्त्रं जीवयाम्यद्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा गरुडारूढः कोदण्डं कलयन् करे । वेगेन रघुनाथः स ययौ संयमनीं पुरीम् ॥१०॥
तावन्मार्गे सुमन्त्रं तं पाशबद्धं यमानुगः । गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा तान्सर्वांस्ताडयन्मुहुः ॥११॥
सुमंत्रं मोचयामास लिंगरूपधरं प्रभुः । तदा ते राघवं प्रोचुश्चापराद्धं तवाद्य किम् ॥१२॥

लोगोंकी रुचि होगी और तभी लोग इसे जानेंगे । तबसे रामके कथनानुसार किसीकी बुद्धि आनन्दरामायणकी ओर नहीं गयी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ क्योंकि हजारोंमें कहीं एक-आध मनुष्य ही सात जन्मोंका पुण्यवान् होगा और वही आनन्दरामायणको जान पायेगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयरचित-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे--एक बार राम अपनी सभामें बैठे थे । तभी एक सेवकने आकर कहा—हे राजराज ! हे सूर्यवंशके अलङ्कारस्वरूप महाराज ! आपके बूढ़े मन्त्री सुमन्त्र स्वर्ग चले गये । उनकी स्त्रियाँ सती होकर पतिका अनुसरण करनेके लिये आपकी आज्ञा चाहती हैं ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकारका सन्देश सुनकर राम एक रथपर सवार होकर सुमन्त्रके घर गये ॥ ३ ॥ वहाँ उन्होंने उनकी जन्मकुण्डली मँगाकर देखी, जिससे ज्ञात हुआ कि ९९९९ वर्ष ग्यारह महीना सुमन्त्रकी आयु थी । जिसमें सब तो बीत गये, केवल नौ दिन बाकी रह गये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा जानकर रामने गुरु वसिष्ठको बुलवाकर उनसे कहा कि सत्ययुगमें मनुष्यकी आयु लाख वर्षोंकी, द्वापरमें हजारकी, कलियुगमें सौ वर्षकी तथा त्रेतायुगमें दस हजार वर्षकी कही गयी है । सो यमराजने मेरे राज्यमें मेरा अपमान करके उस नियमका उल्लंघन किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि वह मेरे द्वारा दण्ड पाना चाहता है । मेरे मन्त्रीकी आयुमें अभी नौ दिन बाकी हैं तो यम उसे यहाँसे क्यों ले गया । मैं आज यमको बाँधकर लाता हूँ और सुमन्त्रको जिलाता हूँ । मेरा पराक्रम देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर राम गरुड़पर बैठे और धनुषका टङ्कोर करते हुए यमकी संयमनी पुरीको चल दिये । तब तक रास्ते ही में उन्होंने पाशबद्ध सुमन्त्रको ले जाते हुए कुछ यमदूतोंको देखा । देखते ही रामने यमदूतोंको मारकर लिंगरूपधारी सुमंत्रको छुड़ा लिया । तब यमदूतोंने विनयपूर्वक

अस्माभिश्चेदृशो दंडो यतोऽस्माकं कृतस्त्वया । तदा तान्राघवः प्राह दिनान्यान्युर्नवास्य हि ॥१३॥
वर्तन्ते शेषभूतानि कथमद्यैव नीयते । भविष्यन्ति दिनान्यग्रे यदा नव यमानुगाः ॥१४॥
तदाऽऽनेयः सुखेनायं न निषेधं करोम्यहम् । इति रामवचः श्रुत्वा तमूचुस्ते यमानुगाः ॥१५॥
अपूर्वमभवज्जन्म सुमन्त्रस्यास्य राघव । मातुर्योन्या बहिश्चास्य मुखं हस्तौ विनिर्गतौ ॥१६॥
पूर्वं ततोऽस्य दशमे दिवसे दैवयोगतः । उदरादीन्यधोऽङ्गानि पदांतानि शनैः शनैः ॥१७॥
विनिर्गतानि श्रीराम सुमन्त्रै रक्षितो बुधैः । यस्माज्जन्मन्ययं तस्मात्सुमंत्राख्याऽस्य मार्पिता१८॥
अतः पूर्वदिनारभ्य संख्ययाऽऽयुः प्रपूरितम् । अस्य तु तद्दिनारभ्य संख्यया दिवसा नव ॥१९॥
शेषभूताश्च भवता कीर्त्यन्ते ये रघूत्तमाः । अतोऽस्माकं नापराधः संदिग्धं जन्म चास्य हि॥२०॥
वृथाऽयं नीयते राम वृथा शिक्षाऽपि नः कृता । इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्राह यमानुगान् ॥२१॥
अस्य सोत्यदिनो ज्ञेयोऽप्रथमो हि यमानुगाः । यस्मिन् दिने सुप्रसूतिरभवच्चास्य मातृकात् ॥२२॥
उत्साहदिवसो ज्ञेयः स एव जातकं तथा । तस्मिन्नेव दिनेऽस्यात्र कृतं पित्रा द्विजोत्तमैः॥२३॥
ज्योतिर्विदा जन्मपत्रे स एव लिखितो दिनः । अतः शेषदिनाः सत्यं ज्ञेयास्तस्यायुषो नव ॥२४॥
अतो युष्माभिर्गन्तव्यं नेयोऽयं दशमे दिने । पुनरागत्य सान्निध्यान्मे निषेधं करोमि न ॥२५॥
इति रामवचः श्रुत्वा तूष्णीमेव यमानुगाः । साश्रुनेत्राश्च छिन्नांगा यमराजं शनैर्ययुः ॥२६॥
रामोऽपि परिवर्त्याथ ययौ स्वनगरीं प्रति । स्त्रीभिर्नीराजितो मार्गे विवेश मन्त्रिणो गृहम् ॥२७॥
तावत्सर्वान्प्रमुदितान्सुमत्रेण समन्वितान् । ददर्श रामचन्द्रः स तावद्दृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥२८॥
प्रणनाम सुमन्त्रः स पूजयामास राघवम् । ततो रामो ययौ गेहं सर्वे प्रमुदिताननाः ॥२९॥
दिनानि नव शेषायुर्ज्ञात्वा दानादिकं सुधीः । चकार प्रत्यहं भक्त्या सुमन्त्रो राघवाज्ञयाः ॥३०॥

कहा—हमने आपका क्या अपराध किया था, जिसके लिए आपने हमें ऐसा दण्ड दिया ? रामने कहा कि अभी इसके जीवनके नौ दिन बाकी हैं ॥ १०–१३ ॥ तब तुम आज ही इसे क्यों लिये जा रहे हो ? जब इसके दिन पूरे हो जायँ, तब आकर आनन्दपूर्वक ले जाना। तब मैं भी कुछ नहीं बोलूँगा। इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर यमके अनुचर कहने लगे–॥ १४ ॥ १५ । हे राघव ! इसका जन्म भी एक अपूर्व प्रकारसे हुआ था। पहिले दिन माताकी योनिसे इसके दोनों हाथ तथा मुख बाहर निकल आया था। तदनन्तर दसवें दिन धीरे-धीरे इसके और अङ्ग निकले थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ अच्छे मंत्रोंसे पण्डितोंने इसकी रक्षा कर ली थी। अतएव इसका सुमन्त्र नाम पड़ा था ॥ १८ ॥ इसके पूर्व दिनसे अर्थात् जिस दिन इसका हाथ तथा मस्तक बाहर आया, उस दिनसे लेकर आज तकमें इसकी आयु समाप्त हो गयी। आप जो इसके नौ दिन बाकी बतलाते हैं, वे संदिग्ध हैं। इसलिए हे राम ! हमारा कुछ दोष नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ आप व्यर्थ इसे छीने लिये जाते हैं, हमको व्यर्थ आपने मारा भी है। उनकी बात सुनकर यमदूतोंसे रामने कहा—॥ २१ ॥ हे यमानुचर ! वह अन्तका दिन अर्थात् जिस दिन माताके गर्भसे इसका अच्छी तरह जन्म हुआ है, वही जन्मका दिन माना जायगा ॥ २२ ॥ जिस दिन इसके जन्मका उत्सव मनाया गया है, वास्तव-में वही जन्मदिन है। उसी रोज इसके पिता तथा ज्योतिषियोंने इसका जन्म लिखा है। इसलिए अभी इसके नौ दिन बाकी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम लोग जाओ और दसवें दिन आकर इसे ले जाना। तब मैं तुम लोगोंको नहीं रोकूँगा ॥ २५ ॥ रामकी बात सुन और छिन्नअङ्ग होकर आँखोंमें आँसू भरे हुए वे दूत यम-लोकको लौट गये ॥ २६ ॥ राम भी लौटकर अयोध्या चले आये। वहाँ स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी और राम सुमन्त्रके घर गये ॥ २७ ॥ वहाँ सब लोगोंको सुमन्त्रके साथ प्रसन्न देखा। सुमन्त्रने रामको देखते ही प्रणाम किया और उनकी पूजा की । इसके बाद राम अपने भवन गये । तबसे सब लोग परम प्रसन्न रहे ॥ २८ ॥ २९ ॥ सुमन्त्रने अपने जीवनके केवल नौ दिन बाकी जानकर रामके आज्ञानुसार खूब दान-पुण्य

अथ ते यमदूताश्च साश्रुनेत्राः समागताः । उष्णीषाणि करैः क्रोधादास्फाल्य भुवि चाब्रुवन् ॥३१॥
कथं करोष्यधिकारं तवाज्ञाकारिणां त्विमाम् । दृष्ट्वाऽवस्थां न लज्जा ते जायते हृदये यम ॥३२॥
ताड्यास्माकं राघवेण सुमंत्रो मोचितः पथि । दिनानि नव शेषायुः पूर्त्यर्थमधुना वयम् ॥३३॥
देहत्यागं जले कुर्मो न जीविष्याम भो यम । तद्दूतवचनं श्रुत्वा प्रज्ज्वाल यमस्तदा ॥३४॥
प्राह दूतानथ रामं बद्ध्वा दण्डं करोम्यहम् । चोदनीयानि सैन्यानि देवेन्द्रं सूचयाम्यहम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा त्वरितो गत्वा वृत्तमिंद्रं न्यवेदयत् । पुनरिंद्रं यमः प्राह साहाय्यं क्रियतां मम ॥३६॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा देवेंद्रो यममब्रवीत् । किं भ्रांतोऽसि यमाद्य त्वं विष्णुना योद्धुमिच्छसि ३७॥
गच्छ तूर्णीं संयमनीं रामस्य किं करिष्यसि । तद्भिया हि पुरा दत्तौ मया तौ सुरपादपौ ॥३८॥
एवं तद्वचनं श्रुत्वा वह्निलोकं ययौ यमः । अग्निना भाषितस्त्वेवं निर्ऋतिं वरुणं तथा ॥३९॥
वायुं कुबेरमीशानं रविं चन्द्रं बुधं गुरुम् । शुक्रं शनैश्चरं राहुं केतुं भूमिसुतं ध्रुवम् ॥४०॥
प्रार्थयामास युद्धाय साहाय्यं क्रियतामिति । उत्तराणीन्द्रवत्सर्वे ददुर्भ्रान्तं यमं हि ते ॥४१॥
ततो गत्वा विधिं चापि पातालांतरवासिभिः । सप्तद्वीपवासिनश्च यमः संप्रार्थयन्नृपान् ॥४२॥
तेऽप्युचुर्न करिष्यामः साहाय्यं राघवाग्रतः । ततः क्रोधसमाविष्टः स्वसैन्येन समन्वितः ॥४३॥
रामेण सङ्गरं कर्तुमयोध्यां स यमो ययौ । स्वगणैः सह वेगेन महामहिषसंस्थितः ॥४४॥
अयोध्यां वेष्टयामास नवद्वारविराजिताम् । नवप्राकारसहितां शतघ्नीयन्त्रसंयुताम् ॥४५॥
नवभिः परिखाभिश्च समन्तात्परिवेष्टिताम् । दृढरत्नकपाटाढ्यां रत्नभित्तिविराजिताम् ॥४६॥
सरयूवेष्टितां रम्यां रविकोटिसमप्रभाम् । नानाप्रासादवृन्दैश्च पताकाध्वजशोभिताम् ॥४७॥

आरम्भ कर दिया ॥ ३० ॥ उधर वे यमदूत यमके आगे पहुँचे और अपनी पगड़ी जमीनमें फेंककर कहने लगे— ॥ ३१ ॥ हे यमराज ! तुम कैसे अपने अधिकारकी रक्षा करते हो ? अपने आज्ञाकारी हम सेवकोंकी यह दशा देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? ॥ ३२ ॥ रास्तेमें रामने मारकर सुमन्त्रको छुड़ा लिया । क्योंकि उसके जीवनके नौ दिन बाकी थे । राम वह नौ दिन पूरा कर लेनेपर सुमन्त्रको आने देंगे ॥ ३३ ॥ अब हम लोग जलमें डूबकर अपने प्राण दे देंगे । इस प्रकार दूतोंकी बात सुनकर यमराज मारे क्रोधके लाल हो गये ॥ ३४ ॥ उन्होंने दूतोंसे कहा—घबड़ाओ मत, आज ही रामको बाँधकर मैं उनकी इस धृष्टताका दण्ड दूँगा । तुम जाकर सेना तैयार करो । तबतक मैं इन्द्रको सूचित करता आऊँ ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर यमराज तुरंत इन्द्रके पास गये । उन्हें सारा हाल सुनाया और सहायता करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ यमराजकी बात सुनकर इन्द्रने कहा—यमराज ! क्या तुम पागल हो गये हो, जो विष्णुभगवान्‌के साथ युद्ध करना चाहते हो ? ॥ ३७ ॥ चुपचाप अपनी संयमनी नगरीको लौट जाओ । रामका तुम क्या कर लोगे ? उनसे डरकर मैंने अपने हाथोंसे पारिजात और कल्पवृक्ष इन दोनों देववृक्षोंको उठाकर दे आया था ॥ ३८ ॥ ऐसा वचन सुनकर यम अग्निलोक गये, उनसे सहायता माँगी तो अग्निने भी वैसा ही उत्तर दिया । इसके अनन्तर निर्ऋति, वरुण, ॥ ३९ ॥ वायु, कुबेर, ईशान, रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु तथा मङ्गललोक गये ॥ ४० ॥ सर्वत्र उन्होंने सहायताकी प्रार्थना की, किन्तु उस मतवाले यमराजको सबने इन्द्रके समान ही शुष्क उत्तर दिया ॥ ४१ ॥ तब यमराज लौटकर ब्रह्माके पास गये । पातालमें रहनेवाले राजाओं तथा सप्तद्वीपके राजाओंसे भी जाकर सहायताकी प्रार्थना की ॥ ४२ ॥ किन्तु उन्होंने भी कहा कि रामके विरुद्ध मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा । इसके बाद क्रोधाविष्ट होकर यमराज अपनी ही सेना लेकर रामके साथ युद्ध करने अयोध्या चले । उस समय उनके समस्त गण साथ थे और यमराज एक बड़े भारी भैंसेपर सवार थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने चारों ओरसे उस अयोध्या नगरीको घेर लिया । जिसमें नौ बड़े-बड़े फाटक थे और नौ ही खाइयाँ खुदी थीं । कितनी ही बन्दूकें और तोपें रक्खी थीं । जिनमें रत्नजटित कपाट लगे थे और रत्न ही की दीवार चुनी हुई थी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिनके उत्तर सरयू बह रही थी और करोड़ों सूर्यके प्रकाशकी नाईं जिसका

यमेन वेष्टितां दृष्ट्वा पुरीं रामो महामनाः । लवमाज्ञापयामास गच्छ योद्धुं यमेन हि ॥४८॥
लवस्तदा रथारूढो दुन्दुभीनां महास्वनैः ।
अयोध्याया बहिर्गत्वा चकार सङ्करं महत् ॥४९॥
तदा लवशराघातछिन्नदेहा यमानुगाः । निपेतुः क्षणमात्रेण कोटिशो रणभूमिषु ॥५०॥
तान्सर्वान्निहतान् दृष्ट्वा यमो महिषसंस्थितः । चकार तुमुलं युद्धं लवेन क्रोधभासुरः ॥५१॥
स्ववाणौघैर्यमः शीघ्रं रथं सूतं बलं धनुः ।
कवचं मुकुटं चापि चिच्छेद स लवस्य च ॥५२॥
तदा लवश्चातिक्रुद्धः स्वसैन्येन स्थित पुनः । चकार सङ्करं घोरं यमेनातिभयंकरम् ॥५३॥
तदाऽमरा विमानस्था ददृशुर्युद्धकौतुकम् । ततो लवः स्ववाणौघैर्महिषं मूर्छितं भुवि ॥५४॥
कृत्वा तं ताडयामास शतबाणैर्यमं जवात् ।
ततो यमोऽप्येतिक्रुद्धो यमदण्डं मुमोच तम् ॥५५॥
तं दण्डं मोचितं दृष्ट्वा ब्रह्मास्त्रं सन्दधे लवः । ब्रह्मास्त्रमागतं दृष्ट्वा यमदण्डो न्यवर्तत ॥५६॥
तदा यमोऽति विकलः पलायनपरोऽभवत् । ब्रह्मास्त्र तस्य पृष्ठं तद्ययौ कालानलप्रभम् ॥५७॥
तदा दृष्ट्वा रविः शीघ्रं स्वीयां भिन्नां प्रकल्प्य च ।
रथे मूर्तिं ययौ वेगात् प्रार्थयामास तं लवम् ॥५८॥
रे रे बाल यमं त्राहि चोपसंहारयाद्य हि । त्वयोत्सृष्टं ब्रह्मास्त्रं त्वमेवास्त्रविदां वरः ॥५९॥
त्वं मे वंशसमुद्भूतस्त्वयं मे तनयो यमः । कथं स्वपूर्वजं त्वद्य त्वं यमं हन्तुमिच्छसि ॥६०॥
चेदेको मूर्खतां यातः सर्वे मूर्खा भवन्ति न ।
शत्रुं रणात्परिभ्रष्टं वीरास्तं रक्षयन्ति हि ॥६१॥

प्रकाश था। उसमें नाना प्रकारके महल बने थे और वह पुरी बहुत-सी पताकाओं तथा ध्वजाओंसे अलंकृत थी ॥ ४७ ॥ यमराजसे घिरी अयोध्याको देखकर रामने लवसे कहा—तुम यमराजसे युद्ध करनेके लिए जाओ ॥ ४८ ॥ तब दुन्दुभीके विकराल निनादके साथ लव रथपर आरूढ़ होकर अयोध्याके बाहर आये और यमराजके साथ भयङ्कर युद्ध किया ॥ ४९ ॥ उस समय लवके बाणोंसे निहत होकर यमके करोड़ों अनुयायी क्षणमात्रमें धराशायी हो गये ॥ ५० ॥ उन सबोंको मरा देखकर क्रोधसे तमतमाये हुए यमराजने स्वयं लवके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५१ ॥ यमराजने अपने विकराल बाणोंकी वर्षासे शीघ्र लवके रथ, सारथी, धनुष, कवच तथा मुकुटको काट डाला ॥ ५२ ॥ तब अत्यन्त कुपित लवने एक दूसरे रथपर आरूढ़ होकर यमराजके साथ महाभयंकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५३ ॥ उस समय समस्त देवता अपने विमानोंपर आरूढ़ होकर समरक्षेत्रमें आये और वह युद्ध देखने लगे। इसके अनन्तर लवने अपने बाणोंकी वर्षासे यमराजके भैंसेको मूर्छित कर पृथ्वीपर लोटा दिया और वेगके साथ बाण चलाते हुए सौ बाणोंकी वर्षासे यमराजपर प्रहार किया। तब यमराजने अतिशय क्रुद्ध होकर लवपर यमदण्ड छोड़ा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यमदण्डको देखकर लवने ब्रह्मास्त्र चला दिया, जिससे यमदण्ड लौट पड़ा। तब यम विकल होकर भाग निकले और कालानलके समान ब्रह्मास्त्र उनके पीछे-पीछे चला ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उस ब्रह्मास्त्रको देखकर सूर्यने समझा कि इससे यम नहीं बच सकता। मेरा बेटा अवश्य मारा जायगा। तब सूर्यदेव स्वयं रथपर आरूढ़ होकर लवके पास आये और प्रार्थना करने लगे ॥ ५८ ॥ सूर्यने कहा—अरे अरे हे बच्चे! इस अस्त्रको लौटाकर यमको बचाओ। तुम्हींने इसे चलाया है और तुम्हीं इसका निवारण भी कर सकते हो। तुम अस्त्रविद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ५९ ॥ तुम हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हो और यम भी मेरा ही पुत्र है। क्या अपने पूर्वज यमको ही तुम मार डालना चाहते हो? ॥ ६० ॥ यदि एक लड़का मूर्ख हो गया तो क्या उसके साथ सब मूर्ख हो

इत्यादिनानावचनैः प्रार्थितो रविणा यदा ।
तदा लवोऽपि संहारं चकारास्त्रस्य ब्रह्मणः ॥६२॥
ततो लवं पुरस्कृत्य यमेन तपनः पुरीम् । विवेश रघुनाथस्य दर्शनार्थं मुदान्वितः ॥६३॥
तदा के देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । लवं ववर्षुरमरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६४॥
पौरनार्यो लवं मार्गे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । गोपुराट्टालसंस्थाश्च ददृशुस्त मुहुर्मुहुः ॥६५॥
नेदुर्नानासुवाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥६६॥
एवं नानासमुत्साहैः स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ।
ययौ स विजयी बालः प्रणनाम रघूत्तमम् ॥६७॥
रविमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्य रघूत्तमः । नत्वा रविं करे धृत्वा सभायां संविवेश ह ॥६८॥
ततः सिंहासने भानुं निवेश्य स्वीयपूर्वजम् । पूजयामास श्रीरामः षोडशैरुपचारकैः ॥६९॥
तदाऽब्रवीद्रविं रामः सभायां पुरतः स्थितः ।
पूर्वजस्त्वं क्षमस्वाद्य यल्लवेनापराधितम् ॥७०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं प्राह रविस्तदा । त्वन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा समुद्भूतो रघूत्तम ॥७१॥
मरीच्याद्या विधेः पुत्रा मरीचेः कश्यपः सुतः ।
कश्यपाच्च ममोत्पत्तिः पौत्रपौत्रस्त्वह तव ॥७२॥
क्षमस्व मम पुत्रेण यद्यमेनापराधितम् । एवं संप्रार्थ्य श्रीरामं चासने संन्यवेशयत् ॥७३॥
यमेन कारयामास रघुनाथाय वन्दनम् । तदा समाययुर्देवा नेमुः सर्वे रघूत्तमम् ॥७४॥
रामोऽपि सकलान्देवान्पूजयामास सादरम् ।
ततो रामाज्ञया चेन्द्रः सुधावृष्ट्या रणे मृतान् ॥७५॥
शीघ्रमुत्थापयामास सर्वान्वीरान्सवाहनैः । ततो रामो यमं प्राह यावद्राज्यं करोम्यहम् ॥७६॥

जायँगे। वीर लोग संग्रामभूमिसे भागे हुए शत्रुकी भी रक्षा ही करते हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार कितनी ही बातोंसे सूर्यके प्रार्थना करनेपर लवने ब्रह्मास्त्रका सम्वरण कर लिया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर लवको आगे करके यमराजके साथ-साथ सूर्य रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिए हर्षपूर्वक अयोध्या नगरीमें गये ॥ ६३ ॥ उस समय देवताओंने अपने बाजे बजाये, लवपर फूलोंकी वर्षा की और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ६४ ॥ पुरवासिनी स्त्रियें भी रास्तेमें कोठेपरसे फूल बरसाती हुई बार-बार लवको निहार रही थीं ॥ ६५ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे, गणिकायें नाचने लगीं और मागध, गन्धर्व तथा किन्नरगण स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ इस तरह अनेक उत्सवोंके साथ रास्तेमें आरती उतरवाता हुआ वह विजयी बालक लव रामके पास पहुँचा और प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ रामने सूर्यभगवानका आगमन सुनकर उनकी अगवानी की, प्रणाम किया और हाथ पकड़कर सभाभवनमें ले गये ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर अपने पूर्वज सूर्यको रामने सिंहासन-पर बिठलाया और षोडशोपचारसे उनकी पूजा की ॥ ६९ ॥ फिर रामने सूर्यभगवान्‌से कहा—आप हमारे पूर्वज हैं। अतएव लवने जो कुछ अपराध किया हो, सो क्षमा कीजिये ॥ ७० ॥ रामकी ऐसी बात सुनकर सूर्यने भगवान्‌से कहा—हे रघूत्तम! आपही के नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे और उनसे मरीचि आदि उत्पन्न हुए। मरीचिसे कश्यप हुए और कश्यपसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ। अतएव मैं आपके पौत्रका पौत्र हूँ ॥७१॥ ॥ ७२ ॥ हमारे पुत्र यमने जो अपराध किया हो, सो क्षमा करिये। इस प्रकार विनय करके सूर्यने रामको आसनपर बिठलाया और यमसे प्रणाम करवाया। इसके बाद समस्त देवतावृंद वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने रामचन्द्रजीकी वन्दना की ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ रामने भी सादर सब देवताओंकी पूजा की। इसके बाद राम-की आज्ञासे इन्द्रने संग्राममें मरे हुए लोगोंपर अमृतकी वर्षा की और वाहनसमेत समस्त वीरोंको उठा-

तावत्त्वया तु पूर्णायुर्नरो नेयो न चेतरः ।
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्याह यमस्तदा ॥७७॥
ततः प्राप्ते सुदशमे दिने स्त्रीभिर्विगाह्य सः । सुमन्त्रो राघवं नत्वा तदग्रे जीवितं जहौ ॥७८॥
ततः स दिव्यदेहाभिः स्वस्त्रीभिर्दिव्यदेहधृक् ॥७९॥
सुमन्त्रः पूजितः सर्वैर्विमाने संस्थितो बभौ । रामाग्रे मरणादेव सुरैः सर्वत्र वेष्टितः ॥८०॥
ततः दृष्ट्वा रवी रामं यमेन स्वस्थलं ययौ ।
ययौ सुमन्त्रः स्वस्त्रीभिर्वैकुण्ठं निर्जरा दिवम् ॥८१॥
रामः सुमन्त्रपुत्रेण तत्क्रियादि सुमन्तुना । कारयित्वा यथाशास्त्र तत्पदे तं न्यवेशयत् ॥८२॥
ततो रामो लक्ष्मणेन पृथिव्यां घोषयन्मुहुः ।
गजन्यस्तां दुन्दुभिं स्वां पताकाध्वजशोभिताम् ॥८३ ।
तथेति लक्ष्मणश्चापि दूतानाज्ञापयत्तदा । दूतास्तेऽथ गजारूढाः सप्तद्वीपान्तरेषु हि ।८४॥
रामाज्ञां श्रावयामासुर्जनान्दुन्दुभिनिःस्वनैः । अपूर्णायुर्मृतः कश्चिन्नेतव्यो राघवं प्रति ॥८५॥
पौराणिकाः स्थापनीया गेहे ग्रामे पृथक् पृथक् ।
नित्यनैमित्तिकं कर्म न त्याज्यं वै कदाचन ॥८६॥
नावमान्या भूसुराश्च द्वेषः कार्यो न कस्यचित् । हव्यं कव्य सदा देयं दण्डनीयाश्च तस्कराः ॥८७॥
शासनीया दुराचारतत्परा ये जना भुवि । वन्दनीया सदा माता वन्दनीयः सदा पिता ॥८८॥
पूजनीयाः सदा देवाः कार्यो धर्मो निरन्तरम् ।
चैत्रस्नानं सदा कार्यमयोध्यायामथापि वा ॥८९॥
रामतीर्थेषु सर्वत्र कार्या धर्मा विशेषतः ।
द्वारकां सदा गत्वा कार्यं वैशाखमज्जनम् ॥९०॥
ऊर्जे काश्यां पञ्चनदे स्नातव्यं विधिपूर्वकम् । गत्वा प्रयागं प्रत्यब्दं कर्तव्यं माघमज्जनम् ॥९१॥

कर खड़ा किया । तदनन्तर रामने यमराजसे कहा कि जबतक मैं पृथ्वीपर शासन करता रहूँ, तबतक तुम उन्हीं मनुष्योंको अपने लोकमें ले जाओ, जिनकी आयु पूर्ण हो गयी हो और किसीको नहीं । रामकी बात सुनकर यमराजने कहा कि "ऐसा ही होगा" ॥ ७५–७७ ॥ इसके पश्चात् दसवें दिन स्त्रियोंको साथ लेकर सुमन्त्रने रामको प्रणाम करके उनके सामने ही प्राण त्याग किया ॥ ७८ ॥ सुमन्त्रकी स्त्रियोंने भी उसी समय प्राण त्याग दिया और उन स्त्रियोंके साथ दिव्यरूप धारण करके सुमन्त्र सब लोगोंसे पूजित होते हुए विमानपर बैठकर अतिशय शोभित हुए । रामके समक्ष मरनेसे वे समस्त देवताओंके साथ दिव्यलोकको गये ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ इसके पश्चात् सूर्य भी रामसे आज्ञा लेकर यमके साथ लौट पड़े । रामने सुमन्त्रके पुत्र सुमन्तुके हाथों सुमंत्रकी क्रिया करवायी और पिताके आसनपर उसी पुत्रको बिठाला ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर रामने लक्ष्मणको पृथ्वीतलमें इस बातकी घोषणा करनेकी आज्ञा दी ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणने भी "बहुत अच्छा" कहकर दुन्दुभी बजानेवालोंको आज्ञा दे दी । वे हाथीपर सवार हो तथा सातों द्वीपोंमें जा-जाकर नगाड़े बजाते हुए रामकी आज्ञा सुनाने लगे । उन्होंने कहा—राजा रामचन्द्रका आदेश है कि यदि मेरे राज्यमें कोई मनुष्य बिना आयु पूर्ण हुए ही मरे तो उसे मेरे पास ले आया जाय ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ घर-घर तथा गाँव-गाँवमें पुराणोंको जाननेवाले पौराणिक रक्खे जायँ । कोई मनुष्य अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणोंका कोई अपमान न करे, कोई किसीके साथ द्वेषभाव न रक्खे, कोई किसीके द्रव्यको न ले और चोरोंको दण्ड दे ॥ ८७ ॥ जो लोग दुराचारी हों, उनपर कड़ा शासन किया जाय । धर्म-कर्म सदा होता रहे । अयोध्यामें अथवा किसी अन्य रामतीर्थमें जाकर लोग चैत्रस्नान किया करें ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ विशेषतः

चातुर्मास्यव्रतादीनि कर्तव्यानि व्रतानि हि । प्रत्यंगणेषु तुलसी पूजनीया हि सर्वदा ॥९२॥
न निराकरणीयोऽत्र त्वतिथिश्च कदाचन ।
न विप्रयाञ्चा कर्तव्या मृषा क्वापि कदाचन ॥९३॥
यदीच्छेत्स ततो देयं सर्वस्वं ब्राह्मणाय वै । ग्रामे गृहे क्वचिन्नैव कलहं तु समाचरेत् ॥९४॥
सदा गुरुर्वन्दनीयः कर्तव्यं श्रवणं सदा । प्रातःस्नानं सदा कार्यं होतव्या विधिनाऽग्नयः ॥९५॥
कार्यो जपः शंकरस्य ध्येयो नित्यं महेश्वरः । एकांते हि तपः कार्यं द्वाभ्यामध्ययनं तथा । ९६॥
त्रिभिर्गीतानि कार्याणि चतुर्भिर्विचरेत्पथि ।
परदाररतिस्त्याज्या नावलोक्याऽन्यकामिनी ॥९७॥
परलक्ष्म्याः स्पृहा कार्या न नरैश्च कदाचन । तीर्थं विना पुण्यकाले न स्नातव्यं गृहेष्वपि ॥९८॥
न द्वेष्या गणका वैद्यास्ते पोष्याश्च पुरे पुरे । न वेश्यागमनं कार्यं न दासीं स्पृहयेद्धृदि ॥९९॥
नित्यकर्म यथाकाले कर्त्तव्य सर्वदा नरैः ।
नावमान्या हि गुरवः परनिंदां न कारयेत् ॥१००॥
जलाशया वने कार्या रोपणीया नगाः पथि । धर्मशाला पृथक्कार्या न नग्नां वीक्षयेद्वधूम् ॥१०१॥
अन्नसत्राणि कार्याणि पुरे ग्रामे वने तथा । प्रकुर्वन्तु वने रक्षां मार्गस्थानां वनेचराः ॥१०२॥
भयं माऽस्तु वने क्वापि निशायां मार्गगामिनाम् ।
वैश्येभ्यस्तु करो ग्राह्यो नेतरेषां कदाचन ॥१०३॥
पादयोः पादुके घृत्वा तीर्थं देवं गुरुं प्रति । गोष्ठं वृन्दावनं होमशालां गच्छेन्न सर्वदा ॥१०४॥
पारायणानि ग्रंथानां वेदानां च सदा नरैः ।
कर्तव्यानि तु निष्कामं मासकार्याणि कारयेत् ॥१०५॥

लोग धर्म-कर्म करते रहें। द्वारकापुरीमें जाकर लोग वैशाखस्नान करें ॥ ९० ॥ कार्तिक मासमें काशीकी पञ्चगङ्गामें और प्रतिवर्ष माघमासमें प्रयाग जाकर स्नान करें ॥ ९१ ॥ चातुर्मास आदिका व्रत करते रहें। हर एक घरके आँगनमें तुलसीकी पूजा होती रहनी चाहिए ॥ ९२ ॥ मेरे राज्यमें कभी कोई आये हुए अतिथिका अनादर न करे । कभी कोई किसी ब्राह्मणकी माँग व्यर्थ न करे ॥ ९३ ॥ यदि वह चाहता हो तो ब्राह्मणके लिये अपना सर्वस्व दे डाले। किसी घर या गाँवमें कोई लड़ाई-झगड़ा न करे ॥ ९४ ॥ सदा गुरुकी वन्दना करे, उनसे सर्वदा धर्मग्रंथ सुनता रहे, नित्य प्रातःस्नान करे और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करता रहे ॥ ९५ ॥ नित्य शिवजीका ध्यान और जप करता हुआ एकान्तमें तपस्या करे। दो व्यक्ति साथ बैठकर अध्ययन करें, तीन मनुष्य साथ बैठकर गायें-बजायें और चार मनुष्य साथ होकर टहलने निकलें। दूसरोंकी स्त्रीसे प्रेम न करें, दूसरेकी स्त्रीको देखें भी नहीं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ दूसरेकी लक्ष्मीको पानेकी इच्छा न करे, किसी पर्वकालके समय घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थस्थानपर चला जाय ॥ ९८ ॥ ज्योतिषी तथा वैद्यके साथ कोई बिगाड़ न करे। यदि किसी दूसरे गाँवमें भी रहते हों तो उनका पालन करे। न कोई वेश्यागमन करे और न दासीसे प्रेम करे ॥ ९९ ॥ ठीक समयपर लोग अपने नित्यकर्म करते रहें। गुरुजनोंका अपमान कभी न करे और न दूसरोंकी निन्दा ही करे। वनोंमें जलाशय बनवाये। अलग-अलग धर्मशालायें बनवाये। कभी नङ्गी स्त्रीको न देखे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ पुर, ग्राम और वनोंमें जहाँ-तहाँ अन्नक्षेत्र खोले। वनचर मनुष्य वनमें पहुँचे हुए पथिकोंकी रक्षा करें ॥ १०२ ॥ रात्रिके समय भी चलनेवालोंको वनमें किसी प्रकारका भय न रहे। केवल वैश्योंसे कर लिया जाय और लोगोंसे नहीं ॥ १०३ ॥ पाँवमें जूता पहिनकर किसी तीर्थस्थान देवता तथा गुरुके पास न जाय। गोशाला तथा तुलसीकी बगीचीमें भी जूता पहिनकर न जाय ॥ १०४ ॥ धर्मग्रंथों और वेदोंका पारायण सर्वदा सब लोग निष्कामभावसे करते रहें ॥ १०५ ॥

यतयो वन्दनीयाश्च भोजनीया गृहे गृहे । यतये कमण्डलवः कौपीनं पादुकां तथा ॥१०६॥
वंशदण्डाः सदा देयाः सदा तोष्याः सुभाषणैः ।
न खेदयेद्वधूं स्वीयां दिने निद्रां न कारयेत् ॥१०७॥
हरिदिन्यां न भोक्तव्यमुपोष्या च चतुर्दशी ।
कृष्णपक्षभवा तस्यां रात्रौ कार्यं शिवार्चनम् ॥१०८॥
नानामहोत्सवाद्यैश्च यथाविधिपुरःसरम् । अष्टमी कृष्णपक्षस्य सदोपोष्या शुभा तिथिः ॥१०९॥
देवालयेषु कर्तव्या बलयो भक्तिपूर्वकाः । नानापक्वान्ननैवेद्यान्देवेभ्यश्च समर्पयेत् ॥११०॥
धेनुदानं वाजिदानं गजदानं प्रकारयेत् । भूसुरेभ्यः प्रदेयानि गृहदानानि सादरम् ॥१११॥
गेहे गेहे सदा कार्यं धेनुविप्रप्रपूजनम् ।
वसन्ते चन्दनं देयं छत्राणि व्यजनानि च ॥११२॥
पानकं जलकुंभांश्च कार्यं पादावनेजनम् । दधि तक्रं हि जम्बीरं देयं विप्रेभ्य आदरात् ॥११३॥
कार्तिके दीपदानानि रात्रौ जागरणानि च । तुलसीसेवनं धात्रीछायामाश्रित्य भोजनम् ॥११४॥
गीतनृत्यादिकरणं विष्णोरग्रे निरन्तरम् ।
त्रिपुरारेः समीपे हि पौर्णिमायां हि कार्तिके ॥११५॥
करणीयो महादाहो घृताक्तवर्तिकादिभिः । माघे देयानि काष्ठानि कंबलांश्चित्रितास्तथा ॥११६॥
चैत्रे ताम्बूलदानं च तथा रम्भाफलानि च । उर्वारुकानि देयानि चन्दनं दधितक्रकम् ॥११७॥
आदर्शदानं कस्तूरीदानं जातीफलस्य च । एलाकर्पूरदानानि मधुमासि प्रकारयेत् ॥११८॥
पदाऽग्रजं न स्पृशेच्च न पादं घर्षयेत्पदा । द्वाभ्यां कराभ्यां कंडूतिं मस्तकस्य न कारयेत् ॥११९॥
दातव्यः करभारो हि विना विप्रैर्नृपाय हि ।
नोपेक्षणीयो राज्ञश्च जनैर्दण्डः कदाचन ॥१२०॥
माननीयाश्च श्वशुराः पोष्याः पाल्याः सदैव हि । सुहृदस्तोषणीयाश्च मित्रे कोपं न कारयेत् ॥१२१॥

महात्माओंकी वन्दना की जाय और घर-घर भोजन कराया जाय। उन्हें कमण्डलु, कौपीन, चरणपादुका आदि दान दिया जाय ॥ १०६ ॥ उन्हें बाँसकी छड़ी भी दे और मीठी-मीठी बातोंसे प्रसन्न करे। कभी कोई अपनी स्त्रीको दुःखित न करे और दिनमें शयन न करे। एकादशीको अन्नका आहार न करे और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका भी व्रत किया करे। उस रात्रिमें लोग उत्साहसे शिवजीका पूजन करें ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमीका भी व्रत सब लोग किया करें। क्योंकि यह बड़ी शुभ तिथि है ॥ १०९ ॥ देवालयोंमें भक्तिपूर्वक पूजन करके विविध प्रकारके नैवेद्य देवताओंको समर्पित किये जायँ ॥ ११० ॥ लोग समय-समयपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि दान आदरपूर्वक ब्राह्मणोंको दिया करे ॥ १११ ॥ घर-घरमें सदा गौओं तथा विप्रोंका पूजन होता रहना चाहिये। वसन्त ऋतुमें चन्दन, छत्र तथा पंखेका दान करें ॥ ११२ ॥ पानी पीनेके लिये लोटा, जल भरनेके लिए घड़ा, पैर धोनेके लिए झारी, दही, मट्ठा और नीबूका दान ब्राह्मणोंको दे ॥ ११३ ॥ कार्तिक मासमें दीपदान, रात्रिको जागरण, तुलसीकी सेवा और आँवलेकी छायामें भोजन करे ॥ ११४ ॥ निरन्तर विष्णुभगवान्‌के सामने नाचे-गाये। कार्तिककी पूर्णिमाको शिवजीके सामने घीमें भीगी बत्ती आदिका महादान करे। माघ मासमें लकड़ियों तथा रङ्ग-बिरङ्गे कम्बलका दान करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ चैत्रमें ताम्बूल तथा केलेके फल दान करके अगर, चन्दन, दही और मट्ठा आदि दे ॥ ११७ ॥ वैशाखके महीनेमें शीशा, कस्तूरी, जायफल, इलायची तथा कपूरका दान करे ॥ ११८ ॥ पैरसे बड़े भाईको न छुए, पैरसे पैर न रगड़े, दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये ॥ ११९ ॥ ब्राह्मणके अतिरिक्त सब लोग राजाको राज्यकर देते रहें। राजाके दिये दण्डकी उपेक्षा न करे ॥ १२० ॥ अपने-अपने श्वशुरकी इज्जत करे

न कर्तव्यो रिपूणां च विश्वासश्च कदाचन ।
कार्पण्यं नैव कर्तव्यं दानकर्मसु सर्वदा ॥१२२॥
न द्यूतेन कदा कार्या क्रीडा दारिद्र्यसूचिनी ।
न श्रोतव्या कदा वार्ता मद्यानां च नरोत्तमैः ॥१२३॥

तीर्थयात्रा सदा कार्या कृच्छ्रकादि समाचरेत् । कार्यं लिंगार्चनं नित्यं कोटिलिंगानि श्रावणे ॥१२४॥
कर्तव्यानि नरैर्भक्त्या सदैवापि च कारयेत् । लघुरुद्रान्महारुद्रानतिरुद्रान्समाचरेत् ॥१२५॥

दानानि पुस्तकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम् ।
कीर्तनानि च कार्याणि देवागारेषु वा गृहे ॥१२६॥

साधूनां पूजनं कार्यं नमस्कार्यः सदा रविः । ग्रामे ग्रामे वायुपुत्रप्रतिमाः सर्वदा पृथक् ॥१२७॥
सिंदूराक्ताश्च तैलाक्ताः पूजनीया निरन्तरम् । चतुर्थ्यां गणराजस्य पूजनानि प्रकारयेत् ॥१२८॥

अर्पयेद्गणराजाय मोदकान्पूणपूरितान् ।
पञ्च खाद्यानि सिंदूरदूर्वादीन्यर्पयेत्सदा ॥१२९॥
सदाऽऽत्मचर्चा कर्त्तव्या स्तोत्रपाठान्प्रकारयेत् ।
गीतायाः पठन वेदानध्यापयेत्सदा ॥१३०॥

सदैव शांतिसूक्तानि पुण्यसूक्तान्यनेकशः । पुण्यं पुरुषसूक्तं च श्रीसूक्तादीनि वै पठेत् ॥१३१॥
सदा धर्मे मतिः कार्या कार्यो धनस्य सग्रहः । दुष्टबुद्धिः सदा त्याज्या पातकं परिमार्जयेत् । ३२ ।

ज्ञातव्यं चपल चायुः क्रूरा ज्ञयो यमो महान् ।
दारुणा नारकी पीडा स्मर्तव्या हृदि सर्वदा ॥१३३॥

गतस्तातो मृता माता गतश्च प्रपितामहः । पितामहो गतश्चति गमनं स्वं निरीक्षयेत् ॥१३४॥

गत यथाऽत्र बालत्वं तारुण्य च गतं यथा ।
यथा गच्छति वार्द्धक्यं स्मरध्वं यमशासनम् ॥१३५॥

और नौकरोंका सदा पालन करता रहे। अपने नातेदारोंको प्रसन्न रक्खे। मित्रपर कोप न करे॥ १२१ ॥ कभी भी शत्रुपर विश्वास न करे और दानादि कर्मोंमें कभी कृपणता न करे। कभी जुवा न खेले। क्योंकि यह दरिद्रताको पास बुलानेवाला रोग है। अच्छे लोग कभी मदिराकी बात भी न सुनें॥ १२२ ॥ १२३ ॥ सदा तीर्थोंकी यात्रा करे और कभी-कभी कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत भी किया करे। प्रतिदिन शिवलिंगका पूजन करें और श्रावणमासमें एक करोड़ शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा करे॥ १२४ ॥ बन पड़े तो सदा ऐसा करे। लघुरुद्र, महारुद्र एवं अतिरुद्र इन तीनों यज्ञोंको बराबर करता जाय॥ १२५ ॥ निरन्तर पुस्तकदान करे। घरमें अथवा देवालयमें जाकर प्रतिदिन कीर्तन करे॥१२६॥ सब लोग साधुओंका पूजन और प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करें। गाँव-गाँवमें हनुमान्‌जीकी मूर्तियाँ रक्खी जायँ॥ १२७ ॥ तेलसे मिला सिंदूर लगाकर नित्य उनकी पूजा की जाय। प्रत्येक चतुर्थी तिथिको गणेशजीका पूजन किया जाय॥ १२८ ॥ मोदक तथा पूरनपूरी आदि पकवान बनाकर गणेशजीको अर्पण करे और सिन्दूर-दूर्वा आदि भी चढ़ाये॥ १२९ ॥ प्रतिदिन आत्मज्ञानसम्बन्धी चर्चा, स्तोत्रपाठ, गीताका अध्ययन तथा वेदोंका अध्ययन-अध्यापन करता रहे॥ १३० ॥ नित्य शान्तिसूक्त तथा श्रीसूक्त आदिका पाठ किया करे॥ १३१ ॥ सदा अपनी बुद्धि धर्ममें स्थित रक्खे और धर्मका संग्रह करता चले। दुष्ट बुद्धिका परित्याग करे और किये हुए पापोंसे छूटनेका उपाय करता रहे॥ १३२ ॥ आयुको चंचल तथा यमराजको महाक्रूर समझे। नरककी दारुण पीड़ाओंका सदा स्मरण करता रहे॥ १३३ ॥ यह सोचता रहे कि पिताजी चले गये, माता मर गयी, पितामह और प्रपितामह भी चल बसे, अब हमारी बारी है। जिस तरह बाल्यकाल गुजर गया, तरुणाई बीत गयी, उसी तरह यह बुढ़ा-

गता दंता गते नेत्रे श्लथा जाता त्वगत्र हि । कृष्णकेशाः सिता जाता मृत्युर्ज्ञेयः पुरःस्थितः ॥१३६॥
दाने विलंबो नो कार्यः कार्यं चित्तं सुनिर्मलम् । तुषवच्च धनं देयं मा कार्पण्यात्प्ररक्षयेत् ॥१३७॥

एवं श्रीरामदूतास्ते सप्तद्वीपांतरस्थितान् ।
श्रावयित्वा राघवाज्ञां महादुंदुभिनिःस्वनैः ॥१३८॥
अयोध्यां स्वां ययुः सर्वे रामं वृत्तं न्यवेदयन् ।
संश्राविता तवास्माभिश्चाज्ञा सर्वान् जनान्मुहुः ॥१३९॥

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र दुंदुभीनां महास्वनैः । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽभवत्तदा ॥१४०॥
एव रामेण भूम्यां हि चरित्राणि महांति च । आचरितान्यनेकानि कस्तान्यत्र वदिष्यति ॥१४१॥

एवं शिष्य मया प्रोक्तं राज्यकांडं मनोरमम् ।
चतुर्विंशत्सुसर्गैश्च महामङ्गलकारकम् ॥१४२॥

राज्यकांडं नृपा यत्र पठन्ति भक्तितत्पराः । न ते राज्यात्परिभ्रष्टा भवन्ति हि कदाचन ॥१४३॥
राज्यकांडं महापुण्यं महामांगल्यदायकम् । ये शृण्वंति नरा भूम्यां ते मांगल्यं भजन्ति हि ॥१४४॥
एकैकवर्धितैः सर्गैरेकैकेन क्षयेन च । सप्तचत्वारिंशद्दिनैरनुष्ठानं सुसिद्धिदम् ॥१४५॥

आधिपत्यं नराः प्राप्य राज्यकांडं पठन्ति ये ।
आधिपत्यात्परिभ्रष्टा न भवन्ति कदाचन ॥१४६॥

राज्यकांडं पठित्वा तु रणे वादे जयो भवेत् । शरणं शत्रवः शीघ्रं यास्यत्येतच्छ्रुवादिना ॥१४७॥

आनन्दरामायणमध्यसंस्थं ये राज्यकांडं मनुजाः पठन्ति ।
राज्याच्च्युता राज्यपदं लभन्ते भवन्ति भ्रष्टा न तु ते पदस्थाः ॥१४८॥
आनंदरामाणमेतदुत्तमं तत्रापि कांडेषु विचित्रमुत्तमम् ।
श्रीराज्यकांडं परमं सुसौख्यदं सदाऽतिभक्त्या श्रवणीयमादरात् ॥१४९॥

वस्था भी चली जायगी, यह सोचकर यमके कठोर शासनका स्मरण करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ दाँत टूट गये, आँखोंसे कम सूझने लगा, शरीरके चमड़े ढीले पड़ गये और काले-काले बाल श्वेत हो गये। तब यह समझे कि अब मृत्यु सामने आकर खड़ी है ॥ १३६ ॥ दानमें विलम्ब न करे और अपना चित्त निर्मल रक्खे। भूसीकी तरह समझकर धनका दान करे। कंजूस बनकर उसकी रक्षा न करे ॥ १३७ ॥ इस तरह सातों द्वीपोंमें रहनेवालोंको रामकी आज्ञा सुनाकर वे दूत रामके पास लौट गये और उनको सब समाचार सुनाते हुए कहने लगे—हे राघव! हमने सप्तद्वीपके निवासियोंको दुन्दुभीकी गर्जनाके साथ आपकी आज्ञा सुना दी। उनकी बात सुनकर राम प्रसन्न हुए ॥ १३८–१४० ॥ इस प्रकार रामने इस पृथ्वीतलपर कितने ही बड़े-बड़े काम किये। उन सबको पूरी तरह बतलानेवाला कौन है? ॥ १४१ ॥ हे शिष्य! इस रीतिसे मैंने तुम्हें चौबीस सर्गोंमें महामङ्गलकारक मनोहारी राज्यकाण्ड सुनाया ॥ १४२ ॥ भक्तितत्पर होकर राजा लोग यदि इस राज्यकाण्डको पढ़ेंगे-सुनेंगे तो वे कभी भी अपने-अपने राज्यसे च्युत न होंगे ॥ १४३ ॥ यह राज्यकाण्ड बड़ा पवित्र और महामङ्गलदायक है। जो मनुष्य पृथ्वीतलपर इसे सुनेंगे, उनका सदा कल्याण होगा ॥ १४४ ॥ प्रतिदिन एक-एक सर्ग बढ़ाता हुआ और पूरा होनेपर एक-एक कम करता हुआ यदि इसका अनुष्ठान करे तो यह सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करता है ॥ १४५ ॥ कहींका आधिपत्य पाकर जो इसका पाठ करते हैं, वे अपने आधिपत्यसे कभी भी भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४६ ॥ राज्यकाण्डका पाठ-पूजन आदि करनेसे शत्रु शीघ्र अपनी शरणमें आ जाते हैं ॥ १४७ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस राज्यकाण्डको जो लोग पढ़ते हैं, वे यदि राज्यसे भ्रष्ट हो गये हों तो फिर राज्याधिकारी हो जाते हैं। फिर कभी वे उससे भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४८ ॥ पहले तो आनन्दरामायण ही उत्तम है, फिर उसके सब काण्डोंमें यह राज्यकाण्ड उत्तम है। यह हर तरह सुखदायक

राज्यस्थितैर्वा व्यवसायतत्परैः सदैव चैतच्छ्रवणीयमादरात् ।
उत्साहकाले व्रतबन्धमङ्गले विवाहकाले पठनीयमुत्तमम् ॥१५०॥
श्रीराज्यकांडं श्रुतिसौख्यदायकं पुण्येषु कालेषु पठन्ति ये नराः ।
लभंति सौख्यान्यतिमङ्गलानि ते गच्छंति विष्णोर्वरयानगाः पदम् ॥१५१॥
पुण्यं पवित्रं परमं विचित्रं श्रीरामचन्द्रस्य कथानकं सदा ।
भक्त्या मुनीनामपि मङ्गलप्रदं श्रोतव्यमेतत्पठनीयमादरात् ॥१५२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे उमामहेश्वरसंवादे तथा रामदासविष्णुदाससंवादे जमशिष्याकरणं सुमंत्रवैकुण्ठारोहणं प्रजोपदेशकरणं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

है। इसलिए इसको सादर श्रवण करना चाहिए ॥ १४९ ॥ कोई राजा हो या वाणिज्यमें लगा हो, उसे यह काण्ड सुनते रहना चाहिए। विशेषकर जब कोई विवाह-व्रतबन्ध आदि उत्साहका समय हो, तब इसे अवश्य सुने ॥ १५० ॥ सुननेमें सुख देनेवाले इस काण्डको जो किसी पवित्र समयमें पढ़ते या सुनते हैं, वे अंत समयमें विमानपर चढ़कर विष्णुलोकको जाते हैं ॥ १५१ ॥ परम पवित्र और अति विचित्र श्रीरामचन्द्रका यह कथानक मुनियोंको भी मंगलदाता है। अतएव सादर इसका पठन और श्रवण करना चाहिए ॥ १५२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

॥ इति राज्यकाण्डं उत्तरार्द्धं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं-

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

मनोहरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(लघुरामायण)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि यत्तत्त्वं वक्तुमर्हसि । वेदवाक्यैः पुरा प्रोक्तं नारदेन महात्मना ॥ १ ॥
रामायणं वाल्मीकये संक्षेपाच्चेति तेऽकथि । तावदेवार्थमादाय श्लोकरूपं वदस्व माम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । यत्पृष्टं च त्वया सर्वं तद्वदामि तवाग्रतः ॥ ३ ॥
नारदाद्वेदवाक्यैश्च यथा वाल्मीकिना श्रुतम् । तावदेवार्थमादाय तेन वाल्मीकिना पुरा ॥ ४ ॥
शतश्लोकमितं रामचरितं पापनाशनम् । शतकोटिमितायां स्वकवितायां मनोरमम् ॥ ५ ॥
आदावेवोक्तमेवास्मि तत्तवाग्रे वदाम्यहम् । शतकोटिमितं रम्यं लघुरामायणाह्वयम् ॥ ६ ॥
कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् । आरुह्य कविताशाखां वंदे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ७ ॥
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः । शृण्वन्रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि वेदवाक्योंका सारांश लेकर संक्षेपमें नारदजीने महर्षि वाल्मीकिसे कौन सी रामायण कही थी? उसी सार वस्तुको श्लोकरूपमें बनाकर वाल्मीकिने आपको सुनाया था, वह हमसे भी कहिए ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। अब सावधान होकर सुनो। तुमने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ३ ॥ जब वाल्मीकिजीने नारदके मुखसे वेदवाक्योंसे संकलित रामचरित्र सुन लिया, तब उसी अर्थको लेकर उन्होंने सौ श्लोकोंमें पापनाशक लघुरामायणकी रचना की और अपने रामायणके आदिमें उन्होंने उसी लघुरामायणको स्थान दिया। वही सौ श्लोकोंवाला लघुरामायण आज मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ४-६ ॥ कवितारूपिणी शाखापर बैठकर मीठे-मीठे अक्षरोंमें रामनामका गान करनेवाले वाल्मीकिरूपी कोकिलको मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥ कवितारूपी वनमें विहार करनेवाले तथा मुनियोंमें सिंह-सदृश वाल्मीकिकी रामकथारूपिणी गर्जनाको सुनकर संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो उत्तम गतिको न

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् । अतृप्तस्तं मुनिं वंदे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ९ ॥
गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् । रामायणमहामालारत्नं वंदेऽनिलात्मजम् ॥१०॥
अंजनीनंदनं वीरं जानकीशोकनाशनम् । कपीशमक्षहंतारं वंदे लङ्काभयङ्करम् ॥११॥
उल्लंघ्य सिंधोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लंकां नमामि तं प्रांजलिरांजनेयम् ॥१२॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं मनसा स्मरामि ॥१३॥
रामाय भद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥१४॥
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा । अनेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥१५॥

इति मंगलाचरणम्

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् । नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥
को न्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकः प्रियदर्शनः ॥ ३ ॥
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः । कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ४ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे । महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥
श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः । श्रूयतामित्युपामंत्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥
बहवो दुर्लभाश्चैते ये त्वया कीर्तिता गुणाः । मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥ ७ ॥

प्राप्त होता हो ? कोई नहीं ॥ ८ ॥ जो निरन्तर रामचरितरूपी अमृतसागरका पान करते हुए भी कभी नहीं तृप्त होने आते, ऐसे कल्मषरहित श्रीवाल्मीकि मुनिको मैं प्रणाम करता हूँ । विशाल समुद्रको जिन्होंने गौके खुर डूबने योग्य बनाया, राक्षसोंको मच्छड़ समझा और जो इस रामायणरूपिणी महामालाके रत्न हैं, उन हनुमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ अञ्जनीके सुपूत, जानकीके शोकनाशक, वानरोंके प्रभु, अक्षयकुमारके संहारकारी तथा लंकाके लिए भयावने वीर मारुतिको मैं वन्दना करता हूँ ॥ ११ ॥ जो खेल-खेलमें समुद्रकी जलराशिको लाँघकर लङ्का पहुँचे, वहाँ सीताके शोकरूपी अग्निको लेकर जिन्होंने उसीसे सारी लंकाको भस्म कर दिया, उन अञ्जनीनन्दनको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ १२ ॥ जिनमें मनके समान वेग है, वायुके सदृश त्वरा है, जिन्होंने इन्द्रियाँ जीत ली हैं, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, ऐसे वायुके पुत्र, वानरसंघके मुखिया और श्रीरामके दूत हनुमान्‌को मैं मनसे स्मरण करता हूँ ॥ १३ ॥ राम, रामभद्र, रामचन्द्र, विधातास्वरूप, रघुवंशके नाथ, जगन्नाथ और सीतापति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ भगवान्, संसारके पालक, अज, और विश्वरूप उन रामने निर्गुण होकर भी सगुणरूपसे सारे संसारको अपने वशमें कर लिया है ॥ १५ ॥

इति मङ्गलाचरणम् ।

विद्वानोंमें श्रेष्ठ, तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न मुनिश्रेष्ठ नारदसे तपस्वी वाल्मीकिने पूछा– ॥ १ ॥ इस संसारमें इस समय गुणवान्, पराक्रमशाली, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और अपने व्रतपर दृढ़ कौन है ? ॥ २ ॥ कौन ऐसा है, जो सच्चरित्रयुक्त है ? कौन सब प्राणियोंके हितमें लगा हुआ है और कौन ऐसा है जो विद्वान्, समर्थ तथा देखनेमें सुन्दर है ॥ ३ ॥ कौनसा ऐसा पुरुष है जो आत्मज्ञानी, क्रोधको वशमें किये हुए तथा तेजस्वी है और दूसरेसे ईर्ष्या नहीं करता ? संग्रामभूमिमें जिसके कुपित होनेपर देवता भी भयभीत होजायँ, ऐसा कौन है ? ॥ ४ ॥ यह मैं सुनना चाहता हूँ । उसे जाननेके लिए मुझे बड़ा कौतूहल है । हे महर्षि ! आप उक्त प्रकारके पुरुषको जान सकते हैं ॥ ५ ॥ त्रिलोकीके ज्ञाता नारद वाल्मीकिकी बात सुनकर बोले—अच्छा, सुनो । इस तरह संबोधन करके महर्षि नारद कहने लगे— ॥ ६ ॥ हे मुने ! आपने जिन गुणोंका वर्णन किया है, वे बहुत ही दुर्लभ हैं । फिर भी मैं अच्छी तरह विचार करके

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥ ८ ॥
बुद्धिमान्मतिमान्वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः । विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः । आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥१०॥
समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् । पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः ॥११॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः । यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥१२॥
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥१३॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता । वेदवेदांगतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥१४॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् । सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥१५॥
सर्वदाऽभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिंधुभिः । आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥१६॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः । समुद्र इव गांभीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥१७॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः । कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥१८॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः । तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१९॥
ज्येष्ठं ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् । प्रकृतीनां हिते युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥२०॥
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः । तस्याभिषेकसंभारान्दृष्ट्वा भार्या च कैकयी ॥२१॥
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत । विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥२२॥
स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः । निर्वासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥२३॥

उन गुणोंसे युक्त मनुष्यको बतलाता हूँ ॥ ७ ॥ जिसके विषयमें मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ, उन्हें लोग राम कहते हैं । वे आत्मज्ञानी, महाबली, तेजस्वी, धर्मशील और जितेन्द्रिय हैं ॥ ८ ॥ वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, श्रीमान् और शत्रुओंके विनाशक हैं। उनका खूब लम्बा-चौड़ा कन्धा है। लम्बी-लम्बी भुजायें हैं। शंखकी तरह उनकी ग्रीवा है और विशाल पुट्ठे हैं ॥ ९ ॥ उनकी विशाल छाती है। वे हाथोंमें विशाल धनुष धारण किये रहते हैं । उनकी पसलियाँ छिपी रहती हैं। वे शत्रुओंका दमन करनेकी प्रबल शक्ति रखते हैं, जानु (घुटनों) तक पहुँचनेवाले उनके हाथ हैं, सुन्दर माथा है, बढ़िया ललाट है, सराहनीय पराक्रम है, बराबर और सुडौल उनके अंग हैं, मनोहारिणी छवि है और उनका प्रताप भी साधारण नहीं है। उनकी सुदृढ़ छाती है, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, वे लक्ष्मीसम्पन्न हैं और उनमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ वे धर्मज्ञ और सत्यसंध (अपनी प्रतिज्ञाको निभानेवाले) हैं। वे सदा प्रजाके हितमें रत रहते हैं । वे यशस्वी, ज्ञानसंपन्न, पवित्र, वशी और समाधिमान् हैं ॥ १२ ॥ वे राम प्रजापतिके समान श्रीमान्, जगत्के पालक एवं शत्रुओंके विनाशक हैं। वे समस्त संसारकी तथा धर्मकी सर्वथा रक्षा करते हैं ॥ १३ ॥ वे धर्मके रक्षक हैं और निज जनोंकी रक्षा करते हैं। वे वेद-वेदाङ्गके सारे तत्त्वोंको जानते हैं और धनुर्वेदमें एक असाधारण प्रतिभा रखते हैं ॥ १४ ॥ वे संपूर्ण शास्त्रोंके अर्थ तथा तत्त्वको जाननेवाले, समृद्धिमान्, प्रतिभाशाली, सबको प्रिय, साधु, अदीनात्मा और पण्डित हैं ॥ १५ ॥ जैसे समुद्र नदियोंसे मिलता है, वैसे ही वे सदा सज्जनोंसे मिलते हैं और उनका दर्शन सबको सुख-दायी होता है ॥ १६ ॥ वे राम सर्वगुणसंपन्न, कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले, समुद्रके तुल्य गम्भीर तथा हिमालयके समान धैर्यशाली हैं ॥ १७ ॥ वे वीर्य एवं बलमें विष्णुके सदृश हैं। चन्द्रमाके सदृश सबको उनका दर्शन प्रिय है। वे क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमामें पृथ्वीके समान हैं ॥ १८ ॥ त्यागमें कुबेरके सदृश, सत्यमें दूसरे धर्मराजके समान तथा सब गुणोंसे युक्त हैं। सब पुत्रोंमें बड़े, प्रजाके हितमें संलग्न एवं प्रजाप्रिय उन सत्यपराक्रम रामको राजा दशरथने प्रजाके हितके लिए युवराज बनानेका निश्चय किया । श्रीरामके अभिषेककी तैयारी देखकर पूर्वकालमें वरप्राप्त दशरथकी प्यारी रानी कैकेयीने उसी समय अपने पतिसे रामके निर्वासन तथा भरतके राज्याभिषेकका वर माँगा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ तदनुसार

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् । पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥
तं व्रजंतं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । स्नेहाद्विनयसंपन्नः सुमित्रानंदवर्द्धनः ॥२५॥
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् । रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता ॥२६॥
जनकस्य कुले जाता देवमायायेव निर्मिता । सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥२७॥
सीताऽप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा । पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥२८॥
शृङ्गवेरपुरे सूतं गंगाकूले व्यसर्जयत् । गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥२९॥
गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया । ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥३०॥
चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् । रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥३१॥
देवगंधर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् । चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा ॥३२॥
राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् । गते तु तस्मिन् भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥३३॥
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः । स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥३४॥
गत्वा तु सुमहात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । अयाचद्भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥३५॥
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् । रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥३६॥
न चैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः । पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनःपुनः ॥३७॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः । स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥३८॥
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकांक्षया । गते तु भरते श्रीमान्सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥३९॥
रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च । तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥४०॥

सत्यवचनरूपी धर्मके बन्धनमें बँधे हुए राजा दशरथने अपने प्रिय पुत्र रामको निर्वासित कर दिया ॥ २३ ॥ वीर राम माता कैकेयीकी भलाई और पिताकी प्रतिज्ञाका पालन करनेके निमित्त उनकी आज्ञा मानकर वनको चल दिये ॥ २४ ॥ सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले स्नेह और विनय-संपन्न प्रिय भ्राता लक्ष्मणने भाईको वन जाते देखा तो उन्होंने भी स्नेहवश उनका साथ दिया ॥ २५ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मण भली भाँति भ्रातृत्व निभाते थे और रामकी भार्या सीता सदैव रामको प्राणके समान प्रिय समझती हुई उनके हितमें संलग्न रहती थीं। वह जनकके कुलमें उत्पन्न, देवमायासे निर्मित, सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त एवं सब नारियोंमें एक उत्तम नारी थीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ जिस तरह रोहिणी चन्द्रमाका अनुगमन करती है, सीताने भी रामका उसी प्रकार अनुगमन किया। उस समय पुरवासी तथा पिता दशरथ भी थोड़ी दूरतक रामके साथ गये ॥ २८ ॥ गंगाके किनारे शृंगवेरपुरमें पहुँचकर रामने सारथी (सुमन्त्र) को विदा किया और निषादोंके राजा धर्मात्मा एवं प्रिय मित्र निषादराजसे भेंट की ॥ २९ ॥ निषाद, लक्ष्मण और सीताके साथ-साथ राम एक वनके बाद दूसरे वन तथा बड़ी-बड़ी नदियोंको पार करके भरद्वाजकी आज्ञासे चित्रकूट वनमें एक सुन्दर आश्रम बनाकर रहने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ देवताओं तथा गन्धर्वों आदिके समान वे तीनों वहाँ सानन्द रह रहे थे। रामके वन जाते ही पुत्रवियोगसे शोकातुर राजा दशरथ पुत्र रामके लिए विलाप करते करते अपने प्राण त्याग दिये। उनके देहावसानके अनन्तर वसिष्ठादि मुख्य मुख्य ब्राह्मणोंने राज्य ग्रहण करनेके लिए भरतसे बहुत कहा, किन्तु और भरत राज्यके प्रति अनिच्छा प्रगट करके रामको मनानेके लिए वनको चल दिये ॥ ३२–३४ ॥ भरतने पराक्रमी रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करते हुए कहा—हे धर्मज्ञ ! आप ही अयोध्याके राजा बनें। परमोदार, सुमुख और कीर्तिशाली रामचन्द्रने पिताकी आज्ञाका पालन अपना धर्म समझकर राज्यसे अनिच्छा प्रकट की और भरतको समझाकर राज्यके लिये अपनी पादुका दी और लौटनेका बार-बार अनुरोध किया ॥ ३५–३७ ॥ इस प्रकार रामने भरतको लौटाया और अपनी कामना सफल होते न देख भरत भी रामके चरणोंका स्पर्श करके अयोध्या लौट आये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर रामके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए भरत नन्दिग्राममें रहकर करने लगे । भरतके चले जानेपर सत्यसंध, श्रीमान् एवं जितेन्द्रिय

प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः । विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गं ददर्श सः ।।४१।।
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च ह्यगस्त्यभ्रातरं तथा । अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ।।४२।।
खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ । वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ।।४३।।
ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम् । स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां वधाय च ।।४४।।
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम् । ऋषीणामग्निकल्पानां दंडकारण्यवासिनाम् ।।४५।।
तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी । विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ।।४६।।
ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान् । खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ।।४७।।
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् । वने तस्मिन्निवसतां जनस्थाननिवासिनाम् ।।४८।।
रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश । ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ।।४९।।
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् । वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः ।।५०।।
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते । अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ।।५१।।
जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा । तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ।।५२।।
जहार भार्यां रामस्य हत्वा गृध्रं जटायुषम् । गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ।।५३।।
राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलेंद्रियः । ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ।।५४।।
मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं स ददर्श ह । कबन्धं नामरूपेण विकृतं घोरदर्शनम् ।।५५।।
तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः । स चास्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ।।५६।।
श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव । सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ।।५७।।
शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः । पंपातीरे हनुमता सङ्गतो वानरेण ह ।।५८।।

राम वहाँ नित्य नगरवासियोंकी भीड़ आती देखकर दण्डकारण्यको चल पड़े ।। ३९ ।। ४० ।। कमलके सदृश नेत्रोंवाले रामने उस महारण्यमें जाकर विराध राक्षसको मारा और शरभङ्ग ऋषिसे मिले ।। ४१ ।। उस वनमें सुतीक्ष्ण, अगस्त्य तथा अगस्त्यके भाई इत्यादिसे मिले । वहाँ ही अगस्त्यके दिये हुए इन्द्रधनुष, तलवार, तरकस तथा बाण ग्रहण किये और वनचरोंके साथ निवास करने लगे ।। ४२ ।। ४३ ।। एक दिन वहाँके सब ऋषि राक्षसोंके वधका अनुरोध करनेके लिए रामके पास आये । तदनन्तर रामने दण्डकारण्यनिवासी उन अग्निके समान तेजस्वी ऋषियोंके समक्ष पृथ्वीके सारे राक्षसोंका वध करनेका प्रतिज्ञा की ।। ४४ ।। ४५ ।। वहाँ ही रामने जनस्थाननिवासिनी तथा कामरूपिणी राक्षसी शूर्पणखाकी नाक-कान काटकर कुरूप किया ।। ४६ ।। तदनन्तर रामने शूर्पणखा द्वारा भेजे हुए सेना सहित खर, त्रिशिरा तथा दूषणादि राक्षसोंको मारा और जनस्थाननिवासी चौदह हजार राक्षसोंको कालके गालमें पहुँचा दिया । इस प्रकार अपनी जातिका संहार होते सुनकर रावण क्रोधसे मूर्छित हो गया और अपनी सहायताके लिए मारीच नामके राक्षसको बुलाया । मारीचने अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा – हे रावण ! बलवान्‌के साथ विरोध करना ठीक नहीं है, किन्तु कालप्रेरित रावणने उसकी एक भी बात नहीं मानी और उसके साथ रामके आश्रमपर पहुँचा । वहाँ वह मायावी मारीच मृग बनकर राजा दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मणको दूर भगा ले गया ।।४७-५२।। इसी बीचमें रावण जटायु नामके गिद्धको मारकर रामकी पत्नी सीताको हर ले गया । गिद्धको मरा हुआ देख एवं सीताका हरण सुनकर राम शोकसे संतप्त होकर विलाप करने लगे और उसी शोकावस्थामें जटायुको अपने हाथोंसे जलाकर परम पद पहुँचाया ।। ५३ ।। ५४ ।। वनमें सीताको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते रामने एक महाभयङ्कर तथा विचित्र रूपवाले कबन्ध नामक राक्षसको देखा ।। ५५ ।। महाबाहु रामने उसे मारकर जला दिया । जब वह स्वर्गको जाने लगा तो उसीने धर्मचारिणी शबरीका पता बताया ।। ५६ ।। और कहा–हे राघव ! वह धर्मनिपुणा श्रमणा नामकी शबरी है, आप उसके पास जाइए । तदनुसार महातेजस्वी एवं शत्रुविनाशकारी रामचन्द्रजी शबरीके पास गये ।। ५७ ।। शबरीने रामका बड़ा आदर किया । वहाँसे पम्पासरपर जाकर राम हनुमान्‌जीसे मिले ।।५८।।

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः । सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥५९॥
आदितस्तद्यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः । सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः । ६०॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम् । ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥६१॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च । प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥६२॥
वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः । सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे ॥६३॥
राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् । दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसन्निभम् ॥६४॥
उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः। पादांगुष्ठेन चिक्षेप संपूर्णं दशयोजनम् ॥६५॥
बिभेद च पुनस्तालान्सप्तैकेन महेषुणा । गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा ॥६६॥
ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महीपतिम् । किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां प्रति ॥६७॥
ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिंगलः । तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥६८॥
अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः । निजघान च तत्रैनं शरेणैकेन राघवः ॥६९॥
ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे । सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥७०॥
स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः । दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥
ततो गृध्रस्य वचनात्संपातेर्हनुमान्बली । शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥७२॥
तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम् । ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ॥७३॥
निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं च निवेद्य च । समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥७४॥
पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मन्त्रिसुतानपि । शूरमक्षं विनिष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत् ॥७५॥

हनुमान्‌जीके कहनेपर राम सुग्रीवसे मिले और महाबली रामचन्द्रजीने उसे अपना सारा हाल कह सुनाया ॥ ५९ ॥ रामने भी सुग्रीवसे अपना सब वृत्तान्त कहा और सीताहरणका हाल विशेषरूपसे वर्णन किया। सो सुनकर सुग्रीवने प्रसन्नचित्तसे अग्निको साक्षी देकर रामसे मित्रता की और वानरराज सुग्रीवने भी बालिके साथ अपने वैरका हाल बतलाया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ दुःखित सुग्रीवने बड़ी नम्रता तथा प्रेमपूर्वक रामसे अपना सब हाल कहा। यह सुनकर रामने बालिको मारनेका प्रण किया ॥ ६२ ॥ तब सुग्रीवने बालिके बलका वर्णन किया। क्योंकि उसे सन्देह था कि वे बालिको मार सकेंगे या नहीं ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीवने रामकी परीक्षा लेनेके लिए पर्वतके समान लम्बा-चौड़ा दुन्दुभि राक्षसका कङ्काल दिखाया ॥ ६४ ॥ महाबाहु रामने मुस्कराकर उसे देखा और उस राक्षसकी ठठरीको पैरके अंगूठेसे उठाकर दस योजन दूर फेंक दिया ॥ ६५ ॥ फिर सात तालके वृक्षोंको एक ही बाणसे काट तथा पर्वत और रसातलको भेदकर सुग्रीवके हृदयमें यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया कि हम बालिको मारनेमें समर्थ हैं ॥ ६६ ॥ रामके पराक्रमको देखा तो विश्वास करके सुग्रीव बड़ी प्रसन्नतापूर्वक रामके साथ किष्किन्धा नामके पर्वतकी गुफाके द्वारपर पहुँचा ॥ ६७ ॥ वहाँ पहुँचकर सुवर्णके समान पीतवर्ण वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने घोर गर्जना की। उस भयङ्कर गर्जनको सुनते ही बन्दरोंका राजा बालि किष्किन्धाके बाहर निकल आया ॥ ६८ ॥ उस समय ताराकी बात न मानते हुए और उसका अनादर करके बालि सुग्रीवके साथ युद्ध करनेके लिए आया और एक ही बाणसे उसे रामने यमपुर पहुँचा दिया ॥ ६९ ॥ सुग्रीवसे की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार वचनबद्ध होनेके कारण रामने बालिकी मृत्युके पश्चात् किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवको दे दिया ॥ ७० ॥ इसके अनन्तर कपिराज सुग्रीवने सीताका पता लगानेके लिए दसों दिशाओंमें बहुतसे बन्दरोंको भेजा ॥ ७१ ॥ सम्पाती गिद्ध द्वारा सीताका पता पाकर महाबली हनुमान्‌ने सौ योजन विस्तृत क्षारसमुद्रको लाँघकर पार किया ॥ ७२ ॥ रावणसे सुरक्षित लङ्कामें जाकर हनुमानने अशोक वनमें बैठी तथा रामका ध्यान करती हुई सीताको देखा ॥ ७३ ॥ तब हनुमान्‌जीने सीतासे रामका सारा समाचार एवं सन्देश कहा। सीताको आश्वासन देकर रणमें पाँच सेनापतियों, सात मन्त्रिपुत्रों और परमवीर अक्षयकुमारको मारकर स्वयं ब्रह्मपाशमें बँध गये

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् । मर्दयन्राक्षसान्वीरो मंत्रिणस्तान्यदृच्छया ॥७६॥
ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कां ऋते सीतां च मैथिलीम् । रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥७७॥
सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥
ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः । समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसन्निभैः ॥७९॥
दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः । समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥८०॥
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे । रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत् ॥८१॥
तानुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि । अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं प्रति ॥८२॥
ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् । कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः । बभौ रामः सुसंतुष्टः पूजितः सर्वदैवतैः ॥८४॥
अभिषिच्य तु लंकायां राक्षसेंद्रं विभीषणम् । कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् । अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥८६॥
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः । भरतस्यांतिके रामो हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥८७॥
पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा । पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥८८॥
नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः । रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥८९॥
न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यंति पुरुषाः क्वचित् । नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यंति पतिव्रताः ॥९०॥
प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः । निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥९१॥
ना चाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जंति जंतवः । न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥९२॥
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा । नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च ॥९३॥

॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसके बाद ब्रह्माके वरदानसे उस ब्रह्मपाशसे अपनेको मुक्त देखकर हनुमान्‌ने रावणके मन्त्रियों तथा बड़े बड़े राक्षसोंको मारा । तदनन्तर सीताके निवासस्थानको छोड़ सारी लङ्का जलाकर रामको सीताका वृत्तान्त सुनानेके लिये लौट आये ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ बली हनुमान्‌ने महात्मा रामचन्द्रजीके पास जाकर उनकी प्रदक्षिणा की और लङ्काका सारा वृत्तान्त सुना दिया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर राम सुग्रीवके साथ समुद्रतटपर गये और सूर्यके समान अपने तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको क्षुभित किया ॥ ७९ ॥ तब नदियोंका पति समुद्र हाथ जोड़कर रामके समक्ष आया और उसकी सलाहसे रामने नल द्वारा सेतु तैयार करवाया ॥ ८० ॥ उस सेतुसे लङ्कामें पहुँचकर रामने रावणको मारा । फिर सीताको पाकर अत्यन्त लज्जित हुए ॥ ८१ ॥ उस समय रामने भरी सभामें सीताको कुछ कटु वचन कहे । जिसे सहनेमें असमर्थ होकर परम सती सीता अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं ॥ ८२ ॥ तदनन्तर अग्निके कथनानुसार रामने सीताको निष्पाप समझा । रामके इस कर्मसे सचराचर त्रिलोकी, देवता तथा ऋषि सब लोग प्रसन्न हुए । प्रसन्न हृदय राम देवताओंसे पूजित होकर बहुत शोभित हुए ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ तदनन्तर लङ्कामें राक्षसश्रेष्ठ विभीषणको राजतिलक देकर राम सन्तापसे मुक्त, कृतकृत्य एवं आनन्दित हुए ॥ ८५ ॥ वहाँ देवताओंसे वर पाकर वानरों तथा प्रियजनोंके साथ पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट पड़े ॥ ८६ ॥ भरद्वाजके आश्रम प्रयागमें पहुँचकर सत्यपराक्रम रामने हनुमान्‌को भरतके पास भेजा ॥ ८७ ॥ फिर परस्पर वार्तालाप करते हुए सुग्रीवके साथ पुष्पकविमानपर बैठे राम नन्दिग्रामको चले ॥ ८८ ॥ वहाँ पहुँचे तो भाइयोंके साथ जटा त्यागकर निष्पाप रामने सीताको पाकर पुनः राज्य प्राप्त किया ॥ ८९ ॥ रामके राज्यमें लोग हृष्ट, पुष्ट, सन्तुष्ट, सुखी, धार्मिक, नीरोग तथा दुर्भिक्षादिके भयसे रहित रहते थे । उस समय पिताके सामने किसीके पुत्रकी मृत्यु नहीं होती थी । उस राज्यकी स्त्रियाँ सौभाग्यवती एवं पतिव्रता होती थीं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ उस समय अग्निका भय, जलमें डूबनेका भय, वायुसंबंधी भय, ज्वरादिका भय, पेटकी चिन्ता तथा चोर आदिका भय नहीं रहता था । सारे नगर और सारे राष्ट्र धन-धान्यपूर्ण थे ॥९२॥९३॥ उस राज्यमें सत्ययुगकी भाँति सब लोग सदैव सुखी रहते थे । सौ

नित्यप्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा । अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः ॥९४॥
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति । असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ॥९५॥
राजवंश्यान् शतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः । चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे लोके नियोक्ष्यति९६॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥
इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम् । यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥
एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः । सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥९९॥

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यपतित्वमीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥१००॥

एवं शिष्य नारदेन मुनिना यच्च धीमता । वाल्मीकये वेदवाक्यैर्यावन्मात्रं विवेदितम् ॥१०१॥
तावदेवार्थमादाय श्लोकबद्धं मनोरमम् । वाल्मीकिना कृतं पूर्वं लघुरामायणाभिधम् ॥१०२॥
शतश्लोकमितं स्वीयकवितायां च तन्मया । तवाग्रे कथितं सर्वं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥१०३॥
ब्रह्मदत्तवरेणैव सर्वं ज्ञात्वा स वै मुनिः । शतकोटिमितां रामक्रीडां श्लोकैर्बबन्ध ह ॥१०४॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे लघुरामायणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कौसल्यादि माताओंका वैकुण्ठवास)

श्रीनारद उवाच

अथैकदा सभामध्ये पौरा जानपदादयः । ज्ञात्वा रामं परात्मानं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥ १ ॥
राम राम महाराज किंचिदुपदिशस्व नः । विषयासक्तचित्तानां ज्ञानं येन भविष्यति ॥ २ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा राघवः सस्मितोऽब्रवीत् । निरन्तरं ह्युपदेशो युष्माभिः श्रूयते न किम् ॥ ३ ॥
प्रहरे प्रहरे रात्रौ मद्दूतैः क्रियते सदा । अस्तु तच्च गतं पूर्वमिदानीं सकलैर्जनैः ॥ ४ ॥

अश्वमेध यज्ञ करके सुवर्णयुक्त अनेक कोटि गौएँ विधिपूर्वक विद्वान् ब्राह्मणोंको देकर राम हजारों राजाओंके वंशकी स्थापना करके चारों वर्णोंको अपने अपने धर्मपर नियुक्त करेंगे ॥ ९४–९६ ॥ ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करके राम अपने ब्रह्मलोकको चले जायँगे ॥ ९७ ॥ पवित्र, पापनाशक, पुण्यकारी तथा वेदसंमत इस रामचरितको जो प्राणी पढ़ेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ९८ ॥ यह रामायणकी कथा आयुर्वर्द्धिनी है । इसको पढ़नेसे मनुष्य पुत्र-पौत्रोंसे शोभित होकर मरनेके बाद स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥९९॥ इस लघु रामायणको पढ़नेसे ब्राह्मण विद्वान् होता है, क्षत्रिय भूमिका स्वामी होता है, वैश्य व्यापारमें सफल होता है और शूद्र महत्त्व पाता है ॥१००॥ इस प्रकार हे शिष्य ! बुद्धिमान् नारदने वेदवाक्योंके आधारपर वाल्मीकिजीसे जितना रामचरित्र कहा था ॥ १०१ ॥ उतना ही अर्थ लेकर वाल्मीकिने पहले १०० श्लोकोंसे श्लोकबद्ध करके अपनी कवितामें इस लघुरामायणकी रचना की । सो मैंने तुम्हारे आगे कहा । इसे सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ मुनिराज वाल्मीकिने ब्रह्माजीके दिये हुए वरदानके प्रभावसे सब कुछ जानकर सौ करोड़ श्लोकोंमें रामचरितका वर्णन किया ॥ १०४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्सना भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन सभामें पुरवासियों तथा जनपदवासियोंने रामको परमात्मा समझकर विनयपूर्वक कहा—॥ १ ॥ हे राम ! हे महाराज ! हम लोगोंको कुछ उपदेश दीजिए । जिससे हम विषयासक्त मनवालोंको भी ज्ञान प्राप्त हो जाय ॥ २ ॥ उनकी बात सुनकर मुसकाते हुए रामने कहा—क्या नित्य आप लोग हमारे उपदेशोंको नहीं सुनते ? ॥ ३ ॥ रात्रिके समय पहर-पहरपर मेरे दूत उपदेश देते

अद्य तद्वचनं निशायां बुद्धिपूर्वकम् । श्रुत्वा विचार्य पश्चान्मां प्रष्टव्यं यत्तु रोचते ॥ ५ ॥
तथेति रामवचनात्सर्वे गत्वा निजं निजम् । गेहं ते स्वस्थचित्ताश्च स्वस्त्रीभिर्मञ्चकादिषु ॥ ६ ॥
दूतवाक्ये दत्तकर्णा रात्रौ तस्थुरनिद्रिताः । तावत्ते रामदूताश्च सार्द्धयामे सदीपकाः ॥ ७ ॥
धृतशस्त्रा दण्डहस्ता नानावाहनसंस्थिताः । गजेषु दुन्दुभीन्धृत्वा तथा वाद्यान्यनेकशः ॥ ८ ॥
धृत्वा पृथक् पृथङ्नानायानेषु मंजुलानि हि । राजमार्गेषु सर्वत्र दीर्घशब्दानुदीरयन् ॥ ९ ॥
हे जनाः श्रूयतां सर्वे किं मोहेन विनिद्रिताः । नेयं निद्रा समीचीना कदाऽनर्थो भविष्यति ॥१०॥
स्वस्थचित्तास्त्वद्य सर्वे भूत्वा नः श्रूयतां वचः । नवद्वाराण्ययोध्यायामेकं तु लघु वर्तते ॥११॥
रामराज्ये भयं नेति कारणाद्द्वाररक्षकैः । दीयन्ते वा न दीयन्ते कवाटादीनि वै तदा ॥१२॥
नार्गला शृंखलादीनि सन्ति द्वारेषु भो जनाः । कृष्णवर्णो महाँश्चोरो याम्याशायां स्थितस्त्विति ॥१३॥
श्रूयते न कदा दृष्टः केनापि भुवि सांप्रतम् । एवं सत्यपि नोपेक्षा रोगशांत्यै प्रकार्यते ॥१४॥
गुप्तरूपास्तस्य दूताः साकेते विचरंति हि । न ज्ञायते कदाऽस्माभिर्नागरा इव संस्थिताः ॥१५॥
आगतश्चेत्परो दूतस्त्वेके दुर्गे तदा क्षणात् । भेदं कृत्वा तु सर्वत्र दुर्गपालो निहन्यते ॥१६॥
इत्थं श्रुतं सदाऽस्माभिस्ततस्त्वस्यां सहस्रशः । वर्तन्ते परदूताश्च नानावेषधरा जनाः ॥१७॥
जीवत्वयं चिरं राजा एवं सत्यपि नो भयम् । अयोध्यायां जायते हि तद्बलं को वदिष्यति ॥१८॥
एभिर्दूतैस्तस्य राज्ञ आत्मारामस्य चात्र हि । करणीयं प्रभोः किं हि सच्चिदानन्दरूपिणः ॥१९॥
तेषां भयं तु युष्माकं दुर्बलानां सदाऽस्ति हि । अजापुत्रो दुर्बलोऽत्र बल्यर्थं दीयते जनैः ॥२०॥
दत्तो बलिस्तु सिंहस्य कदा केन श्रुतोऽत्र न । अतो यूयं हीनबलाः किं निशायां विनिद्रिताः ॥२१॥

रहते हैं, सो क्या आप नहीं जानते ? अस्तु, जो समय गया सो गया । आज सब लोग रातको ध्यानसे मेरे दूतोंकी बातें सुनें और उनपर विचार करें । इसके बाद जो आप लोगोंकी इच्छा हो सो पूछिएगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ "तथास्तु" कहकर वे सब अपने-अपने घर गये और अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ पलङ्गपर पड़े-पड़े जागते हुए रामके दूतोंके शब्दपर कान लगाये रहे । डेढ़ पहर रात बीतनेपर हाथोंमें दीपक लिये, दण्ड तथा अनेक प्रकारके शस्त्र धारण किये, एक हाथीपर दुन्दुभी तथा विविध प्रकारके बाजे बजाते हुए गलियों तथा राजमार्गोंपर घूमते और उन बाजोंका घोर निनाद करते हुए वे दूत आये और कहने लगे—॥ ६–९ ॥ हे पुरवासियो ! क्या तुम मोहनिद्रामें पड़े सो रहे हो ? यह नींद अच्छी नहीं है । इससे कभी बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा । आज तुम लोग स्वस्थ चित्तसे मेरी बात सुनो । इस अयोध्यामें कुल नौ द्वार हैं और एक छोटा सा दसवाँ द्वार भी है ॥ १० ॥ ११ ॥ रामके राज्यमें कोई भय नहीं है । इस ख्यालसे द्वारपाल कभी द्वार बन्द करते हैं, कभी नहीं भी बन्द करते ॥ १२ ॥ इन द्वारोंमें न कोई अर्गलादण्ड हैं और न जंजीरें ही लगी हैं । सुनते हैं कि नगरकी दक्षिण ओर कोई एक काला चोर रहता है, किन्तु इस नगरमें आज तक उसे किसीने नहीं देखा । यह होते हुए भी रोगशान्तिके विषयमें उपेक्षा न करनी चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसके दूत गुप्तरूपसे अयोध्यामें घूमते रहते हैं । यदि हम लोग असावधान रहें और उसका एक भी दूत किलेमें घुस आया तो वह क्षणभरके भीतर हमारा भेद लेकर सब दुर्गपालोंको मार डालेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ हमने यह भी सुना है कि उस चोरके हजारों दूत नाना प्रकारके वेश धारण करके घूमते हैं ॥ १७ ॥ हमारे राजा राम चिरञ्जीवी हों । जिनके प्रतापसे उन शत्रुओंके इतना करनेपर भी कोई भय नहीं है । उन रामके बलका वर्णन कौन कर सकता है ॥ १८ ॥ शत्रुके दूत इन आत्माराम और सच्चिदानन्दस्वरूप रामका क्या कर सकते हैं ? ॥ १९ ॥ हाँ, उन दूतोंसे यदि कुछ भय है तो वह तुम्हारे जैसे दुर्बलोंको है । संसारी लोग दुर्बल जीव बकरेका ही बलिदान करते हैं ॥ २० ॥ आज तक कहीं यह नहीं सुना गया किसीने सिंहको बलि दी हो । इस प्रकार निर्बल होकर भी तुम लोग रातको सोते हो ? ॥ २१ ॥

कदा कृत्वाऽत्र ते भेदं चोरमत्रानयंति हि । स कालो ज्ञायते नैव तस्मान्निद्रा शुभा न हि ॥२२॥
स्वस्थचित्तास्त्यक्तनिद्रास्त्वस्यांपुर्यामहर्निशम् । यूयं भूत्वा सदा खड्गः शितो धार्यः स्वसन्निधौ ॥२३॥
कवचानि शरीरेषु सदा धार्याणि भो जनाः । धैर्यं धृत्वा न भेतव्यं यो जागर्ति निरन्तरम् ॥२४॥
अयोध्यायां न तस्यास्ति चौरादपि कदा भयम् । नैतद्विस्मरणीयं हि सदाऽस्माकं वचः शुभम् ॥२५॥
सावधानाः सावधानाः सावधानाः सदा जनाः । भवध्वं चात्र साकेतपुरि स्थाहि निरन्तरम् ॥२६॥
इत्युक्त्वा ते राजदूताः कृत्वा दुंदुभिनिःस्वनान् । वादयामासुर्वाद्यानि मंजुलानि महान्ति च ॥२७॥
एवं सर्वत्र पुर्यां ते विचेरू रामसेवकाः । एवं निशायां तैर्दूतैस्त्रिवारं किंचिदंतरात् ॥२८॥
पौराद्या बोधिताः प्रापुर्ज्ञानं तस्य विचारतः । ततः प्रभाते ते सर्वे पौरा जानपदादयः ॥२९॥
सभायां राघवं नत्वा तुष्टाः प्रोचुः पुरः स्थिताः । राम राजीवपत्राक्ष त्वद्दूतवचनानि हि ॥३०॥
श्रूयन्तेऽत्र सदाऽस्माभिर्न विचारस्तदा कृतः । अद्यास्माभिर्निशायां हि त्वद्दूतवचनं शुभम् ॥३१॥
श्रुत्वा कृतो विचारो हि हृदि बुद्ध्या तवाज्ञया । लब्धं ज्ञानं प्रभोऽस्माभिस्त्वज्ज्ञानं तद्गतं हि नः ॥३२॥
नेदानीमुपदेशं हि त्वत्तो वांछाम राघव । इति तेषां वचः श्रुत्वा तान्रामः प्राह सस्मितः ॥३३॥
कथं लब्धं हि तज्ज्ञानं किं श्रुतं किं विचिंतितम् । तन्मेऽग्रे कथनीयं हि विस्तरेण यथाक्रमम् ॥३४॥
इति रामवचः श्रुत्वा जनाः प्रोचुर्मुदान्विता । शृणु राम महाबाहो यल्लब्धं ज्ञानमुच्यते ॥३५॥
मोह एव निशा ज्ञेया निद्रा भ्रांतिस्तु कथ्यते । नेयं भ्रांतिः समीचीनाऽनर्थो मृत्युर्ग्रसिष्यति ॥३६॥
अयोध्येयं स्वीयदेहस्तत्र छिद्राणि वै नव । लघु तन्मस्तके ज्ञेयं दंताद्या द्वाररक्षकाः ॥३७॥
पक्ष्मौष्ठादीनि द्वारेषु कपाटानीरितानि च । प्राणाश्च ते राजदूताः पुर्यां नित्यमटंति हि ॥३८॥

न जाने कब वे तुम्हारा भेद लेकर उस चोरको यहाँ बुला लायें। उस समयको कोई जान नहीं सकता। इसलिए इस प्रकार सोना ठीक नहीं है ॥ २२ ॥ तुम सब निद्रा त्यागकर रात-दिन इस पुरीमें जागते रहो और अपने पास एक तीक्ष्ण खड्ग रखो ॥ २३ ॥ शरीरपर कवच धारण करो, हृदयमें धैर्य रक्खो, किसीसे डरो नहीं। जो इस तरह जागता है ॥ २४ ॥ उसे इस अयोध्यामें उस चोरसे कोई डर नहीं है। हमारे इन हितकर वचनोंको कभी भूलना मत ॥ २५ ॥ हे अयोध्यावासियो! फिर भी तुमसे कहता हूँ सावधान! सावधान!! इस पुरीमें सदा सावधान होकर रहना ॥ २६ ॥ इतना कहकर वे दूत दुन्दुभी तथा अन्यान्य मङ्गलमय वाद्य बजाने लगे ॥ २७ ॥ इस रीतिसे दूत रातभर सारी अयोध्यामें घूम-घूमकर थोड़ी-थोड़ी देरमें तीन-तीन बार लोगोंको वही बात सुना-सुनाकर सजग करते रहे ॥ २८ ॥ दूतोंकी बतायी बातोंपर विचार कर-करके वे सब नगरनिवासी ज्ञानी हो गये। सब नागरिक और जनपदवासी सभामें रामके पास पहुँचे और प्रणाम करके कहने लगे—हे राजीवपत्राक्ष राम! वैसे तो हम नित्य आपके दूतोंकी बातें सुनते थे। किन्तु अभीतक उसपर विचार नहीं किया था। आज रात्रिमें उनकी बातें सुनकर हमने उनपर आपके आज्ञानुसार विचार भी किया है। हे प्रभो! अब हमारा अज्ञान नष्ट हो गया और ज्ञान प्राप्त हो गया है ॥ २९–३२ ॥ हे राघव! अब मैं आपसे उपदेश नहीं सुनना चाहता। इस तरह उनकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम कहने लगे—॥ ३३ ॥ अच्छा, हमें यह तो बताओ कि वह ज्ञान तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ और तुम लोगोंने उसपर किस प्रकार विचार किया है। सो विस्तारसे कह सुनाओ ॥ ३४ ॥ रामका प्रश्न सुनकर वे लोग प्रसन्नतासे कहने लगे— हे राम! जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, सो हमलोग कहते हैं। सुनिये ॥३५॥ मोह रात्रि है और भ्रान्ति निद्रा है। यह भ्रान्ति कभी अच्छी नहीं मानी जा सकती। इसके फेरमें पड़नेसे अनर्थ यह होगा कि एक न एक दिन मृत्यु धर दबायेगी ॥ ३६ ॥ अयोध्या अपना शरीर है। इसमें मुँह-कान आदि नौ द्वार हैं और दसवां द्वार मस्तकमें है। जिसे लोग ब्रह्मरंध्र कहते हैं और दाँत आदि इन द्वारोंके रक्षक हैं ॥ ३७ ॥ आँखकी पलकें और और ओष्ठ आदि इनके दरवाजे हैं। प्राण ही राजदूत हैं। जो सदा इस पुरीमें चक्कर लगाते

आत्मा ज्ञेयस्त्वत्र राजा जीवश्चेन्द्रियदेवता । ज्ञेयाश्च देहनगरे पौरास्तत्र रघूत्तम ॥३९॥
कालो ज्ञेयो महाचौरः त्रिदोषाद्या गदाश्च ये । कालस्य सेवका ज्ञेया नागरा इव संस्थिताः ॥४०॥
दुर्बलास्तेऽत्र जीवाद्यास्तेषामेवास्ति तद्भयम् । किं मोहे पतिता भ्रांताः कालमत्रानयन्ति ते ॥४१॥
न ज्ञायते मृत्युकालस्तस्माद्भ्रांतिः शुभाऽत्र न । ज्ञानमेव महाखड्गो वैराग्यं तीक्ष्णता त्वसेः ॥४२॥
सच्छीलं कवचं ज्ञेयं धैर्यं भक्तिर्दृढा त्वयि । आत्मज्ञानेन जागर्ति न तस्यास्ति भयं कदा ॥४३॥
सावधानं ज्ञाननिष्ठं भवितव्यं सदाऽत्र हि । वाद्यानि वचनान्येव साधनं बोधदानि वै ॥४४॥
सदा धृतानि हृदये तानि बुद्ध्याऽवलोकयेत् । मोहक्षयः प्रभातोऽयमिदानीं त्वत्पुरः स्थितः ॥४५॥
त्वमेवात्मा सभेयं ते निवासस्थानमीरितम् । तवाग्रे ये स्थिताः सर्वे वयं त्वां मुक्तिमागताः ॥४६॥
किमिदानीं ते प्रष्टव्यं वोपदेश्यं त्वयाऽद्य किम् । तव कीर्तनमात्रेण नरा मुक्तिं लभंति हि ॥४७॥
वयं त्वदन्तिकाः सर्वे मुक्ता एव न संशयः । इति तेषां वचः श्रुत्वा सस्मितः प्राह तान्प्रभुः ॥४८॥

सम्यग्बुद्ध्या परिज्ञातं सुखे स्थेयं सदा जनाः ।
नान्यथा स्वमतिः कार्याऽऽत्मनो रामं पृथक् स्थितम् ॥४९॥

इत्युक्त्वा सकलान्रामो ययौ सीतागृहं मुदा । पौराद्या गतमोहास्ते चात्मानं मेनिरे परम् ॥५०॥
एव रामेण भोः शिष्य दूतवाक्यैः सुबोधिताः । पौराः सर्वे यथा तच्च मया ते विनिवेदितम् ॥५१॥
एकदा कैकयी राममागत्य प्रणिपत्य सा । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं विनयात्पुरतः स्थिता ॥५२॥
राम राजीवपत्राक्ष मया यदपराधितम् । पुराऽज्ञानात्त्वया तच्च क्षन्तव्यं वै कृपालुना ॥५३॥
अहं ते शरणं प्राप्ता मामुद्धर जगत्पते । किंचिदुपदिशस्व त्वं येनाज्ञानं विनश्यति ॥५४॥

रहते है ॥ ३८ ॥ इनमें आत्मा राजा है और जीव तथा इन्द्रियाँ इस नगरके निवासी हैं ॥ ३९ ॥ काल महान् चोर है और वात, पित्त, कफ आदि उसके सेवक छुपे वेशमें नागरिकोंकी तरह रहते हैं ॥ ४० ॥ इस नगरमें जीव आदि नागरिक दुर्बल हैं। अतएव उन्हींको चोरका विशेष भय रहता है। यदि वे नागरिक मोहग्रस्त होकर भ्रममें पड़ जायँ तो अवसर पाकर वे चोरके सेवक अवश्य अपने स्वामी कालको बुला लायेंगे ॥ ४१ ॥ मृत्युका समय किसीको मालूम नहीं है। इस कारण गाफिल रहना ठीक नहीं है। इसके लिए ज्ञान खड्ग है और वैराग्यको उसकी तीखी धार समझनी चाहिए ॥ ४२ ॥ सदाचार कवच है और आपमें दृढ़ भक्तिका होना ही धैर्य है। जो मनुष्य आत्मज्ञानपूर्वक नित्य जागता रहता है, उसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं रहता ॥ ४३ ॥ सदा सब लोगोंको ज्ञाननिष्ठ होना चाहिए, यही सावधान रहनेका मतलब है। साधुओंके ज्ञानदायक वातोंके समान उन दूतोंके बाजे हैं ॥ ४४ ॥ सब लोगोंको चाहिए कि इन वातोंको हृदयमें रखें और अपनी बुद्धिदृष्टिसे देखें। इस प्रकार हे राम! आज हमारे मोहनाशका प्रभाव आपके सामने उपस्थित है ॥ ४५ ॥ आप ही आत्मा हैं और यह सभा आपका निवासस्थान है। आपके सामने हम जितने लोग उपस्थित हैं, सब मुक्त हो गये हैं ॥ ४६ ॥ और आपसे क्या पूछना है और क्या हमारे लिए आपको उपदेश देना है? हमारा तो यह विश्वास है कि आपके नाम-कीर्तनमात्रसे प्राणी मुक्त हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ आपके समीप पहुँचे हुए हम सब लोग मुक्त हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस तरह उनकी बात सुनकर मुसकाते हुए राम बोले—॥ ४८ ॥ तुम लोगोंने अपनी बुद्धिसे सब कुछ समझ लिया है। अब आनन्दपूर्वक रहो। कभी अपनी बुद्धिमें यह बात न आने देना कि राम मुझसे अलग हैं ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर राम प्रसन्नतापूर्वक सीताके महलमें चले गये। जिन पुरवासियोंमें किसी प्रकारका अज्ञान था, अब वह सब नष्ट हो गया और वे आत्मज्ञानी बन गये ॥ ५० ॥ हे शिष्य! जिस तरह रामके दूतोंसे उनको प्रजा जागृत हुई, वह सारी कथा मैंने कह सुनायी ॥ ५१ ॥ एक समय कैकेयी रामके पास गयी और प्रणाम करके मीठी-मीठी बातोंमें कहने लगी—॥ ५२ ॥ हे कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले राम! मैंने उस समय अज्ञानवश जो अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो। क्योंकि तुम कृपालु हो ॥ ५३ ॥ मैं जगत्पते! हे तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। मेरा उद्धार करो और मुझे कोई ऐसा उपदेश

तत्तस्या वचनं श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः । उवाच कैकयीं वाक्यं मधुरं प्रहसन्निव ॥५५॥
न त्वया मेऽपराद्धं हि मच्छन्दाच्च सरस्वती । स्थित्वा तवास्ये सा प्राह वरयाञ्चादि यत्पुरा ॥५६॥
त्वं च कैकेयि शुद्धाऽसि त्वयि क्रोधो न मेऽस्ति वै । श्वस्त्वां नीत्वोपदेशं हि कारयिष्यति लक्ष्मणः ॥५७॥
इत्युक्त्वा तां विसर्ज्याथ लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् । शिविकास्था हि कैकेयी श्वः प्रभाते गिरा मम ॥५८॥
त्वया नेया बहिः पुर्याः सरय्वाश्च तटं प्रति । अविसमूहसंस्थानं वर्तते यत्र तत्र हि ॥५९॥
अविवृन्दांतिकं नीत्वा कैकेयीं शिविकास्थिताम् । अविवाक्यानि श्राव्याणि मुहूर्तं मम वाक्यतः । ६०॥
आनेतव्या ततश्चेयं कैकेयी मम सन्निधौ । इति तद्रामवचनं श्रुत्वा स लक्ष्मणोऽपि च ॥६१॥
तथेत्युक्त्वा तदा रामं तूष्णीं तस्थौ तदग्रतः । अथ प्रभाते सौमित्रिर्गत्वा भरतमन्दिरे ॥६२॥
शिविकायां स कैकेयीं समारुह्य मुदान्विताम् । दासीभिः सेवकैश्चैव वेष्टितां वेत्रपाणिभिः ॥६३॥
तां निनाय बहिः पुर्याः सरय्वाश्च तटे वरे । अविवृथांतिकं यानं स्थापयामास लक्ष्मणः ॥६४॥
सुस्नातां कैकयीं विप्रास्ते ज्ञात्वा दक्षिणेच्छया । दुद्रुवुः शिविकापृष्ठे लक्ष्मणस्तान्न्यवारयत् ॥६५॥
अतिमूर्खाश्च पंग्वाद्या ये ते ज्ञेया द्विजादयः । दानार्हाः पण्डिता नैते श्रोत्रिया न प्रतिष्ठिताः ॥६६॥
ततो दूतान्निराकृत्य मुक्ताजालानि लक्ष्मणः । ऊर्ध्वं कृत्वा स्वहस्ताभ्यां कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥६७॥
पश्य कैकेयि मातस्त्वमविवृथं पुरःस्थितम् । रामेण प्रेषिताऽसि त्वमुपदेशार्थमादरात् ॥६८॥
तत्सौमित्रिवचः श्रुत्वाऽऽश्चर्ययुक्ताऽथ कैकयी । प्रतारिताऽहं रामेण किमत्र प्रेष्य सादरम् ॥६९॥
इति तर्कान्कुर्वती सा तस्थौ तूष्णीं क्षणं तदा । तावच्छुश्राव सा मे मे त्वविवाक्यानि वै मुहुः ।७०॥
तानि श्रुत्वाऽथ कैकेयी तदा चित्तेऽविचारयत् । मे मे त्विति मुहुश्चात्र किमर्थं वचनानि हि ॥७१॥
अव्यः सर्वा वदंत्यत्र गूढोऽर्थस्त्वत्र वर्तते । ततो निमील्य कैकेयी नेत्रं ध्यात्वा क्षणं हृदि ।७२॥

दो, जिससे मेरा अज्ञान नष्ट हो जाय ॥ ५४ ॥ इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर मीठी हँसी हँसते हुए राम कहने लगे—॥ ५५ ॥ हे माता ! तुमने हमारा कोई अपराध नहीं किया है। उस समय हमारी ही इच्छासे सरस्वतीने तुम्हारे मुखमें बैठकर वह वर मँगवाया था ॥ ५६ ॥ हे कैकेयी ! तुम शुद्ध हो, तुम्हारे ऊपर मेरे हृदयमें कुछ भी क्रोध नहीं है। कल लक्ष्मण तुम्हें कहीं ले जाकर उपदेश दिला देंगे ॥ ५७ ॥ ऐसा कहकर उसे विदा कर दिया और लक्ष्मणसे कहा कि हमारे कथनानुसार कल कैकेयीको नगरके बाहर सरयूतटपर जहाँ कि भेड़ें रहती हैं, वहाँ ले जाओ और उन भेड़ोंके मुखसे ही थोड़ेसे उपदेशमय वाक्य सुनवाकर कैकेयीको यहाँ मेरे पास ले आओ। इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने वैसा करना स्वीकार कर लिया और चुपचाप रामके सम्मुख बैठे रहे। इसके अनन्तर सवेरे लक्ष्मणजी भरतके भवनमें पहुँचे ॥ ५८-६२ ॥ वहाँसे कैकेयीको पालकीमें बिठाकर दास-दासी तथा छड़ीदार आदिके साथ उसे अयोध्यापुरीके बाहर सरयूतटपर जहाँ कि भेड़ें रहती थीं, ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रथ रोक दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जब कि सरयूतटसे लक्ष्मण पालकीके साथ जा रहे थे, तब घाटके ब्राह्मणोंने समझा कि कैकेयी स्नान करके लौट रही हैं। फिर क्या था, झुण्डके झुण्ड ब्राह्मण दक्षिणा लेनेके लिये दौड़ पड़े। लक्ष्मणने उन्हें रोका। क्योंकि वे सब ब्राह्मण महामूर्ख, पंगु और अन्धे आदि थे। उनमेंसे कोई भी ब्राह्मण ऐसा न था, जो प्रतिष्ठित श्रोत्रिय रहा हो ॥ ६३-६६ ॥ जब लक्ष्मणके मना करनेपर भी उन लोगोंने पीछा नहीं छोड़ा, तब विवश होकर उन्होंने सेवकों द्वारा उन्हें हटवाया और मोतियोंकी लड़ीके बने पर्देको अपने हाथसे उठाकर कैकेयीसे कहा—॥ ६७ ॥ हे माँ कैकेयी ! सामने भेड़ोंकी झुण्डकी ओर देखो। रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक तुम्हें इन्हींसे उपदेश लेनेके लिये भेजा है ॥ ६८ ॥ लक्ष्मणकी बात सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह अपने मनमें सोचने लगी—"रामने यहाँ भेजकर मुझे धोखा तो नहीं दिया है।" इस प्रकार तरह-तरहके तर्क-वितर्क करती हुई कैकेयी क्षणभर चुपचाप बैठी रही। तभी उसने कई बार भेड़ोंके मुखसे "मे-मे" की ध्वनि सुनी ॥ ६९ ॥ ७० ॥ सो सुनकर कैकेयीने अपने मनमें सोचा कि भेड़ें बार-बार "मे मे" क्यों करती हैं। इसमें कोई न कोई गूढ़ भाव छुपा हुआ

सर्वं ज्ञात्वा गताज्ञाना तुतोष नितरां तदा । ततः स्मिताननां प्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥७३॥
लब्धं ज्ञानं मया बाल नय मां राघवं प्रति । इति तस्या वचः श्रुत्वा मुक्ताजालान्विमुच्य सः । ७४॥
दूतान्दूरगतान्वेगादाहूय नगरीं प्रति । कैकेयीमानयामास सीतागेहं विवेश सा ॥७५॥
तत्र दृष्ट्वा समासीनं सीतया रघुनंदनम् । बद्धयमानं स्वशिरसि चित्रोष्णीषं करेण हि ॥७६॥
सीताकरधृतादर्शे पश्यन्तं स्वमुखोत्पलम् । तं नत्वा परया भक्त्या कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥७७॥
राम ते कृपया लब्धमविलाक्यविचारतः । सद्ज्ञानं मे गतो मोहश्चेदानीं न प्रयोजनम् ॥७८॥
उपदेशेन ते राम सदा मुक्ताऽस्मि राघव । तच्छ्रुत्वा वचनं श्रुत्वा सस्मितः प्राह तां विभुः ॥७९॥
कथं ज्ञातं त्वया ज्ञानं विचारश्च कथं कृतः । तत्सर्वं विस्तरेणैव समग्रं वद कैकयि ॥८०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेयी प्राह राघवम् । शृणु राम यथा लब्धं ज्ञानं तत्ते वदाम्यहम् ॥८१॥
मयाऽविवचनान्येव तत्राविद्यूथसन्निधौ । श्रुत्वा मे मे त्विति मया हृदये मन्त्रितं क्षणम् ॥८२॥
मे मे त्विति ममैताश्च श्रावयंति मुहुर्मुहुः । श्रुत्वा मे मे त्विति मया चेद्वाच्य तर्हि वै मया ॥८३॥
मे मे प्रकथ्यते नित्यं पशुपुत्रगृहादिषु । अतो वक्तुं नोपदेशोऽयं मामेताभिरुच्यते ॥८४॥
तर्ह्ययं चोपदेशोऽद्य निषेधे मा प्रकीर्त्यते । अतोऽहं न कदा मे मे प्रवदामीत्यतः परम् ॥८५॥
मे माता मे सुतश्चायं मे बंधुर्मे गृहं वरम् । मे राज्यं मे सपत्नायं मे सापत्न्यसुतस्त्वयम् ॥८६॥
मे शरीरमिदं कांतं मे दिव्याभरणं वरम् । मे मंथरा प्रिया दासी पुत्रादीत्यशुभा मतिः ॥८७॥
याऽस्ति मे म त्विति सा त्यक्तव्येति मामता । बोधयामासुर्वचनैः स्वीयैः स्पष्टं रघूत्तम ॥८८॥
अन्यद्राम नरान्सर्वांस्ताश्चान्यो बोधयंति हि । मेमेबुद्ध्या सदाऽस्माभिः पूर्वजन्मनि वर्त्तितम् ॥८९॥
देहस्त्वतो ह्यवेर्लब्धो युष्माभिर्मे मतिस्तु मा । सर्वतः साऽत्र त्यक्तव्या नांगीकार्या कदाचन ॥९०॥

है। इसके बाद उसने आँखें बन्द कर लीं और थोड़ी देर तक गौर करके सोचने लगी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ उसका सारा भेद ज्ञात हो जानेपर वह बहुत प्रसन्न हुई और मुस्कराकर लक्ष्मणसे कहा—वत्स ! मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया। अब रामके पास ले चलो। उसकी बात सुनकर लक्ष्मणने पालकीपर परदा डाल दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ दूरपर बैठे हुए दूतोंको जोरसे बुलाया और नगरीको लौट आये। कैकेयीको सीताके महलोंमें पहुँचा दिया और वह भीतर चली गयी ॥७५॥ वहाँ पहुँचकर कैकेयीने देखा कि राम सीताके पास बैठे हुए सिरपर एक विचित्र प्रकारकी पगड़ी बाँध रहे हैं ॥ ७६ ॥ सीता हाथोंमें शीशा लिये दिखा रही हैं और राम अपना मुखकमल देखते जा रहे हैं। कैकेयीने पहुँचते ही रामको प्रणाम किया और कहने लगी—॥ ७७ ॥ हे राम ! आपकी कृपासे मैंने भेड़ोंके वाक्यों द्वारा सद्ज्ञान प्राप्त कर लिया। मेरा मोह नष्ट हो गया। अब मुझे आपके उपदेशोंकी आवश्यकता नहीं रही। हे राघव ! मैं सदाके लिए मुक्त हो गयी। इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम बोले— ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ तुम्हें ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? सब विस्तारपूर्वक मुझे बतलाओ ॥ ८० ॥ रामके इस प्रश्नको सुनकर कैकेयीने कहा—हे राम ! सुनो, मुझे जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ है, सो सुनाती हूँ ॥ ८१ ॥ उस भेड़के समूहके पास पहुँचकर मैंने उनके मुखसे निकले हुए "मे-मे" का शब्द सुना। फिर थोड़ी देर तक हृदयमें विचार किया। तब मैंने स्थिर किया कि भेड़ें "मे-मे" करके मुझे यह सुनाती हैं कि संसारके लोग जो सर्वदा अपने बालबच्चों, घरद्वार, पशु आदिमें 'यह मेरा-यह मेरा है' ऐसी बुद्धिके भ्रममें पड़कर अपना सर्वस्व नष्ट कर डालते हैं। यह ठीक है। इसलिए हे राम ! अबसे मैं इस ममताके बन्धनमें कभी भी नहीं पड़ूँगी ॥ ८२-८५ ॥ अभी तक तो मैं—यह बेटा है, यह भाई है, यह मेरा सुन्दर घर है, यह मेरा राज्य है, यह मेरी सौत है, यह सौतेला लड़का है, यह सुन्दर शरीर है, ये दिव्य मेरे अलंकार हैं, यह मेरी प्रिय दासी मंथरा है, ये मेरे बच्चे हैं आदि ममताके जञ्जालमें फँसी थी। इसके लिए उन भेड़ोंने मुझे स्पष्ट उपदेश दिया है कि ममता त्याग दो ॥ ८६-८८ ॥ मेरे अतिरिक्त संसारके अन्यान्य लोगोंको भी ये यही उपदेश देती रहती है कि पूर्वजन्मकी ममताबुद्धिने ही मुझे इस दशाको पहुँचाया है और यह भेड़का शरीर मिला है। अतएव तुम

मेमेमत्या गतिर्जाता याऽस्माकं सकला जनाः । मेमेबुद्ध्या हि युष्माकं गतिः सैव भविष्यति ॥९१॥
एवं ता बोधयन्त्यत्र जनान्स्ववचनैः सदा । न तद्वाक्य जनैर्बुद्ध्या कदा चित्ते विचार्यते ॥९२॥
तासां वाक्योपदेशेन प्रसादात्तव राघव । मेमेबुद्धिर्गता मत्तस्त्वतो मुक्ताऽस्म्यहं त्विह ॥९३॥
मे देहस्त्विति या बुद्धिर्यदासक्ता मयाऽत्र हि । तदा किं शेषमस्त्यत्र संसारे दुःखदायके ॥९४॥
अस्त्वयं वा लयं यातु देहो वाग्तिरङ्गवत् । कः पुत्रः कस्य को भ्राता सर्वं ब्रह्म न संशयः ॥९५॥
अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ब्रह्म परं न हि । सर्वं यद्दृश्यते चेदं मायेयं तव राघव ॥९६॥
नश्वरं बुद्बुदाकारं ज्ञातं चेदं मया प्रभो । इति तस्या वचः श्रुत्वा श्रीरामः प्राह सस्मितः ॥९७॥
सम्यक् विचारितं बुद्ध्या त्वयावित्वाक्यमुत्तमम् । गच्छेदानीं सुखं तिष्ठ जीवन्मुक्ताऽसि कैकयि ॥९८॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेयी तोषपूरिता । देहाभिमानहीना सा नत्वा सीतां रघूत्तमम् ॥९९॥
ययौ भरतगेहं हि नासक्ता क्वापि सा त्वभूत् । एवं शिष्य मया प्रोक्तमविवाक्योपदेशतः ॥१००॥
यथा ज्ञानं हि कैकेय्यै जातं तत्कथितं तव । इदानीं शृणु यच्चान्यत्ते वदामि कुतूहलम् ॥१०१॥
सुमित्रा त्वेकदा रामं सीतया रहसि स्थितम् । निरीक्ष्य नत्वा तं प्राह राम राजीवलोचन ॥१०२॥
किंचित्ते प्रार्थयाम्यद्य किंचिदुपदिशस्व माम् । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तामाह रघुनन्दनः ॥१०३॥
का त्वं चेति वदादौ मां पश्चादुपदिशामि ते । गच्छ गेहं स्वस्थबुद्ध्या हृदि सम्यग्विचार्य च ॥१०४॥
श्वो मामेत्य मम प्रश्नस्योत्तरं देहि वै ततः । अहमुपदेक्ष्याम्यम्ब येन तुष्टा भविष्यसि ॥१०५॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा सुमित्रा विस्मिताननना । तूष्णीमेव ययौ गेहं रामवाक्यं व्यचिन्तयत् । १०६॥
काऽहं पृष्टा राघवेण किं वा देयं मयोत्तरम् । काऽहं देवी चासुरी वा मानवी राक्षसी तथा ॥१०७॥
मानुषी चेत्यहं मत्वा यदि रामं वदामि वै । तर्हि नानाशरीराणि ध्रियन्ते नटवन्मया ॥१०८॥

लोगोंको चाहिए कि इस ममताका परित्याग कर दें, इसको अंगीकार कभी न करें ॥ ८९ ॥ ९० ॥ 'यह मेरा है' इस बुद्धिसे भेड़योनि प्राप्ति-रूपिणी जो गति हमारी हुई है, वही गति तुम्हारी भी होगी ॥ ९१ ॥ अपने वचनोंसे वे सर्वदा सब लोगोंको उपदेश देती रहती हैं। किंतु संसारी लोग उनकी बातोंपर विचार नहीं करते ॥ ९२ ॥ हे राघव ! आपकी दया और उन भेड़ोंके शब्दसे मेरी ममताबुद्धि नष्ट हो गयी है। इसलिए अब मैं मुक्त हो गयी हूँ ॥ ९३ ॥ "यह देह मेरी है" इस विचारमें मैं आसक्त थी। वह दुःखदायिनी आसक्ति नष्ट हो गयी, तब और रह ही क्या गया है। यहाँ कौन किसका बेटा है, कौन किसकी माता है ? सब सच्चिदानन्दमय ब्रह्मका रूप है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥९४।९५॥ मैं ही परब्रह्म हूँ। मुझसे परे कुछ है ही नहीं। हे राघव ! संसारमें जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, वह सब तुम्हारी माया है ॥ ९६ ॥ मैंने इस अधम शरीरको पानीके बुलबुलेकी तरह नश्वर समझ लिया है। इस प्रकार कैकेयीकी बातें सुनकर मुस्कराते हुए राम बोले—॥ ९७ ॥ ठीक है, तुमने भेड़ोंकी बातपर बहुत अच्छा विचार किया है। अब जाओ और सुखसे अपने घरमें बैठो। हे कैकेयि ! अब तुम जीवन्मुक्त हो गयीं ॥ ९८ ॥ रामकी बात सुनकर प्रसन्न मन कैकेयी देहाभिमानसे रहित होकर सीता तथा रामको प्रणाम करके अपने बेटे भरतके भवनमें चली गयी और तबसे वह किसी वस्तुमें आसक्त नहीं हुई। इस प्रकार भेड़ोंकी बातसे कैकेयीको किस तरह ज्ञान प्राप्त हुआ था, सो वृत्तांत कह सुनाया। अब मैं तुम्हें एक और कुतूहल भरा वृत्तांत सुनाता हूँ ॥ ९९-१०१ ॥ एक दिन राम सीताके साथ किसी एकान्त स्थानमें बैठे थे। तब तक सुमित्रा वहाँ आ पहुँचीं और कहने लगीं—हे राजीवलोचन राम ! मैं तुमसे विनय करती हूँ कि मुझे भी कुछ उपदेश दे दो। उसकी बात सुनकर रामने कहा—पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो ? अपने घर जाओ और स्वस्थबुद्धिसे विचार करके कल मेरे पास आकर बताओ। उस समय मैं तुम्हें ऐसा उपदेश दूँगा, जिससे तुम बहुत प्रसन्न होओगी ॥ १०२-१०५ ॥ इस तरह रामका आदेश सुनकर वह आश्चर्य भरे मनसे उसी बातको सोचती हुई चुपचाप चली गयी ॥ १०६ ॥ वह सोचने लगी कि

तदा क्वेदं मानुषीत्वमन्यजात्यां घटेच्च मे । तदाहं मानुषी नैव न चैवान्या कदाचन ॥१०९॥
मानुषी राक्षसी चेतीमानि नामानि तानि न । देहस्यैवात्र कथ्यंते देहस्तु नश्वरः स्मृतः ॥११०॥
देहाद्भिन्नास्मि काप्यन्या याऽहं रूपाण्यनेकशः । धरामि सर्वदा भूम्यां सा काऽहं चेति वेद्मि न ॥१११॥
इदानीं तु मया ज्ञातं यथा विष्णुस्तथा त्वहम् । नानारूपाणि सोऽप्यत्र मत्स्यादीनि दधाति हि ॥११२॥
तथा नानास्वरूपाणि धार्यन्तेऽत्रापि वै मया । एवमेव हि वक्तव्यं तर्हि मे तस्य चांतरम् ॥११३॥
स्ववशोऽस्ति महाविष्णुस्त्वहं विष्णुवशा सदा । अतो विष्णोः कला चाहं सत्यमेव संशयः ॥११४॥
विष्णोर्मे नैव भेदोऽस्ति यथा गङ्गा स्थले घटे । एकैवास्त्यत्र तद्वच्च विष्णुरेवाहमस्मि हि ॥११५॥
अहमेव यदा विष्णुस्तदा किं चावशेषितम् । यत्प्रष्टव्यं तु रामाय जीवन्मुक्ताऽहमस्मि वै ॥११६॥
एवं सुमित्रा संचिंत्य गताज्ञाना मुदान्विता । अतिक्रम्य निशां तां सा प्रभाते राघवं ययौ ॥११७॥
गत्वा राम तदा प्राह मया रात्रौ विचिंतितम् । का त्वं पृष्टा त्वया पूर्वं तर्ह्यहं ब्रह्म राघव ॥११८॥
त्वत्तो नान्यच्च प्रष्टव्यं त्वद्भिन्नाऽहं कदापि न । इत्युक्त्वा सा यथा गेहे निशि स्वे हृदि मंत्रितम् ॥११९॥
तत्सर्वं श्रावयित्वा तं जीवन्मुक्ताऽभवत्तदा । सुमित्रां राघवोऽप्याह सत्यस्त्वद्रया विचिंतितम् १२०॥
जीवन्मुक्ताऽसि चाम्ब त्वं गच्छ गेहं सुखं वस । ततः सुमित्रा संतुष्टा गतमोहा रघूत्तमम् ॥१२१॥
सीतां चापि पृथक् नीत्वा ययौ लक्ष्मणमंदिरम् । एवं शिष्य मया प्रोक्तं काऽहं चेति विचारतः ॥१२२॥
जीवन्मुक्ता सुमित्रा सा बभूव सुखनिर्भरा । अन्यच्च ते वदाम्यद्य तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ॥१२३॥

रामने हमसे यही पूछा है न कि मैं कौन हूँ ? सो इसका क्या उत्तर दूँ। आखिर मैं देवी हूँ, दानवी हूँ, राक्षसी हूँ या मानुषी हूँ, क्या हूँ ? यदि रामसे जाकर कह दूँ कि मैं मानुषी हूँ, तो भी नहीं बनता। क्योंकि ऐसा कहनेसे हमें नाटकके पात्रकी तरह अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं। इससे निश्चय हुआ कि मैं न मानुषी हूँ, न और ही कुछ। पूर्वकथित मानुषी-राक्षसी आदि सारी संज्ञाएँ इस देहकी हैं और यह देह नाशवान् पदार्थ है। इससे यह मालूम होता है कि इस शरीरसे पृथक् ही मैं कोई हूँ और पृथ्वीपर तरह-तरहके रूप धारण करती हूँ। लेकिन यह जो मैं हूँ, क्या हूँ ? यह नहीं जानती ॥ १०८–१११ ॥ हाँ, अब यह ज्ञात हुआ। जिस तरह भगवान् अनेक रूप धारण करके इस पृथ्वीमण्डलमें आते हैं, ठीक उन्हींकी तरह मैं भी हूँ। वे भी मत्स्य-कूर्म आदि कितने अवतार धारण करके आते-जाते हैं। वैसे ही समय-समयपर विविध प्रकारके रूप धारण करके जगत्में मैं भी आती-जाती हूँ। फिर हममें और विष्णुभगवान्में अन्तर ही क्या है ? ॥११२॥११३॥ अन्तर यही है कि विष्णु स्वाधीन हैं और मैं विष्णुभगवान्के अधीन हूँ। अतएव यह निश्चय हुआ कि मैं विष्णुभगवान्की एक कला हूँ ॥ ११४ ॥ अब यह भी निश्चित हो गया कि हममें और भगवान्में कोई भेद नहीं है। जिस तरह गङ्गाका जल गङ्गाके प्रवाहमें रहता हुआ गङ्गाजल रहता है, उसी तरह घड़ेमें आकर भी गङ्गाजल ही रहता है। इसका सार यह निकला कि हममें और भगवान्में कोई भेद नहीं है। हम और भगवान् एक ही हैं। जब मैं स्वयं विष्णुभगवान् हूँ तो बाकी क्या रहा, जो जाकर रामसे पूछूँ। मैं तो जीवन्मुक्त हूँ ॥११५॥११६॥ इस प्रकार विचार करनेसे उनका अज्ञान नष्ट हो गया। वह रात्रि बिताकर सबेरे प्रसन्नतापूर्वक रामके पास पहुँचीं ॥ ११७ ॥ वहाँ रामको प्रणाम करके सुमित्रा कहने लगीं–कल आपने मुझसे जो पूछा था कि मैं कौन हूँ ? सो विचार करनेपर मुझे मालूम हुआ कि मैं साक्षात् ब्रह्म हूँ ॥ ११८ ॥ अब मुझे आपसे कुछ भी नहीं पूछना है। क्योंकि मैं आपसे पृथक् हूँ ही नहीं। ऐसा कहकर रात्रिको उन्होंने अपने हृदयमें जैसा विचार किया था सो कह सुनाया। वह सब सुनकर वह वास्तवमें जीवन्मुक्त हो गयी। यह सोचकर रामने कहा– हे माता ! तुमने बहुत ठीक विचार किया है ॥ ११९ ॥ १२० ॥ अब तुम जीवन्मुक्त हो गयीं। जाकर आनन्दसे अपने घरमें निवास करो। इससे सुमित्राका मोह नष्ट हो गया और वे राम तथा सीता दोनोंको अलग-अलग प्रणाम करके लक्ष्मणके यहाँ चली गयीं। हे शिष्य ! इस विचारसे कि मैं कौन हूँ, सुमित्रा जीवन्मुक्त हो गयीं और उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हें एक और वृत्तान्त बतलाता हूँ, सो सुनो

एकदा राघवं दृष्ट्वा कौसल्या जननी रहः । आसने चित्रशालायां सीतया सह संस्थितम् ॥१२४॥
पप्रच्छ नत्वा श्रीरामं ज्ञात्वा विष्णुं परात्परम् । राम राम महाबाहो किंचिदुपदिशस्व माम् ॥१२५॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा तां विहस्याह राघवः । श्वःप्रभाते समुत्थाय गत्वा गोष्ठं कियत्क्षणम् ॥१२६॥
श्रुत्वा गोवत्सवाक्यानि सम्यक्तानि विचिंतय । ममांतिकं ततो याहि त्वमम्ब वचनान्मम ॥१२७॥
उपदेशं करिष्यामि ततोऽहं त्वां न संशयः । तद्रामवचनं श्रुत्वा कौसल्या विस्मिता तदा ॥१२८॥
नत्वा रामं ससीतं च तूष्णीमेव गृहं ययौ । ततो निशामतिक्रम्य कौसल्या साऽरुणोदये ॥१२९॥
गोष्ठं गत्वा क्षणं स्थित्वा धेनुवत्सवचांसि सा । अहं मा त्विति शुश्राव सुश्रांता वै मुहुर्मुहुः ॥१३०॥
तानि वाक्यानि वत्सानां श्रुत्वा चित्तेऽविचारयत् । अहं मा त्विति वत्साश्च किं वदंति मुहुर्मुहुः ॥१३१॥
इमानि किं बोधयंति मां वत्साश्च मुहुर्मुहुः । इत्युक्त्वा सा क्षणं ध्यात्वा हृदि सम्यग्विचार्य च१३२॥
वत्सवाक्यैश्च कौसल्या गताज्ञानाऽभवत्क्षणात् । ततस्तुष्टा ययौ राम नत्वा तं प्राह हर्षिता ॥१३३॥
राम विष्णो रमानाथ वत्सवाक्यैः सुबोधिता । त्वयैवाहं रामचंद्र गताज्ञानाऽस्मि राघव ॥१३४॥
तवोपदेशवांछा मे न किंचिदस्त्यतः परम् । लब्ध्वा ज्ञानं मया राम त्वत्तो भिन्ना कदास्मि न१३५॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा कौसल्यां राघवोऽब्रवीत् । वत्सवाक्यैः कथं लब्धं त्वया ज्ञानं वदस्व माम्१३६॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कौसल्या प्राह राघवम् । अहं मा त्विति वाक्यानि तेषां श्रुत्वा रघूत्तम ॥१३७॥
इमानि किं बोधयंति मां वत्सोक्तानि वै मुहुः । एवं विचारितं ध्यात्वा क्षणं स्वहृदये मया ॥१३८॥
वाक्यार्थश्च मया ज्ञातस्त्वहं मा कथ्यतां जनाः । वत्सास्त्वेवं बोधयंति न ज्ञायेत जनैस्तु यत् ॥१३९॥
अहंशब्दो देहपदो यदा त्यक्तो मयाऽत्र हि । अहं देहि त्वह माता चेति बुद्धिर्गता मम ॥१४०॥

॥ १२१-१२३ ॥ एक दिन सीताके साथ रामको चित्रशालामें देखकर उनकी माता कौसल्या उस एकान्त स्थानमें रामके पास पहुँचीं। उन्हें विष्णुभगवान् समझकर प्रणाम किया और कहने लगीं—हे महाबाहो राम! मुझे भी कुछ उपदेश दे दो। तुम्हारे उपदेशसे मुझे शुभ ज्ञानकी प्राप्ति हो जायगी ॥१२४॥१२५॥ माताकी ऐसी बात सुनी तो उन्होंने मुस्कराकर कहा कि सवेरे आप गोशालामें जाइए और वहाँपर कुछ देर तक बछड़ोंकी आवाज सुनकर उसपर अच्छी तरह विचार कीजिये, फिर मेरे पास आइए। उस समय इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं तुम्हें उपदेश दूँगा। रामकी उस बातको सुनकर कौसल्या विस्मित भावसे सीता और रामको प्रणाम करके अपने महलोंमें लौट आयीं। तदनन्तर रात्रि बीतनेपर सवेरे अरुणोदयके समय कौसल्या गोशालेमें पहुँचीं, वहाँ थोड़ी देर तक उन्होंने बछड़ोंकी आवाज सुनी। बछड़े "अहंमा-अहंमा" की आवाज लगा रहे थे और कौसल्या शान्त चित्तसे उसे सुन रही थीं ॥ १२६-१३० ॥ बछड़ोंके उन शब्दोंको सुनकर उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि बछड़े बार-बार "अहं मा-अहं मा" की जो आवाज लगा रहे हैं, इसका क्या मतलब है। ये बछड़े बार-बार आवाज लगाकर किस बातका ज्ञान करा रहे हैं। ऐसा सोचकर कौसल्याने थोड़ी देर तक ध्यानपूर्वक इस बातपर विचार किया, जिससे क्षणभरमें उनका अज्ञान नष्ट हो गया और प्रसन्न मनसे रामके पास पहुँचीं। वहाँ रामको प्रणाम करके कहने लगीं—॥ १३१-१३३ ॥ हे रमानाथ! हे राम! हे विष्णो! आपके कथनानुसार मैंने बछड़ोंकी बोली सुनी। जिससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। इससे अब हमें आपका उपदेश सुननेकी इच्छा नहीं है। इस प्रकार ज्ञान होनेपर मैं तुममें और अपनेमें कोई भेद नहीं देखती ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ इस तरह कौसल्याकी बात सुनकर रामने उनसे कहा कि उन बछड़ोंके शब्दसे तुम्हें ज्ञान किस प्रकार प्राप्त हुआ, सो मुझे बतलाओ ॥ १३६ ॥ रामकी बात सुनकर कौसल्याने कहा कि उनके "अहं मा-अहं मा" शब्दसे मुझे जिज्ञासा हुई कि ये बछड़े अपने वाक्योंसे किस बातका बोध करा रहे हैं। ऐसा क्षणभर तक अपने मनमें विचार किया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ तब मुझे उसका अर्थ ज्ञात हो गया। जिसका तात्पर्य यह था कि 'हे संसारीजनों! 'अहं मा वद' "मैं हूँ, ऐसा अहंकार मत करो।" वे बछड़े सदा लोगोंको यह पुनीत उपदेश देते रहते हैं। फिर भी लोग नहीं समझ पाते ॥ १३९ ॥ मैंने

देहबुद्धिर्यदा नष्टा तदा किं शेषमस्ति हि । सुखं दुःखं तु देहाय न मे किंचिद्रघूत्तम ॥१४१॥
तिष्ठत्वयं वा पततु देहो भोगाश्रयः प्रभो । अहं त्वदंश एवात्र पृथगुपाधितः स्मृता ॥१४२॥
यथा कुम्भे रविर्भिन्नो दृश्यतेऽत्र ह्युपाधितः । त्वत्तोऽहं न कदा भिन्ना ब्रह्मैवास्म्यहमेव वै ॥१४३॥
इति तन्मातृवचनं श्रुत्वा रामः स्मिताननः । कौसल्यामाह मातस्त्वं मुक्ताऽस्यद्य न संशयः ॥१४४॥
सम्यग्विचारितं चित्ते वत्सवाक्यं सविस्तरम् । गच्छ तिष्ठ सुखं गेहे त्विमां बुद्धिं दृढां कुरु ॥१४५॥
किमर्थं न मया पूर्वं युष्मान्स्ववचनेन हि । उपदेशः कृतस्त्वम्ब तत्सर्वं त्वं निबोधय ॥१४६॥
उपदेष्टा गुरुर्ज्ञेयो युष्माकं तनयस्त्वहम् । कथं युष्मानत्र मातस्त्वहं चोपदिशामि वै ॥१४७॥
स्त्रीणां पतिर्गुरुर्ज्ञेयः स्त्रीभिर्नान्यो गुरुः कदा । कार्यस्तस्मान्मया नैव युष्मान् स्वास्योपदेशितम् १४८ ।
पौराणां च गुरुस्तातस्तथा स्वीयपुरोहितः । अतस्तेषामपि मया दूतवाक्योपदेशितम् ॥१४९॥
परास्यैरेव युष्माकमुपदेशः कृतो मया । गच्छ गेहे सुखं तिष्ठ सदा मां परिचिंतय ॥१५०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कौसल्या तुष्टमानसा । रामं नत्वा ययौ गेहं संतुष्टा संस्थिता सुखम् ॥१५१॥
एवं ता रामचन्द्रेण बोधिता मातरः शुभाः । स्वस्वायुषः क्षये सर्वाः स्वदेहान्मुमुचुः सुखम् ॥१५२॥
रामसान्निध्यमात्रेण विमानवरसंस्थिताः । जग्मुः सर्वास्तु वैकुण्ठं राघवेणैव सत्कृताः ॥१५३॥
शिष्य तासां महद्भाग्यं यासां रामादिभिस्त्रिभिः । परलोक्यादि सत्कर्म स्वहस्तैर्विनिवर्तितम् ॥१५४॥
एवं शिष्य मया प्रोक्ता तासामूर्ध्वगतिस्तव । उपदेशास्तथा तासां प्रोक्ताश्चाप्यत्र ते मया ॥१५५॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे मातृवैकुण्ठारोहणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

जबसे यह समझ लिया है कि यह 'अहं' शब्द देहसे सम्बन्ध रखता है—आत्मासे नहीं। तबसे मैंने इसका परित्याग कर दिया है। ऐसा करनेसे मेरी यह देहबुद्धि भी नष्ट हो गयी है कि मैं देहवती हूँ ॥१४०॥ जब कि देह-बुद्धि नष्ट हो गयी, तब फिर बाकी ही क्या रह गया। हे रघुसत्तम! मैंने समझा है कि सांसारिक सुख दुःख इस देहके लिए हैं, मेरे (आत्मा) के लिए नहीं ॥ १४१ ॥ भोगोंकी आश्रयरूपिणी यह काया रहे या नष्ट हो जाय। हे प्रभो! वास्तवमें तो मैं आपका एक अंश हूँ। माताशब्द तो केवल उपाधिमात्र है ॥ १४२ ॥ उसी तरह जैसे कि घाममें घट रख देनेपर उसमें एक सूर्य और दिखायी देने लगता है। आपसे अलग होकर मैं कभी रह ही नहीं सकती। मैं ही ब्रह्म हूँ ॥ १४३ ॥ इस प्रकार माताकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम कहने लगे—हे माता! तुम आज मुक्त हो गयीं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ १४४ ॥ तुमने उन बछड़ोंकी बोलीपर बहुत ठीक विचार किया है। अब जाओ, आनन्दसे घरपर रहो और अपनी इस बुद्धिको दृढ़ बनाये रक्खो ॥ १४५ ॥ हे माताओं! जब आप लोगोंने मुझसे उपदेश सुनना चाहा था और मैंने कुछ न कहकर एक-एक व्याजसे उपदेश दिया, उसका भी कारण सुनो ॥ १४६ ॥ इसमें यह भेद है कि उपदेश देनेवाला गुरु होता है, किन्तु मैं आपका पुत्र हूँ। ऐसी दशामें उपदेश किस तरह दूँ? ॥ १४७ ॥ शास्त्र भी कहता है कि स्त्रीका गुरु एकमात्र पति होता है, उसका उपदेष्टा और कोई हो ही नहीं सकता। स्त्रियोंको चाहिये भी यही कि पतिके सिवाय और किसीको अपना गुरु न बनायें। इसी लिए मैंने आपको अपने मुँहसे कुछ भी उपदेश नहीं दिया ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ बल्कि दूसरों ही के मुखसे उपदेश दिलाया। जाओ, घरमें आनन्दपूर्वक बैठो और सदा मेरा ध्यान करती रहो ॥ १५० ॥ रामकी बात सुनकर कौसल्या प्रसन्न मनसे अपने महलोंमें चली गयीं और सुखसे रहने लगीं ॥ १५१ ॥ इस तरह रामचन्द्रजीके द्वारा उपदेश पाकर वे माताएँ बहुत दिनों तक आनन्दसे रहीं और आयु समाप्त हो जानेपर उन्होंने शरीर त्याग दिया ॥१५२॥ रामके पास रहनेके कारण अच्छे-अच्छे विमानोंपर बैठकर वे सब वैकुण्ठधाम गयीं ॥ १५३ ॥ हे शिष्य! उन माताओंका बड़ा भाग्य था, जिनकी पारलौकिक क्रियाओंको राम-लक्ष्मण आदिने स्वयं सम्पन्न किया ॥ १५४ ॥ इस प्रकार हे शिष्य! मैंने उन माताओंकी ऊर्ध्वगतिसे संबन्ध रखनेवाली बातें तथा उपदेश आदि कह सुनाया ॥ १५५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामपूजाका विस्तार)

विष्णुदास उवाच

कथं श्रीराघवस्यात्र रामोपासकमानवैः । कार्या वै मानसी पूजा बहिःपूजा तथा शुभा ॥ १ ॥
कथं चोपासना ग्राह्या गुरो श्रीराघवस्य च । का श्रेष्ठोपासना चात्र कः श्रेष्ठोऽत्र गुरुस्तथा ॥ २ ॥
के के मंत्रा राघवस्य भक्तानां सिद्धिदायकाः । तिथिस्तोषदा तस्य किं किं तत्तोषवर्द्धनम् ॥ ३ ॥
कः श्रेष्ठोऽत्र वरो देवो यस्य ग्राह्या ह्युपासना । तत्सर्वं विस्तरेणैव गुरो त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । सर्वं तद्विस्तरेणाद्य त्वदग्रे कथ्यते मया ॥ ५ ॥
आदौ गुरुं परीक्ष्यात्र तच्चिह्नैश्च द्विजोत्तम । उपदेशस्ततस्तस्माद्ग्राह्यस्तीर्थे विधानतः ॥ ६ ॥
गुरोश्चैवात्र चिह्नानि तवादौ प्रवदाम्यम् । क्रोधी कुष्ठी महारोगी मलिनो निर्घृणो जडः ॥ ७ ॥
अपण्डितो निंदकश्च लोलुपो विषयातुरः । दांभिको गर्वसंयुक्तः पापात्मा दुष्टवंशजः ॥ ८ ॥
घाती परद्रोहकर्त्ता परद्रव्यापहारकः । अजितात्मा वेदबाह्यः परदाररतः सदा ॥ ९ ॥
परदोषारोपकश्च कृपणश्चाजितेन्द्रियः । वेददेवद्विजातीनां यतितीर्थगवामपि ॥१०॥
तुलसीवह्निसूर्याणां द्वेष्टा योग्यो गुरुर्न हि । वेत्ता सकलधर्माणां शास्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥११॥
सत्यवाङ् मितभुग्ज्ञानी कलावान्द्विजवंशजः । सत्कर्मनिष्ठो धर्माणामुपदेष्टा सुबुद्धिदः ॥१२॥
योगाभ्यासकलाभिज्ञो योगवान्समदर्शनः । कृतकर्मा तीर्थसेवी धर्माधर्मविवेचकः ॥१३॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । स्वाश्रमाचारसन्निष्ठो बुद्धिमान्विजितेन्द्रियः ॥१४॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! इस संसारमें रामकी उपासना करनेवालोंको रामकी मानसी पूजा किस प्रकार करनी चाहिए ? ॥ १ ॥ और फिर गुरुके पाससे उपासना किस प्रकार ग्रहण करनी चाहिए ? समस्त उपासनाओंमें सर्वश्रेष्ठ उपासना कौन-सी है, और श्रेष्ठ गुरु कैसा होता है, सो भी बतला दीजिए ॥ २ ॥ साथ ही यह भी बतलाइए कि रामके कौन-कौनसे ऐसे मन्त्र हैं, जिनसे भक्तोंको आनन्द प्राप्त होता है। कौन-कौन-सी तिथियाँ ऐसी हैं, जिनसे भक्तोंका मन सन्तुष्ट होता है ॥ ३ ॥ इस संसारमें कौन श्रेष्ठ देवता हैं, जिसकी उपासना की जाय। हे गुरो ! यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ ४ ॥ श्रीरामदासने कहा--हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार सारी बातें विस्तारपूर्वक कहता हूँ। सावधान होकर सुनो ॥ ५ ॥ लोगोंको चाहिये कि पहले गुरुकी परीक्षा करके उनके चिह्न समझें। इसके अनन्तर किसी पवित्र तीर्थमें उनसे विधिवत् उपदेश ग्रहण करे ॥ ६ ॥ प्रसङ्गवश पहले मैं तुम्हें गुरुके लक्षण बतलाता हूँ। जो क्रोधी, कुष्ठी, ग्रहरोगका रोगी (जिसको भूत-वैताल आदि लगते हों), मैला-कुचैला, निर्दयी, जड़ ॥ ७ ॥ अपण्डित (अच्छा-बुरा न जाननेवाला), निन्दक, लोलुप, विषयी, पाखण्डी, अभिमानी, पापी, दूषित कुलमें उत्पन्न ॥ ८ ॥ विश्वासघाती, दूसरेसे द्रोह करनेवाला, दूसरेका धन अपहरण करनेवाला, अजितात्मा (जिसने अपनी आत्माको नहीं जीता है), वेदसे बहिष्कृत (नास्तिक), दूसरेकी स्त्रीसे प्रेम करनेवाला ॥ ९ ॥ दूसरेपर दोषारोप करनेवाला, कृपण (कंजूस) तथा वेद, देवता, ब्राह्मण, सन्त, तीर्थ, गौ, तुलसी, अग्नि और सूर्य इनसे द्वेष रखनेवाला हो। ऐसोंको भूलकर भी गुरु नहीं बनाना चाहिए। जो सब धर्मोंका ज्ञाता, शास्त्रोंपर विश्वास करनेवाला ॥ १० ॥ ११ ॥ सच बोलनेवाला, मिताहारी, ज्ञानी, कलाविद् ब्राह्मणके वंशमें उत्पन्न, अच्छे कामोंमें लगा हुआ, धर्मका उपदेष्टा, अच्छी बुद्धि देनेवाला ॥ १२ ॥ योगाभ्यासकी कलाओंका ज्ञाता, योगी, सबको समान दृष्टिसे देखनेवाला, केवल उपदेश न देकर स्वयं कर्म करनेवाला, तीर्थसेवी, धर्म-अधर्मकी विवेचना करनेमें निपुण ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थाश्रमी, योगी,

क्षमी कृपालुर्मृदुवाक् सुमुखः सौम्यदर्शनः । अनिद्रश्च समुद्योगी शांतात्मा परतोषकृत् ॥१५॥
औदार्यवान् ज्ञाननिष्ठः शुचिस्त्यक्तपरिग्रहः । इत्यादिगुणयुक्तो यः स गुरुः परमोत्तमः ॥१६॥
तस्य सेवां चिरं कृत्वा सेवया तं प्रसाद्य च । तस्मादुपासना ग्राह्या सुतीर्थे विधिपूर्विका ॥१७॥
उपासनास्त्रयः संति सात्त्विकी राजसी तथा । तामसी च तृतीया सा गर्हिताऽत्र निगद्यते ॥१८॥
भूतवेतालकूष्मांडपिशाचानामुपासना । सा ज्ञेया तामसी घोरा देवानां सात्त्विकी स्मृता १९॥
यक्षाणां राक्षसानां च या ज्ञेया सा तु राक्षसी । शैवा सौराश्च गाणेशाः शाक्ताश्च वैष्णवास्तथा ॥२०॥
अवतारास्त्वसंख्याताः पंचानां सन्ति भूतले । तेषामुपासना ग्राह्या गुरोरास्याद्द्विजातिभिः ॥२१॥
पंचानामवतारेषु विष्णोरेव वदाम्यहम् । चतुश्चत्वारिंशन्मितानवतारान्महत्तमान् ॥२२॥
पुरुषोत्तमो विधिश्चैव रुद्रो नारायणस्तथा । हंसोऽथ दत्तात्रेयश्च कुमारो ऋषभस्तथा ॥२३॥
हयग्रीवस्तथा मत्स्यः कूर्मो वाराह एव च । नारसिंहो वामनश्च जामदग्न्यस्तथैव च ॥२४॥
रामः कृष्णस्तथा बौद्धः कल्किर्यज्ञो हरिस्तथा । वालखिल्योद्धारकश्च पृथुर्धन्वंतरिस्तथा ॥२५॥
मोहिनी नारदो व्यासः कपिलः केशवस्तथा । माधवश्चाथ गोविंदो मधुसूदन एव च ॥२६॥
त्रिविक्रमः श्रीधरश्च पद्मनाभस्तथा स्मृतः । दामोदरस्तथा संकर्षणः प्रद्युम्न एव च ॥२७॥
अनिरुद्धोऽक्षजश्च ह्यच्युतश्च जनार्दनः । उपेंद्रश्च हृषीकेशस्त्वेते ज्ञेया महत्तमाः ॥२८॥
मत्स्याद्या अवताराश्च दशतेष्वपि चोत्तमा । दशावतारमध्येऽपि रामकृष्णौ महत्तमौ ॥२९॥
ताभ्यामपि वरः पूर्वः सत्यसंधो रघूत्तमः । एकपत्नीव्रतो वीरस्त्वेकबाणो नृपोत्तमः ॥३०॥
सप्तद्वीपपतिः श्रीमांश्छत्रचामरमंडितः । एवं ज्ञात्वोपासनाऽत्र ग्राह्या श्रीराघवस्य च ॥३१॥
गुरूपदिष्टविधिना सुमुहूर्ते शुभस्थले । अथवा तत्तद्देवानां ग्राह्या तज्जन्मसत्तिथौ ॥३२॥

जिस आश्रममें हो उनके नियमोंका पालन करनेवाला, बुद्धिमान्, इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, ॥ १४ ॥ क्षमाशील, कृपालु, मधुरभाषी, अच्छे मुखवाला, सौम्यदर्शी, कम सोनेवाला, सदा उद्योगमें लगा हुआ, शान्तात्मा, दूसरोंको प्रसन्न करनेमें तत्पर, ॥ १५ ॥ उदार, ज्ञाननिष्ठ, पवित्र और दान आदि ग्रहण करनेसे पराङ्मुख, इन गुणोंसे विभूषित पुरुष ही उत्तम गुरु होता है ॥ १६ ॥ ऐसे गुरुकी बहुत दिनोंतक सेवा करके उसे प्रसन्न करे । तब किसी अच्छे तीर्थमें उससे विधिपूर्वक उपासनाका उपदेश ग्रहण करे ॥ १७ ॥ उपासना भी तीन प्रकारकी होती है । सात्त्विकी, राजसी और तामसी । इनमेंसे तामसी उपासना निन्दित मानी गयी है ॥ १८ ॥ भूत, वैताल, कूष्माण्ड और पिशाच आदिकी घोर उपासना तामसी कही गयी है । देवताओंकी उपासना सात्त्विकी कही जाती है ॥ १९ ॥ यक्षों और राक्षसोंकी उपासना राजसी उपासना कहलाती है । शिव, सूर्य, गणेश, शक्ति तथा विष्णु इन पाँचों देवोंके असंख्य अवतार हैं । लोगोंको चाहिये कि गुरुके मुखसे इन्हीं पाँच देवोंमेंसे किसी एककी उपासना ग्रहण करें ॥ २० ॥ २१ ॥ ऊपर कहे गये देवताओंमेंसे मैं यहाँ विष्णु भगवान्‌के बड़े-बड़े चौवालिस अवतार बतला रहा हूँ ॥ २२ ॥ पुरुषोत्तम, गरुड़, नारायण, हंस, दत्तात्रेय, कुमार, ऋषभ, हयग्रीव, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, ॥ २३ ॥ २४ ॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्कि, यज्ञ, हरि, बालखिल्य, उद्धारक, पृथु, धन्वंतरि, मोहिनी, नारद, व्यास, कपिल, केशव, माधव, गोविन्द, मधुसूदन, ॥ २५ ॥ २६ ॥ त्रिविक्रम, श्रीधर, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अधोक्षज, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र और हृषीकेश ये श्रेष्ठ अवतार माने गये हैं । इन अवतारोंमें भी मत्स्य-कूर्मादि दस अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं और इन दसोंमें भी राम और कृष्ण श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इन दोनोंमें भी सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं । क्योंकि ये एकपत्नीव्रती, वीर, एक बाणधारी और सब राजाओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ ये सातों द्वीपोंके अधिपति, श्रीमान्, छत्र और चमरसे सुशोभित हैं । ऐसा समझकर भक्तोंको चाहिए कि गुरुके द्वारा उपदिष्ट विधिके अनुसार अच्छे मुहूर्त तथा पवित्र स्थानमें श्रीरामचन्द्रजीकी उपासनाका मन्त्र लें । अथवा ऊपर गिनाये देवताओंमेंसे जिसपर जिसकी रुचि हो, उसीको

चैत्रे मासि दिने पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । उपासनानन्तरं हि रामं भक्त्या प्रपूजयेत् ॥३३॥
एवं यस्यावतारस्य गृहीतोपासना नरैः । तैस्तस्य जन्मदिवसे कार्या पूजा महोत्सवैः ॥३४॥
अतो दशावताराणां शिष्य जन्मदिनानि ते । प्रोच्यन्तेऽत्र शृणुष्व त्वं येषु तान्पूजयेन्नरः ॥३५॥
चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक् । ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥३६॥
चैत्रकृष्णनवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक् । वैशाखेऽभूच्चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे नृकेसरी ॥३७॥
मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां वामनस्त्वभूत् । वैशाखे जामदग्न्यस्तु तृतीयायां सिते त्वभूत् ॥३८॥
चैत्रशुक्लनवम्यां तु मध्याह्ने राघवस्त्वभूत् । कृष्णाष्टम्यां श्रावणे हि कृष्णोऽभून्मथुरापुरि ॥३९॥
पौषशुक्ला सप्तमी या बुद्धजन्मतिथिस्तु सा । माघशुक्लतृतीया तु कल्किनः सा तिथिः स्मृता॥४ ॥

अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे ।
कूर्मः सिंहो बुद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे ॥४१॥

एवं तज्जन्मकालश्च ज्ञात्वा तेषामुपासकैः । उत्सवः परमः कार्यस्तत्तद्देवप्रपूजने ॥४२॥
नित्यपूजा प्रकर्तव्या भक्त्या तेषामुपासकैः । विशेषाज्जन्मदिवसे कार्यं तत्पूजनं मुदा ॥४३॥
गुरोर्गृहीतो यो मन्त्रस्तं नित्यं हृदये जपेत् । राममन्त्रास्त्वनेकाश्च शतवर्णात्मको मनुः ॥४४॥
पञ्चाशद्वर्णकश्चापि द्विचत्वारिंशदक्षरः । द्वात्रिंशदक्षरश्चाथ सप्तविंशाक्षरस्तथा ॥४५॥
पञ्चविंशद्वर्णकश्च चतुर्विंशाक्षरस्तथा । एकविंशद्वर्णकश्च विंशद्वर्णात्मकस्तथा ॥४६॥
अष्टादशवर्णकश्च षोडशाक्षर एव च । पञ्चदशवर्णकश्च चतुर्दशाक्षरस्तथा ॥४७॥
त्रयोदशाक्षरश्चापि द्वादशाक्षर एव च । एकादशाक्षरश्चापि तथा मन्त्रो दशाक्षरः ॥४८॥
नवाक्षरोऽष्टवर्णात्मा सप्ताक्षरमनुस्तथा । षडक्षरो राममन्त्रस्तथा पञ्चाक्षरो मनुः ॥४९॥

जन्मतिथिपर उसकी उपासना ग्रहण करे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ रामकी उपासना ग्रहण करनेवालोंको चाहिए कि चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवमी (रामजन्म) के दिन उपासना ग्रहण करें। उसके बाद भक्तिपूर्वक रामका पूजन करें ॥ ३३ ॥ इस तरह जिस अवतारकी उपासना ग्रहण करनी हो, उसके जन्मदिवसपर महान् उत्सवके साथ पूजा करनी चाहिए ॥ ३४ ॥ हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें दसों अवतारोंके जन्मदिवस बतलाता हूँ। जिनमें लोगोंको अपने उपास्य देवताका पूजन करना चाहिए ॥ ३५ ॥ चैत्र शुक्ल पञ्चमीको भगवान्‌ने मत्स्यावतार लिया था। ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी द्वादशीको भगवान्‌ने कूर्मरूप धारण किया था। चैत्र कृष्ण नवमीको भगवान्‌ने वाराहरूप धारण किया था। वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको नृसिंहरूप धारण किया था ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको वामनरूप धारण किया था। वैशाख शुक्ल तृतीयाको ये परशुराम बने थे ॥ ३८ ॥ चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें भगवान्‌ने रामका अवतार लिया था। भाद्रपद कृष्णपक्षकी अष्टमीको भगवान्‌ने मथुरामें कृष्णरूपसे अवतार लिया था ॥ ३९ ॥ पौष शुक्ल सप्तमीको बुद्धकी जन्मतिथि होती है। माघ शुक्ल तृतीयाको कल्कि भगवान्‌की जन्मतिथि होती है ॥ ४० ॥ दोपहरके समय वामन, राम और कल्कीका जन्म हुआ था। मत्स्य-वाराह इन दोनोंका जन्म दिनके तीसरे पहर हुआ था। कूर्म, नृसिंह, बुद्ध और कल्कीका अवतार सन्ध्याके समय हुआ था और श्रीकृष्णचन्द्रजीका जन्म आधी रातको हुआ था ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अपने-अपने उपास्य देवोंका जन्मकाल जानकर उस समय महान् उत्सव मनाते हुए उनकी पूजा करनी चाहिए ॥ ४२ ॥ उपासकोंको उचित है कि नित्य अपने आराध्य देवकी पूजा करें। विशेषकर उनके जन्मदिवसको उत्सव और पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ ४३ ॥ गुरुसे जो मन्त्र मिले, हृदयमें सर्वदा उसका जप करता रहे। राममन्त्र भी अनेक प्रकारके हैं। उनमेंसे एक सौ अक्षरोंका, एक पचास अक्षरोंका, एक बयालिस अक्षरोंका, एक बत्तीस अक्षरोंका, एक सत्ताइस अक्षरोंका, एक चौबीस अक्षरोंका, एक इक्कीस अक्षरोंका, एक बीस अक्षरोंका, ॥ ४४–४६ ॥ एक अठारह अक्षरोंका, एक सोलह अक्षरोंका, एक पन्द्रह अक्षरोंका, एक चौदह अक्षरोंका, एक तेरह अक्षरोंका, एक बारह अक्षरोंका, एक ग्यारह अक्षरोंका, एक दश

चतुर्वर्णात्मकश्चापि तथा वर्णत्रयात्मकः । द्व्यक्षरो राममन्त्रश्च मनुस्त्वेकाक्षरोऽपि च ॥५०॥
एवं नानाविधा मन्त्राः शतशोऽथ सहस्रशः । गुरोस्त्वेको गृहीत्वाऽत्र जपेच्छ्रीरामसन्निधौ ॥५१॥
उपासनाविधानं च रामोपासकमानवैः । यथा मन्त्रस्य रूपं हि विज्ञेयं मंत्रशास्त्रतः ॥५२॥
अधुना मानसी पूजाविधानं च मयोच्यते । यद्दण्डके सुतीक्ष्णाय कथितं कुम्भजन्मना ॥५३॥
सुतीक्ष्णस्त्वेकदाऽगस्त्यं दृष्ट्वा रहसि संस्थितम् । प्रणम्य परया भक्त्या प्रोवाच विनयान्वितः ॥५४॥

सुतीक्ष्ण उवाच

हृदये मानसी पूजा कीदृशी च वद प्रभो । उपचारैः कतिविधैः पूज्यते रघुनन्दनः ॥५५॥

अगस्त्य उवाच

रामं पद्मविशालाक्षं कालाम्बुदसमप्रभम् । स्मितवक्त्रं सुखासीनं चिन्तयेच्चित्तपुष्करे ॥५६॥
रागादिकलुषं चित्तं वैराग्येण सुनिर्मलम् । कृत्वा ध्यायेत्सदा रामं भवबन्धविमुक्तये ॥५७॥
प्रातः शुद्धवपुर्भूत्वा शौचादिभिरतन्द्रितः । विविक्तदेशमाश्रित्य ध्यानं पूजां समारभेत् ॥५८॥
नाभिकुन्दसमुद्भूतं कदलीकुसुमोपमम् । अष्टपत्रं स्निग्धवर्णं ध्यायेद्धृदयपंकजम् ॥५९॥
तत्पद्मं रामनाम्नैव फुल्लं कृत्वाऽस्य मध्यमे । भावयेत्सूर्यसोमाग्निमण्डलानुत्तरोत्तरम् ॥६०॥
तस्योपरि न्यसेद्दिव्यं पीठं रत्नमयोज्ज्वलम् । तन्मध्ये राघवं ध्यायेत्सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥६१॥
इंदीवरनिभं शांतं विशालाक्षं सुवक्षसम् । उद्यद्दीधितमद्भास्वत्कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥६२॥
सुनासं सुकिरीटं च सुकपोलं शुचिस्मितम् । विज्ञानमुद्रं द्विभुजं कंबुग्रीवं सुकुन्तलम् ॥६३॥
नानारत्नमयैर्दिव्यहारैर्भूषितमव्ययम् । विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशं वस्त्रयुग्मधरं हरिम् ॥६४॥

अक्षरोंका, एक नौ अक्षरोंका, एक आठ अक्षरोंका, एक सात अक्षरोंका, एक छ अक्षरोंका, एक पाँच अक्षरोंका, एक चार वर्णोंका, एक तीन अक्षरोंका, एक दो अक्षरोंका और एक एक अक्षरका राममंत्र है ॥ ४७-५० ॥ एक तरह अनेक प्रकारके राममंत्र हैं। उपासकको चाहिये कि उनमेंसे किसी भी एक मंत्रको गुरुसे ग्रहण करे और श्रीरामचन्द्रजीके पास बैठकर उसका जप करे ॥ ५१ ॥ रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि उपासनाकी विधि और मन्त्रका स्वरूप मन्त्रशास्त्रसे समझ लें ॥ ५२ ॥ अब मैं यहाँ रामकी मानसी पूजाका विधान बतला रहा हूँ। जिसे कि दण्डक वनमें अगस्त्यजीने सुतीक्ष्ण ऋषिको बतलाया था ॥ ५३ ॥ एक दिन अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे। उसी समय सुतीक्ष्णने जाकर परम भक्तिसे अगस्त्यको प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहने लगे ॥ ५४ ॥ सुतीक्ष्णने कहा—हे प्रभो! उपासकोंकी मानसी पूजा कैसे करनी चाहिये। इस पूजामें किन-किन उपचारोंसे रामका पूजन किया जाता है, सो आप बतलाइए ॥ ५५ ॥ अगस्त्यने कहा कि उपासकको चाहिए कि पहले वह अपने हृदयरूपी कमलपर बैठे हुए रामका इस प्रकार ध्यान करे—जिनके कमलकी तरह विशाल नेत्र हैं। काले मेघके समान नील वर्ण है। मुस्कराता हुआ मुख है और वे आनन्दपूर्वक बैठे हैं ॥ ५६ ॥ उपासकका यह भी कर्तव्य है कि राग-द्वेष आदिसे कलुषित चित्तको वैराग्यसे निर्मल कर ले। तब भवपाशसे मुक्त होनेके लिए रामका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ सवेरे शरीरको पवित्र करके तन्द्राको सर्वथा छोड़कर किसी एकान्त स्थानमें ध्यान और पूजन करे ॥ ५८ ॥ नाभि-कुण्डसे निकले हुए कदलीपुष्पके समान आठ दलोंवाले और चिकने हृदयरूपी कमलका ध्यान करे ॥ ५९ ॥ उस कमलको रामनामसे विकसित करके बीचमें सूर्य, सोम एवं अग्निमण्डलसे भी अधिक प्रकाशमान तेजका ध्यान करे ॥ ६० ॥ उसपर रत्नमय उज्ज्वल चौकी रखनेकी भावना करके उसके बीचोबीच करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान रामका ध्यान करे ॥ ६१ ॥ कमलकी नाईं जिनकी विशाल आँखें हैं। दमकती हुई दीप्तिसे प्रकाशित कुण्डल जिनके कानोंमें पड़े हैं ॥ ६२ ॥ जिनकी सुन्दर नासिका है, जो सुन्दर किरीट धारण किये हैं, जिनका सुन्दर कपोल है, मीठी मुसकान है, वे विज्ञानमुद्रा धारण किये हैं, उनकी दो भुजाएँ हैं, शंखके समान ग्रीवा है, उनके काले और चमकते हुए केशपाश हैं, जो अनेक रत्नोंसे गुथी दिव्य माला पहने हैं, जिनका कभी भी

वीरासनस्थं संतानतरुमूलनिवासिनम् । महासुगन्धलिप्ताङ्गं वनमालाविराजितम् ॥६५॥
वामपार्श्वे स्थितां सीतां चामीकरसमप्रभाम् । लीलापद्मधरां देवीं चारुहासां शुभाननाम् ॥६६॥
पश्यंतीं स्निग्धया दृष्ट्या दिव्यां कल्पविराजिताम् । छत्रचामरहस्तेन लक्ष्मणेन सुसेवितम् ॥६७॥
हनुमत्प्रमुखैर्नित्यं वानरैः परिवारितम् । स्तूयमानं ऋषिगणैः सेवितं भरतादिभिः ॥६८॥
सनन्दनादिभिश्चान्यैर्योगिवृंदैः स्तुतं सदा । सर्वशास्त्रार्थकुशलं योगज्ञं योगसिद्धिदम् ॥६९॥
एवं ध्यात्वा रामचन्द्रं मणिद्वयसुशोभितम् । शुद्धेन मनसा रामं पूजयेत्सततं हृदि ॥७०॥

इति ध्यानम् ।

आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं विभुम् । कौसल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम् ॥७१॥
राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते । रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥७२॥
श्रीरामागच्छ भगवन् रघुवीर रघूत्तम । जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ॥७३॥
रामचन्द्र महेष्वास रावणांतक राघव । यावत्पूजा समाप्येऽहं तावत्त्वं सन्निधौ भव ॥७४॥
रघुनन्दन राजर्षे राम राजीवलोचन । रघुवंशज मे देव श्रीरामाभिमुखो भव ॥७५॥
प्रसीद जानकीनाथ सुप्रसिद्ध सुरेश्वर । प्रसन्नो भव मे राजन् सर्वेश मधुसूदन ॥७६॥
शरणं मे जगन्नाथ शरणं भक्तवत्सल । वरदो भव मे राजन् शरणं मे रघूत्तम ॥७७॥
त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक । पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन ॥७८॥
परिपूर्ण परानन्द नमो रामाय वेधसे । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥७९॥
ॐनमो वासुदेवाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे । मधुपर्कं गृहाणेमं राजाराजाय ते नमः ॥८०॥

विनाश नहीं होता, जो विद्युत्पुंजके समान दमकते हुए वस्त्रोंके जोड़े पहने हैं, वीरासनसे बैठे हैं, कल्पवृक्षके नीचे निवास करते हैं, उत्तम सुगन्ध जिनके शरीरभरमें मली हुई है और जो वरमाला धारण किये हुए हैं ॥६३-६५॥ जिनके बायें बगलमें सीताजी बैठी हैं, उनकी भी सुवर्ण सरीखा तेज है, वे हाथोंमें लीलापद्म लिये हैं, मुखपर मन्द मुस्कराहट है, सुन्दर चेहरा है और प्रेमभरी दृष्टिसे रामको निहारती हुई कल्पवृक्षके नीचे बैठी हैं। हाथमें छत्र और चमर लेकर लक्ष्मणजी रामकी सेवा कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ हनुमान आदि वानरोंसे वे नित्य घिरे रहते हैं। कितने ही ऋषि स्तुति करते हैं और भरत आदि भ्राता उनकी सेवा कर रहे हैं। सनन्दन आदि कितने ही योगी उनकी स्तुति कर रहे हैं। वे राम समस्त शास्त्रोंके अर्थ जाननेमें कुशल हैं। योगक्रियाको भी वे जानते हैं और योगसिद्धिके दाता हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ कौस्तुभ तथा चिन्तामणि इन दोनों मणियोंसे सुशोभित रामचन्द्रका ध्यान करके शुद्ध मनसे नीचे लिखी विधिके अनुसार सदा हृदयमें उनका पूजन करे ॥ ७० ॥ संसारके ईश, जानकीके वल्लभ, कौसल्याके पुत्र, प्रकृतिसे पर और विष्णुरूपधारी श्रीरामका मैं आवाहन करता हूँ ॥ ७१ ॥ हे राजाओंके राजा रामचन्द्र ! हे महीपते ! मैं आपको रत्नमय सिंहासन देता हूँ, उसे स्वीकार करें ॥ ७२ ॥ हे श्रीराम ! हे भगवन् ! हे रघुवीर ! हे रघुत्तम ! हे राजेन्द्र ! आप जानकीजीके साथ आइये और इस हृदयासनपर बैठिए ॥ ७३ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महान् धनुष धारण करनेवाले ! हे रावणान्तक ! हे राघव ! जब तक मैं पूजन समाप्त न कर लूँ, तब तक आप मेरे पास रहिए ॥ ७४ ॥ हे रघुनन्दन ! हे राजर्षे ! हे राजीवलोचन राम ! हे रघुवंशज ! हे देव ! हे श्रीराम ! आप मेरे सम्मुख प्रकट हों ॥ ७५ ॥ हे जानकीनाथ ! हे सुप्रसिद्ध सुरेश्वर ! आप मेरेपर प्रसन्न हों। हे राजन् ! हे सर्वेश ! हे मधुसूदन ! आप मेरेपर प्रसन्न हों ॥ ७६ ॥ हे जगन्नाथ ! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे भक्तवत्सल ! आप मेरे वरदाता हों। हे रघूत्तम ! मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ ७७ ॥ हे अनन्त ! हे त्रैलोक्यपावन ! हे रघुनायक ! आपको प्रणाम है। हे राजर्षे ! इस पद्मको ग्रहण करिए। हे राजीवलोचन राम ! आपको प्रणाम है ॥ ७८ ॥ परिपूर्ण परमानन्द ब्रह्मरूपधारी रामको प्रणाम है। हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! मेरे दिये हुए अर्घ्यको आप ग्रहण करें ॥ ७९ ॥ तत्त्वज्ञानके साक्षात् स्वरूप वासुदेवको प्रणाम है। हे राजराज ! आपको प्रणाम है। आप मेरे

नमः सत्याय शुद्धाय बुध्न्याय ज्ञानरूपिणे । गृहाणाचमनं देव सर्वलोकैकनायक ॥८१॥
ब्रह्मांडोदरमध्यथैस्तीर्थैश्च रघुनन्दन । स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाण जनार्दन ॥८२॥
संतप्तकांचनप्रख्यं पीतांबरमिमं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥८३॥
श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनायक ॥८४॥
किरीटहारकेयूररत्नकुंडलमेखलाः । ग्रैवेयकौस्तुभं हारं रत्नकंकणनूपुरान् ॥८५॥
एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि रघूत्तम । अहं दास्यामि ते भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥८६॥
कुंकुमागरुकस्तूरीकर्पूरोन्मिश्रचन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥८७॥
तुलसीकुन्दमन्दारजातिपुन्नागचम्पकैः । कदंबकरवीरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ॥८८॥
नीलांबुजैर्बिल्वदलैः पुष्पमाल्यैश्च राघव । पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण नमोऽस्तु ते ॥८९॥
वनस्पतिरसैर्दिव्यैर्गन्धाढ्यैः सुमनोहरैः । रामचन्द्र महीपाल धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥९०॥
ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे । गृहाण दीपकं राजंस्त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥९१॥
इदं दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिर्विराजितम् । श्रीराम राजराजेन्द्र नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥९२॥
नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम् । तांबूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिसमन्वितम् ॥९३॥
मङ्गलार्थं महीपाल नीराजनमिदं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥९४॥

अथ नमस्काराष्टकमन्त्राः

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमात्मने । सर्वभूतांतरस्थाय ससीताय नमो नमः ॥९५॥
ॐ नमो भगवते श्रीराम रामचन्द्राय वेधसे । सर्ववेदांतवेद्याय ससीताय नमो नमः ॥९६॥
ॐ नमो भगवते श्रीविष्णवे परमात्मने । परात्पराय रामाय ससीताय नमो नमः ॥९७॥

किये हुए इस पूजनको ग्रहण करिए ॥ ८० ॥ सत्य, शुद्ध, बुध्न्य और ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है। हे देव ! हे सर्वलोकैकनायक ! मेरे दिये हुए इस आचमनको आप ग्रहण करें ॥ ८१ ॥ ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं, उनके जलसे मैं आपको स्नान कराऊँगा। सो आप स्वीकार करें ॥ ८२ ॥ हे हरे ! अच्छी तरह तपाये हुए सुवर्णके समान इस पीताम्बरको आप ग्रहण कीजिए। हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ८३ ॥ हे श्रीराम ! हे अच्युत ! हे यज्ञेश ! हे श्रीधरानन्द ! हे राघव ! हे रघुनायक ! उत्तरीय वस्त्रके साथ दिये हुए मेरे इस यज्ञोपवीतको आप ग्रहण करें ॥ ८४ ॥ किरीट, हार, केयूर, रत्नजटित कुण्डल, मेखला, माला, कौस्तुभका हार, रत्नजटित कंकण, नूपुर, इस प्रकार सब तरहके आभूषण मैं आपको भक्तिपूर्वक दूँगा। सो आप ग्रहण करिए ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ कुमकुम, अगुरु, कस्तूरी तथा कर्पूरसे मिश्रित चन्दन हे विश्वेश ! हे श्रीराम ! हे प्रभो ! मैं आपको दूँगा। सो आप स्वीकार करें ॥ ८७ ॥ तुलसी, कुन्द, मन्दार, जूही, पुन्नाग, चम्पक, कदम्ब, करवीर तथा शतपत्रके फूल, नीलकमल, बिल्वपत्र और पुष्पमाल्योंसे मैं आपका पूजन करूँगा। उसे आप ग्रहण करें। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ वनस्पतिके दिव्य रसों और सुगन्धसे मिश्रित दिव्य धूप आपको आघ्रापन कराऊँगा। हे रामचन्द्र ! हे महीपाल ! आप इसे ग्रहण करें ॥ ९० ॥ संसारके सारे ज्योतिर्मय पदार्थोंके पति हे राम ! हे वेधः ! आपको नमस्कार है। हे राजन् ! तीनों लोकका अंधकार नष्ट करनेवाले इस दीपकको आप ग्रहण करिए। छः रसोंसे युक्त तथा अमृतके समान सुस्वादु यह दिव्यान्न तैयार है। हे श्रीराम ! हे राजराजेन्द्र ! आप इस नैवेद्यको ग्रहण करिए ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ पानके पत्तोंसे जोड़े हुए, सुपारी तथा कर्पूरादि मसालोंसे युक्त इस ताम्बूलको आप ग्रहण करें ॥ ९३ ॥ हे महीपाल ! हे हरे ! मङ्गलके निमित्त दिये हुए मेरे इस नीराजनको आप ग्रहण करें। हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ९४ ॥ अब आठ नमस्कार बतलाते हैं। भगवान्, श्रीराम, परमात्मा, सब प्राणियोंके भीतर रहनेवाले, सीताके साथ रामचन्द्रजी-को प्रणाम है ॥ ९५ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र, वेधा और सब वेदांत जाननेवाले सीताके पति रामको प्रणाम है ॥ ९६ ॥ भगवान् विष्णु, परमात्मा, परात्पर एवं सीताके साथ विराजमान रामको प्रणाम है ॥ ९७ ॥

ॐनमो भगवते श्रीरघुनाथाय शार्ङ्गिणे । चिन्मयानन्दरूपाय ससीताय नमो नमः ॥९८॥
ॐनमो भगवते श्रीराम श्रीकृष्णाय चक्रिणे । विशुद्धज्ञानदेहाय ससीताय नमो नमः ॥९९॥
ॐनमो भगवते श्रीवासुदेवाय श्रीविष्णवे । पूर्णानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः ॥१००॥
ॐनमो भगवते श्रीराम रामभद्राय वेधसे । सर्वलोकशरण्याय ससीताय नमो नमः ॥१०१॥
ॐनमो भगवते श्रीरामायामिततेजसे । ब्रह्मानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः ॥१०२॥

इति नमस्काराष्टकमन्त्राः ।

नृत्यगीतादिवाद्यादिपुराणपठनादिभिः । राजोपचारैरखिलैः सन्तुष्टो भव राघव ॥१०३॥
विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय विष्णवे । अन्तःकरणसंशुद्धिं देहि मे रघुनन्दन ॥१०४॥
नमो नारायणानंत श्रीराम करुणानिधे । मामुद्धर जगन्नाथ घोरात्संसारसागरात् ॥१०५॥
रामचन्द्र महेष्वास शरणागततत्पर । त्राहि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहानलात् ॥१०६॥
श्रीकृष्ण श्रीकर श्रीश श्रीराम श्रीनिधे हरे । श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीनृसिंह कृपानिधे ॥१०७॥
गर्भजन्मजराव्याधिघोरसंसारसागरात् । मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥१०८॥

श्रीराम गोविंद मुकुंद कृष्ण श्रीनाथ विष्णो भगवन्नमस्ते ।
प्रौढारिषड्वर्गमहाभयेभ्यो मां त्राहि नारायण विश्वमूर्ते ॥१०९॥

श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । श्रीगोविन्द हरे विष्णो नमस्ते जानकीपते ॥११०॥
ब्रह्मानन्दैकविज्ञानं त्वन्नामस्मरणं नृणाम् । त्वत्पदांबुजसद्भक्तिं देहि मे रघुवल्लभ ॥१११॥

नमोऽस्तु नारायण विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वयोने ।
त्वमेव विश्वं सचराचरं च त्वामेव सर्वे प्रवदंति सन्तः ॥११२॥
नमोऽस्तु ते कारणकारणाय नमोऽस्तु कैवल्यफलप्रदाय ।
नमो नमस्तेऽस्तु जगन्मयाय वेदांतवेद्याय नमो नमस्ते ॥११३॥

भगवान्, श्रीरघुनाथ, शार्ङ्गी, चिन्मयानन्दस्वरूप और सीतापति रामको प्रणाम है ॥ ९८ ॥ भगवान्, श्रीरामकृष्ण, चक्री, विशुद्ध ज्ञानदेहधारी, सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ ९९ ॥ भगवान् श्रीवासुदेव-स्वरूप, विष्णु, पूर्णानन्दस्वरूप सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०० ॥ भगवान्, श्रीरामभद्र, वेधा (ब्रह्मा) और सब लोगोंके शरणदाता सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०१ ॥ जो अनन्त तेजधारी भगवान् रामचन्द्रजी हैं। उन ब्रह्मानन्दके एकमात्र रूपधारी सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०२ ॥ हे राघव ! मेरे नृत्य, गीत, वाद्य तथा पुराण-पठन आदि समस्त राजोचित उपचारोंसे आप प्रसन्न हों ॥ १०३ ॥ विशुद्ध ज्ञानरूप देह धारण करनेवाले श्रीरघुनाथजीको प्रणाम है। हे रघुनन्दन ! आप हमें अन्तःकरणकी शुद्धि प्रदान करिए ॥ १०४ ॥ हे नारायण ! हे अनन्त ! हे श्रीराम ! हे करुणानिधे ! आपको प्रणाम है। हे जगन्नाथ ! हमारा घोर संसारसागरसे उद्धार करें ॥ १०५ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महेष्वास ! हे शरणागत-तत्पर ! हे सर्वलोकेश ! हमें तापत्रयरूपी महानलसे बचाइए ॥ १०६ ॥ हे कृष्ण ! हे श्रीश ! हे श्रीराम ! हे श्रीनिधे ! हे श्रीनाथ ! हे महाविष्णो ! हे श्रीनृसिंह ! हे कृपानिधे ! गर्भ, जन्म, जरा तथा व्याधिस्वरूप घोर संसारसागरसे मुझे उबारिए। हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! ॥१०७,१०८॥ हे श्रीराम ! हे गोविन्द ! हे मुकुन्द ! हे कृष्ण ! हे श्रीनाथ ! हे विष्णो ! हे भगवन् ! आपको नमस्कार है। हे नारायण ! हे विश्वमूर्ति ! प्रौढ़ अरिषड्वर्गके महाभयसे मेरी रक्षा करिए ॥ १०९ ॥ हे श्रीराम ! हे अच्युत ! हे यज्ञेश ! हे श्रीधरानन्द राघव ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे जानकीपते ! आपको नमस्कार है ॥ ११० ॥ हे रघु-वल्लभ ! आपका नामस्मरण ब्रह्मानन्दके विज्ञानको उत्पन्न करता है। आप हमें अपने चरणकमलकी सद्भक्ति प्रदान करिए ॥ १११ ॥ हे कारणोंके भी कारण ! आपको नमस्कार है। हे कैवल्य फल प्रदान करनेवाले प्रभो ! आपको प्रणाम है। हे जगन्मय ! हे वेदान्तवेद्य ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ११२ ॥ हे भरतके अग्रज !

नमो नमस्ते भरताग्रजाय नमोऽस्तु यज्ञप्रतिपालनाय ।
अनंत यज्ञेश हरे मुकुंद गोविंद विष्णो भगवन्मुरारे ॥११४॥
श्रीवल्लभानन्त जगन्निवास श्रीराम राजेंद्र नमो नमस्ते ।
श्रीजानकीकांत विशालनेत्र राजाधिराज त्वयि मेऽस्तु भक्तिः ॥११५॥

तप्तजाम्बूनदेनैव निर्मितं रत्नभूषितम् । स्वर्णपुष्पं रघुश्रेष्ठं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥११६॥
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये सीतया सह राघव । निवस त्वं रघुश्रेष्ठ सर्वैरावरणैः सह ॥११७॥
मनोवाक्कायजनितं कर्म यद्वा शुभाशुभम् । तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे ॥११८॥
अपराधसहस्राणि क्रियंतेऽहर्निशं मया । दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व रघुपुंगव ॥११९॥
नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते । पूर्णानन्दैकरूप त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥१२०॥
एवं यः कुरुते पूजां बहिर्वा हृदयेऽपि च । सकृत्पूजनमात्रेण राम एव भवेन्नरः ॥१२१॥
किं पुनः सततं ब्रह्मण्येवं पूज्य स्थितो हि सः । सर्वान्कामानवाप्नोति चेह लोके परत्र च ॥१२२॥
एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तं यथा पृष्टं त्वया मम । हृदये मानसीपूजाविधानं राघवस्य च ॥१२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य सुतीक्ष्णाय मुनयेऽगस्तिना पुरा । यत्प्रोक्तं तन्मया सर्वं तव प्रोक्तं सविस्तरात् ॥१२४॥
शिष्याधुना बहिःपूजाविधानं च मयोच्यते । नरः प्रातः समुत्थाय कृत्वा शौचादिकाः क्रियाः १२५॥
स्नात्वा संध्यादिकं कृत्वा देवपूजां समारभेत् । तीर्थे देवालये वाऽपि गोष्ठे पुण्यस्थलेषु च ॥१२६॥
नद्यास्तटे देवगेहे तुलसीसन्निधौ तथा । लिप्त्वा भूमिं गोमयेन ततो पद्मानि लेखयेत् ॥१२७॥
सितरक्तहरित्पीतनीलकृष्णादिसंभवैः । नानावर्णैश्चित्रितानि तत्र पूजां समारभेत् ॥१२८॥

हे यज्ञका प्रतिपालन करनेवाले ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है । हे अनन्त ! हे यज्ञेश ! हे हरे ! हे मुकुन्द ! हे विष्णु ! हे मुरारे ! हे श्रीवल्लभ ! हे अनन्त ! हे जगन्निवास ! श्रीराम ! हे राजेन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे श्रीजानकीकान्त ! हे विशालनेत्र ! हे राजाधिराज ! आपमें मेरी भक्ति हो ॥ ११३–११५ ॥ तपाये हुए सुवर्णसे निर्मित और रत्नोंसे विभूषित यह सुवर्णपुष्प मैं आपको अर्पण करता हूँ । हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करें ॥ ११६ ॥ हृदयरूपी कमलके बीचोबीच सीता तथा समस्त आवरणोंके साथ उसपर बैठिए ॥ ११७ ॥ मन, वचन अथवा शरीरसे मैंने जो शुभ या अशुभ कर्म किया हो, वह सब आपकी प्रसन्नताका कारण बने । हे धनुर्धारी राम ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ११८ ॥ हे रघुपुंगव ! रात-दिन मैं हजारों प्रकारके पातक करता हूँ । मुझे अपना दास समझकर आप क्षमा कर दें ॥ ११९ ॥ हे जानकीनाथ ! हे महीपते ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे पूर्णानन्दनस्वरूप ! मैं आपको अर्घ्य देता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १२० ॥ इस रीतिसे जो मनुष्य हृदयके भीतर या बाहर पूजन करता है, वह केवल एक बारके पूजनसे साक्षात् राम हो जाता है ॥ १२१ ॥ फिर उसके लिए क्या कहना, जो रात-दिन उसीमें लीन रहता हो । वह प्राणी इहलोक और परलोक, दोनोंकी अभीष्ट कामनाएँ प्राप्त कर लेता है । हे सुतीक्ष्ण ! तुमने हमसे जैसे पूछा, उस प्रकार मैंने मानसी पूजाका सारा विधान कह सुनाया ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ श्रीरामदासने कहा – हे शिष्य ! इस तरह सुतीक्ष्ण मुनिके लिए अगस्त्य ऋषिने उस समय जो विधान बतलाया था, सो मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें बतला दिया ॥ १२४ ॥ हे शिष्य ! अब मैं बाह्यपूजाका विधान बतला रहा हूँ । उपासकको चाहिये कि प्रातःकाल उठे और शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान-संध्या आदि करे । फिर किसी तीर्थ, देवालय, गोशाला या पवित्र स्थानमें देवपूजा प्रारम्भ करे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ ऊपर बताये स्थानोंके सिवाय किसी नदीतटपर, देवमन्दिर तथा तुलसीके पास गोबरसे लीपकर सफेद, लाल, हरे, पीले, नीले, काले, इस तरह नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र-विचित्र पद्म बनाकर पूजन प्रारम्भ करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ एक आसन एक हजार आठ श्रीरामनामका बनता है । एक आसन आठ

अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामलिंगात्मकासनम् । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामलिंगात्मकासनम् ॥१२९॥
अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामभद्रासनं हि वा । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामभद्रासनं शुभम् ॥१३०॥
बहून्यन्यानि शतशः संति लघ्वासनानि हि । तेषां मध्यादेकमेवासनं संस्थाप्य चित्रितम् ॥१३१॥
पीठोपरि कृतं वस्त्रं पत्रादिष्वपि वा कृतम् । आसनोपरि जानक्या राघवादीन्निवेशयेत् ॥१३२॥
आसने सर्वतोभद्रमध्ये पद्मोपरि न्यसेत् । सीतया राघवं रम्यं वरसिंहासने स्थितम् ॥१३३॥
रामस्य पृष्ठभागे च लक्ष्मणं स्थापयेत्ततः । रामस्य दक्षिणे पार्श्वे भरतं विन्यसेच्छुभम् ॥१३४॥
रामस्य वामपार्श्वे हि शत्रुघ्नं विन्यसेच्छुभम् । पुरतो रामचन्द्रस्य वायुपुत्रं तु विन्यसेत् ॥१३५॥
रामस्य वायुदिग्भागे सुग्रीवं स्थापयेत्ततः । ईशान्यां रामचन्द्रस्य विन्यस्य च विभीषणत् १३६॥
रामस्य वह्निदिग्भागे विन्यसेदं मदं ततः । नैर्ऋत्यां रामचंद्रस्य जांबवंतं तु विन्यसेत् ॥१३७॥
पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राग्दिग्ज्ञेयाऽर्चने त्विह । सर्वशास्त्रेष्वेवमेव निर्णयः कथ्यते बुधैः ॥१३८॥
लक्ष्मणस्य करे देयं छत्रं मुक्ताविराजितम् । भरतस्य करे देयं चामरं रुक्ममण्डितम् ॥१३९॥
शत्रुघ्नस्य करे देयं व्यजनं चित्रितं शुभम् । हनूमतः करे देयं रामस्य पादुकाद्वयम् ॥१४०॥
सुग्रीवस्य करे देयं जलपात्रं मनोहरम् । करे विभीषणस्यापि देयं मुकुटमुत्तमम् ॥१४१॥
देयं तांबूलपात्रं च बालिनन्दनसत्करे । जांबवतः करे देयो वस्त्रकोशो महत्तमः । १४२॥
नवायतनमेवं हि स्थापयेद्राघवस्य च । अथवा पञ्चायतनं स्थापयेदासनोपरि ॥१४३॥
सीतया रामचन्द्रं च मध्ये पृष्ठे तु लक्ष्मणम् । भरतं सव्यपार्श्वे च शत्रुघ्नं वामपार्श्वके ॥१४४॥
पुरतो वायुपुत्रं च पूर्वोक्तैरुपचारकैः । एवं संस्थापयेद्भक्त्या रामं भद्रासनोपरि ॥१४५॥
अथवा सीतया रामं मध्ये स्थाप्य ततः परम् । रामस्य पृष्ठे सौमित्रिं रामाग्रे वायुनन्दनम् ॥१४६॥
स्थाप्यैवं पूजयेद्भक्त्या रामं धृतशरासनम् । अथवा सीतया रामं लक्ष्मणं परिपूजयेत् ॥१४७॥

सौ रामके नामसे अङ्कित करके बनाया जाता है । एक हजार आठ नामोंसे अङ्कित करके एक श्रीराम-भद्रासन बनता है । दूसरा एक सौ आठ नामोंसे अङ्कित करके श्रीरामभद्रासन बनता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥ इसी तरह बहुतसे और भी छोटे-छोटे आसन बनते हैं । उनमेंसे रंगकर कोई एक आसन बनाये ॥ १३१ ॥ इस आसनकी रचना वस्त्र बिछाकर पीढ़ेपर करे । उसके ऊपर जानकी तथा राम आदिको बैठाये ॥ १३२ ॥ सर्वतोभद्रके मध्यमें बने हुए कमलके ऊपर पहले एक सुन्दर सिंहासनपर राम तथा सीताको बिठाले ॥ १३३ ॥ रामके पीछे लक्ष्मणको स्थापित करे । रामके दाहिने बगल भरतको स्थापित करे और रामके पार्श्वमें शत्रुघ्नको बिठाले । रामचन्द्रजीके आगे हनुमानजीकी स्थापना करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ रामके वायव्य कोणमें सुग्रीवकी स्थापना करे । ईशानकोणमें विभीषणको स्थापित करके अग्निकोणमें अङ्गदको तथा नैर्ऋत्यकोणमें जाम्बवान्-की स्थापना करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ पूज्य और पूजक इन दोनोंके लिए प्राची दिशा ही पूजन करनेमें श्रेष्ठ है । पण्डितोंका कहना है कि समस्त शास्त्रोंमें इसी प्रकारका निर्णय किया गया है ॥ १३८ ॥ लक्ष्मणके हाथमें मोतियोंसे सुसज्जित छत्र दे । भरतके हाथसे सुवर्णसे मण्डित चमर दे ॥ १३९ ॥ शत्रुघ्नके हाथमें चित्रित व्यजन (पंखा) दे और हनुमान्‌जीके हाथमें रामकी दोनों पादुकाएँ दे ॥ १४० ॥ सुग्रीवके हाथमें मनोहर जल-पात्र और विभीषणके हाथमें उत्तम शीशा दे ॥ १४१ ॥ अङ्गदके हाथमें सुन्दर ताम्बूलपात्र दे, जाम्बवान्‌के हाथमें कपड़ोंकी पेटी दे । इस तरह श्रीरामचन्द्रजीके नवायतनकी स्थापना करे ॥१४२॥१४३॥ मध्यभागमें सीताके साथ रामचन्द्रजीको बिठाले, पीछे लक्ष्मणको, दाहिने बगल भरतको, बायें बगल शत्रुघ्नको तथा सामने हनुमान्‌जी-को पूर्वोक्त उपचारोंके साथ बिठाले । इस तरह सुन्दर आसनपर रामकी स्थापना करे । इसे ही रामपञ्चायतन कहते हैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ अथवा सीताके साथ-साथ रामको मध्यमें बिठालकर रामके पीछे लक्ष्मण और आगे हनुमान्‌जीकी स्थापना करके धनुर्धारी रामका पूजन करे । अथवा सीताके साथ राम और लक्ष्मणकी पूजा

सीतानुजौ विना पूजा रामस्यैकस्य नाचरेत् । कृता चेद्विघ्नकर्त्री सा भवेदत्र न संशयः ॥१४८॥
नवायतनपूजा सा श्रेष्ठा ज्ञेया शुभप्रदा । या पञ्चायतनी पूजा ज्ञेया सा मध्यमाऽत्र हि ॥१४९॥
त्रिदैवत्या तु या पूजा कनिष्ठा सा निगद्यते । अतिकनिष्ठा पूजा सा द्विदैवत्या स्मृता हि सा ॥१५०॥
कोदण्डं वामहस्ते च तूणीरं वामपार्श्वके । निजनामाङ्कितं बाणं दधानं दक्षिणे करे ॥१५१॥
एवं श्रीराघवं स्थाप्य ततः पूजां समारभेत् । आत्मनो वामभागे च जलकुम्भं निधाय हि ॥१५२॥
आत्मनो दक्षिणे भागे पूजापात्रं निवेशयेत् । आत्मनः पुरतः पात्रं स्थापयेद्विस्तृतं वरम् ॥१५३॥
प्राङ्मुखः सुखमासीनो धृतपद्मासनः शुचिः । मौनी धृताक्षतुलसीमालो निश्चलमानसः ॥१५४॥
बद्धग्रंथिशिखः शुद्धवस्त्रो धृतपवित्रकः । शुद्धद्वारावतीमृत्कृत्तिलको मुद्रिकांकितः ॥१५५॥
नत्वादौ गणराजं च तिथिवारादि कीर्तयेत् ।
भूमिशुद्धिं भूतशुद्धिं न्यासौ कृत्वा यथाक्रमम् । प्रोक्षणीपात्रमेकं तु जलपूर्णं प्रकारयेत् ॥१५६॥
दूर्वागन्धाक्षतपुष्पैस्तत्पात्रं परिपूरयेत् । प्रोक्षयेत्तेन नीरेण पूजाद्रव्यं सहात्मना ॥१५७॥
पाद्यार्घ्याचमनार्थं तु त्रीणि पात्राणि विन्यसेत् । गणराजं पूजयित्वा सम्पूज्य वरुणं ततः ॥१५८॥
पांचजन्यं पूजयित्वा प्रोक्षयेत्तज्जलैरपि । पूजाद्रव्यं पूर्ववच्च स्वात्मानं च भुवं तथा ॥१५९॥
धेनुशङ्खचक्रपक्षिराजमुद्राः प्रदर्शयेत् । शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥१६०॥
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । अथ ध्यायेद्रामचन्द्रं ससीतं पुरतः स्थितम् ॥१६१॥
द्विभुजं धृततूणीरं चापबाणधृतायुधम् । दिव्यालङ्कारसंयुक्तं पीतकौशेयवाससम् ॥१६२॥
सलक्ष्मणं सशत्रुघ्नं भरतेन समन्वितम् । हनुमत्सेवितपदं सिंहासनविराजितम् ॥१६३॥
सितछत्रसमायुक्तं दिव्यचामरवीजितम् । विभीषणसमायुक्तं सुग्रीवपरिवंदितम् ॥१६४॥

करे ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ सीता और लक्ष्मणके बिना अकेले रामकी पूजा कभी न करे । यदि ऐसी पूजा की जाती है तो वह प्रायः विघ्न करनेवाली ही हुआ करती है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १४८ ॥ नवायतनपूजा सर्वश्रेष्ठ और पञ्चायतन पूजा मध्यम होती है ॥ १४९ ॥ त्रिदेवकी पूजा कनिष्ठ कही गयी है । वह पूजा तो अत्यन्त कनिष्ठ होती है, जिसमें केवल दो देवताओंकी पूजा की जाती है ॥ १५० ॥ जिनके बायें हाथमें धनुष और बायें बगल तरकस है, अपने नामसे अङ्कित बाण दाहिने हाथमें है ॥ १५१ ॥ इस तरहके रामचन्द्रकी स्थापना करके पूजा प्रारम्भ करे । पूजा करते समय वामभागमें एक कलश भी अवश्य रख लेना चाहिए ॥ १५२ ॥ अपने दाहिने बगल पूजापात्र रखना चाहिए और आगे भी विस्तृत पात्र रखना उचित है ॥ १५३ ॥ उपासकको चाहिए कि आनन्दपूर्वक पूर्वकी ओर मुख करके पद्मासनसे बैठे और निश्चल मन करके तुलसीकी माला लिये, शिखामें ग्रन्थि दिये, हाथोंमें पवित्री तथा शरीरमें पवित्र वस्त्र धारण किये, द्वारकाकी शुद्ध मृत्तिकाका तिलक लगाकर ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ पहले गणेशजीको प्रणाम करे । फिर क्रमशः तिथि-वार आदिका उच्चारण करके भूमिशुद्धि, भूतशुद्धि तथा अंगन्यास-करन्यास करके प्रोक्षणीपात्रमें जल भरे । दूर्वा, गन्धाक्षत, पुष्प आदि उसमें डाले और प्रोक्षणीपात्रके जलसे पास रक्खी हुई पूजनसामग्रीका प्रोक्षण करे । पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनके लिये सामने तीन पात्र रक्खे । फिर गणेशजी, वरुण तथा पाञ्चजन्य शङ्खका पूजन करके उसके जलसे अपना, पूजन-सामग्री तथा पृथ्वीका प्रोक्षण करे ॥ १५६–१५९ ॥ इसके अनन्तर सुरभी, शंख, चक्र, गरुड एवं राममुद्राका प्रदर्शन करे । पत्थरकी, काष्ठकी, चूना-ईंटकी, रङ्गसे बनी, चित्रकारी की हुई, बालुकामयी, मानसी और मणिमयी ये आठ प्रकारकी प्रतिमाएँ होती हैं । ऊपर बतलायी क्रियायें कर लेनेके बाद उपासकको चाहिए कि सीताके साथ बैठे हुए इस प्रकारके रामका ध्यान करे–जिनके दो भुजाएँ हैं, जो तूणीर तथा धनुष-बाण आदि विविध प्रकारके शस्त्र धारण किये हैं, उनके शरीरमें दिव्य अलङ्कार पड़े हैं और वे पीला कौशेय वस्त्र धारण किये हैं ॥ १६०–१६२ ॥ लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न उनके साथ हैं, हनुमान्‌जी उनके चरणकी सेवा कर रहे हैं और राम उत्तम सिंहासनपर बैठे हैं ॥१६३॥ ऊपर सफेद छत्र लगा है, दिव्य चमर चल रहे हैं, विभीषण और सुग्रीव

जाम्बवता समायुक्तमङ्गदेन परिष्टुतम् । अयोध्यावासिनं राममेवं हृदि विचिंतयेत् ॥१६५॥
सीताराम समागच्छ मदग्रे त्वं स्थिरो भव । गृहाण पूजां मद्दत्तां कृतमावाहनं तव ॥१६६॥
हिरण्मयं रत्नयुक्तं नानाचित्रविचित्रितम् । सिंहासनं सवस्त्रं च ह्यासनार्थं ददामि ते ॥१६७॥
चन्दनागुरुसंयुक्तैर्जलैस्तीर्थसमुद्भवैः । पाद्यं गृहाण श्रीराम मया दत्तं प्रसीद मे ॥१६८॥
पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गादिषु सरित्सु च । यत्तोयं तन्मयाऽऽनीतं दत्तमर्घ्यं गृहाण भोः । १६९ ।
सुगन्धवासितं तोयं बहुतीर्थसमुद्भवम् । आचमनार्थमानीतं गृहाण त्वं सुरेश्वर ॥१७०॥
हरिद्राकुंकुमैर्युक्तं सुगन्धद्रव्यमिश्रितम् । सुगन्धस्नेहसंमिश्रमुद्वर्त्तनमथास्तु ते ॥१७१॥
कामधेनूद्भवं क्षीरं नन्दिन्या दधि सुन्दरम् । कपिलाया घृतं श्रेष्ठं मधु विंध्याद्रिसंभवम् ॥१७२॥
सितोपलसमानाम सितायुक्तं मनोहरम् । पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं स्नानार्थं त्वं गृहाण भोः ॥१७३॥
गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती । नर्मदा सिंधुकावेरी सरयू गण्डकी तथा ॥१७४॥
ताम्रपर्णी भीमरथी कृष्णा वेणी महानदी । गोमती सागराः सप्त पयोष्णी भवनाशिनी ॥१७५॥
पूर्णा तापी तुङ्गभद्रा क्षिप्रा वेगवती तथा । पिनाकी प्रवरा सिन्धुफेणा सार्द्धत्रयो नदाः । १७६॥
घृतमाला कृतमाला मही निक्षेपिका तथा । पयोष्णी प्रेमगङ्गा च चित्रगङ्गा करानदी ॥१७७॥
नीरा चर्मण्वती वृद्धा बंजरा च पुनः पुनः । सिंधुक्षीरा च वैकुण्ठाऽलकनन्दा च वारणा ॥१७८॥
इत्यादिसर्वतीर्थेषु यत्तोयं वर्तते शुभम् । तन्मयाऽऽनीममद्यात्र स्नानं कुरु रघूत्तम ॥१७९॥
पुनराचमनं रम्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् । गृहाण रघुनाथ त्वं दीयते यन्मया तव ॥१८०॥
सुवर्णतन्तुभिश्चित्रं पीतकौशेयसंभवम् । वस्त्रयुग्मं प्रदास्यामि गृहाण रघुनायक ॥१८१॥
शुद्धं हेममयं रम्यं नवतन्तुसमुद्भवम् । ब्रह्मग्रन्थिसमायुक्तं ब्रह्मसूत्रं प्रगृह्यताम् ॥१८२॥

आगे खड़े बन्दना कर रहे हैं ॥ १६४ ॥ जाम्बवान्‌के साथ-साथ अङ्गदजी खड़े स्तुति कर रहे हैं। इस प्रकार अयोध्यावासी रामका मनमें ध्यान करे ॥ १६५ ॥ और कहे–हे सीताराम ! आप मेरे सामने आकर बैठिए। मैं आपका पूजन करूँगा। मैं आपका आवाहन करता हूँ। आप आइए और मेरी पूजा स्वीकार करिए ॥ १६६ ॥ सुवर्णका बना हुआ तथा रत्नखचित होनेसे चित्र-विचित्र मालूम पड़नेवाला और सुन्दर वस्त्रसे वेष्टित सिंहासन मैं आपको बैठनेके लिए देता हूँ ॥ १६७ ॥ चन्दन और पुष्पसे मिले हुए तीर्थोंके जलका पाद्य बनाकर आपको देता हूँ। इसे आप स्वीकार करें और मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १६८ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियों-से लाये जलका अर्घ्य बनाकर मैं आपको देता हूँ, इसे स्वीकार करिए ॥ १६९ ॥ सुगन्धसे वासित एवं कितने ही तीर्थोंसे लाया हुआ जल मैं आपको आचमनके लिए देता हूँ। हे सुरेश्वर ! इसे आप ग्रहण कीजिए ॥ १७० ॥ हल्दी-कुमकुम और बहुतसे सुगन्धद्रव्योंसे मिश्रित तथा सुगन्धमय तेल आदिसे मिला हुआ जल मैं आपको स्नान करनेके लिये देता हूँ ॥ १७१ ॥ कामधेनुका दूध, नन्दिनी गौका दही, कपिला गौका घृत, विन्ध्य-पर्वतसे उत्पन्न उत्तम मधु, ॥ १७२ ॥ सफेद पत्थरके समान चमकती हुई चीनीसे मिला पंचामृत मैं आपको स्नान करनेके लिए देता हूँ। इसे आप ग्रहण करिए ॥ १७३ ॥ गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, सरयू, गण्डकी, ताम्रपर्णी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, महानदी, गोमती, सातों सागर, भवनाशिनी, पयोष्णी, पूर्णा, तापी, तुङ्गभद्रा, क्षिप्रा, वेगवती, पिनाकी, प्रवरा, सिन्धुफेणा, साढ़े तीन नद, घृतमाला, कृतमाला, मही, निःक्षेपिका, पयोष्णी, प्रेमगङ्गा, चित्रगङ्गा, करानदी, नीरा, चर्मण्वती, वृद्धा, बञ्जरा, सिन्धुक्षीरा, वैकुण्ठा, अलकनन्दा, वारणा इत्यादि ॥ १७४–१७८ ॥ नदियोंमें जो पवित्र जल विद्यमान है, वह मैं आज यहाँ ले आया हूँ। हे रघूत्तम ! आप इसीसे स्नान कीजिए ॥ १७९ ॥ सब तीर्थोंका पवित्र जल मैं आपको पुनराचमनके लिये दे रहा हूँ। इसे आप ग्रहण कीजिए ॥१८०॥ सुवर्णके सूत्रोंसे बना तथा चित्र-विचित्र दीखनेवाला पीत कौशेय वस्त्र मैं आपको दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करिये ॥ १८१ ॥ शुद्ध, सुवर्णमय,

मुकुटं कुण्डले रम्ये मुद्रिकाः कङ्कणे तथा । नूपुरे रशनामालाः केयूरे रत्नमण्डिते ॥१८३॥
इत्यादीन्परमान् दिव्यान्स्वर्णमाणिक्यनिर्मितान् । त्वदर्थं च मयानीतानलंकारान् गृहाण भोः ॥१८४॥
छत्रं सव्यजनं रम्यं चामरद्वयसंयुतम् । त्वदर्थं च मयाऽऽनीत गृह्णीष्व रिपुसूदन ॥१८५॥
सुगंधं चंदनं दिव्यं कृष्णागुरुविमिश्रितम् । रक्तचंदनसंयुक्तं गृह्णीष्व त्वं मयाऽर्पितम् ॥१८६॥
अक्षतांश्च वरान् दिव्यान्मुक्ताफलविनिर्मितान् । कस्तूर्या कुंकुमेनाक्तान् गृहाण परमेश्वर ॥१८७॥
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो । मयाऽऽहृतानि पूजार्थं गृहाण रघुनायक ॥१८८॥
वनस्पतिरसोद्भूतं गन्धाढ्यं गन्धमुत्तमम् । आघ्रेयं सर्वदेवानां धूपं गृह्णीष्व राघव ॥१८९॥
साज्यं त्रिवर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । दीपं गृहाण भो राम त्रैलोक्यतिमिरापह ॥१९०॥
भक्ष्यभक्तेन संयुक्तं सपायसघृतान्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥१९१॥
आम्रादीनि सुपक्वानि फलानि विविधानि च । समर्पितानि ते राम गृह्णीष्व रघुनन्दन ॥१९२॥
पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् । जातीचतुष्टययुतं तांबूलं स्वीकुरु प्रभो ॥१९३॥
हिरण्यं ब्रह्मसंभूतं वह्नितेजःसमुद्भवम् । दीयते दक्षिणार्थं ते गृह्णीष्व रघुनंदन ॥१९४॥

एवं मया षोडशकोपचाराः सविस्तरं ते कथिताः शिशोऽत्र ।
आवाहनाद्याश्च हि दक्षिणांताः शेषां च पूजां सकलां हि वक्ष्ये ॥१९५॥

पंचवर्तिसमायुक्तं कपिलाऽऽज्यविमिश्रितम् । वह्निना योजितं रम्यं गृह्णीष्व त्वं निराजनम् ॥१९६॥
जाती चंपकमन्दारौ केतकी तुलसी तथा । दमनो मुनिकुन्दे च ह्यनंतं त्विति वै नव ॥१९७॥
एभिर्नवविधैः पुष्पैर्मन्त्रपुष्पाणि राघव । मयाऽर्पितानि गृह्णीष्व प्रसीद परमेश्वर ॥१९८॥
यानि कानि च पापानि जन्मांतरकृतानि च । तानि सर्वाणि नश्यतु प्रदक्षिणं पदे पदे ॥१९९॥

रम्य, नवीन सूत्रसे बना तथा ब्रह्मग्रन्थियुक्त ब्रह्मसूत्र मैं आपको देता हूं। इसे आप स्वीकार करिये ॥ १८२ ॥ मुकुट, रम्य कुण्डल, मुद्रिका, कंकण, नुपूर, स्वर्णनिर्मित जंजीरकी माला, रत्नमण्डित केयूर इत्यादि परम रम्य, दिव्य, स्वर्ण और माणिक्यसे बने अलंकार मैं आपके लिए लाया हूं। इन्हें आप ग्रहण करिए ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ व्यजन और चमर संयुक्त छत्र मैं आपके लिए लाया हूं। हे रिपुसूदन ! इसे आप स्वीकार करिए ॥ १८५ ॥ सुन्दर, गन्धयुक्त, दिव्य, कृष्ण अगुरुमिश्रित तथा लाल चन्दन मिला चन्दन मैं आपके लिए लाया हूं, सो आप ग्रहण कीजिए ॥ १८६ ॥ मोतीके टुकड़ोंसे बनाया हुआ कस्तूरी और कुमकुममिश्रित अक्षत मैं आपको समर्पण करता हूं, इसे आप ग्रहण करें ॥ १८७ ॥ मालती आदि सुगन्धित फूलोंसे बनी माला मैं आपको पूजाके निमित्त लाया हूं, हे रघुनायक ! इसे आप ग्रहण कीजिए ॥ १८८ ॥ वनस्पतिके रससे उत्पन्न, गन्धयुक्त, उत्तम सुगन्धवाला और सब देवताओंके सूंघने योग्य धूप आपके लिए लाया हूं, इसे ग्रहण कीजिए ॥ १८९ ॥ घीसे भीगी तीन बत्तियोंवाले दीपकको लाया हूं। हे तीनों लोकोंका अन्धकार दूर करनेवाले राम ! इसे आप ग्रहण करिए ॥ १९० ॥ खाने योग्य अन्न, दूध घी, चीनी तथा मधुमिश्रित नैवेद्य मैं आपको अर्पण करता हूं, इसे ग्रहण करिए ॥ १९१ ॥ आम्र आदि खूब पके अच्छे-अच्छे फल मैं आपको अर्पण करता हूं, इसे ग्रहण करें ॥ १९२ ॥ सुपाड़ी युक्त पानके पत्तोंसे जोड़ा हुआ और अनेक मसालोंसे युक्त ताम्बूल आप ग्रहण करें ॥ १९३ ॥ हे रघुनन्दन ! ब्रह्मसे उत्पन्न तथा अग्निके तेजसे जायमान सुवर्ण मैं दक्षिणाके लिए आपको देता हूं, उसे आप स्वीकार करें ॥ १९४ ॥ हे वत्स ! इस तरह मैंने विस्तारपूर्वक आवाहनसे दक्षिणा तकके षोडश उपचारोंको कह सुनाया। शेष पूजाविधि आगे बतलाता हूं ॥ १९५ ॥ पाँच बत्तियोंसे युक्त, कपिला गौके घृतसे मिश्रित एवं अग्निसे संयोजित रम्य नीराजन मैं आपको अर्पण करता हूं, सो स्वीकार करिए ॥ १९६ ॥ जूंही, चम्पा, मन्दार, केतकी, तुलसी, दमनक, अनन्त और दो प्रकारके मुनिकुन्द इन नौ फूलोंका मन्त्रपुष्प मैं आपको देता हूं। हे परमेश्वर ! इसे स्वीकार करिए और मेरेपर प्रसन्न होइए ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ जन्मान्तरमें भी मैंने जिन किन्हीं पापोंको किया हो, वे नष्ट हो जायें।

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा ।पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां साष्टांगश्च नमोस्तुते२००॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥२०१ ।
मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं रघूत्तम । यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२०२॥
एवं श्रीरामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं प्रपूजनम् । निरंतरं तथा कार्यं नवम्यां च विशेषतः ॥२०३॥

विष्णुदास उवाच

गुरो नवविधैः पुष्पैस्त्वया पुष्पांजलिः कथम् । निवेदितोऽत्र रामस्य पूजने तद्वदस्व माम् ॥२०४॥
त्वत्तो नानाविधाः पूजाः सुराणां च मया श्रुताः । पूर्वं तासु श्रुतो नैव नवपुष्पांजलिः कदा ॥२०५॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । आसीत्पुरा द्विजवरः कावेर्य्या उत्तरे तटे ॥२०६॥
रामनाथपुरे कश्चित्सुन्दराख्योऽतिभक्तिमान् । तस्यासन्नव पुत्राश्च रामचिंतनतत्परः ॥२०७॥
चन्द्रोऽतिचन्द्रश्चन्द्राभश्चन्द्रास्यश्चंद्रशेखरः । चन्द्रांशुर्जितचन्द्रश्च चन्द्रचूडोऽष्टमः स्मृतः ॥२०८॥
रामचन्द्रश्चेति नव गृहाभाश्च नव स्मृताः । एकदा ते त्वयोध्यायां रामं भक्तकृपाकरम् ॥२०९॥
प्रष्टुं ययुश्चैत्रमासे तस्थुस्ते सरयूतटे । तावत्तत्र समायाता नानादेशांतरस्थिताः ॥२१०॥
जनौघानां कोटयश्च नानावाहनसंस्थिताः । सरय्वां रामतीर्थे हि चैत्रस्नानमादरात् ॥२११॥
तेषां समागतानां हि संमर्दस्तत्र वै ह्यभूत् । संमर्दाद्रामचन्द्रस्य तेषां नाभूच्च दर्शनम् ॥२१२॥
तदा ते मंत्रयामासुर्नव विप्राः परस्परम् । कथं श्रीरावस्यात्र संमर्दे दर्शनं भवेत् ॥२१३॥
चेज्जातं त्वतियत्नेन तर्हि तत्किं न दर्शनम् । यावत्स्वस्थेन मनसा राघवो न निरीक्षितः ॥२१४॥
तावत्तद्दर्शनं नैव तुष्टिं नो जनयिष्यति । तदा चन्द्रोऽब्रवीज्ज्येष्ठस्त्वत्रैव रामदर्शनम् ॥२१५॥

एक-एक पग चलकर मैं आपकी प्रदक्षिणा करता हूँ ॥ १९९ ॥ हृदयसे, मस्तकसे, दृष्टिसे, मनसे, वचनसे, हाथोंसे, पैरोंसे और घुटनोंसे मैं साष्टांग प्रमाण करता हूँ ॥ २०० ॥ हे परमेश्वर ! न मैं आवाहन करना जानता हूँ, न विसर्जन करना आता है । पूजन करना भी मैं नहीं जानता । यदि कुछ भ्रम हुआ हो तो आप क्षमा कर ॥ २०१ ॥ हे रघूत्तम ! मंत्रसे, क्रियासे और भक्तिसे हीन मैंने जो कुछ पूजा की है, हे देव ! वह सब परिपूर्ण हो जाय ॥ २०२ ॥ इस तरह निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए और नवमीको विशेष करके ऐसा करना उचित है ॥ २०३ ॥ विष्णुदासने कहा-हे गुरो ! इस पूजनके प्रसङ्गमें आपने नौ प्रकारके फूलोंसे पुष्पाञ्जलि देनेकी विधि क्यों बतलायी है ? सो आप हमसे कहिये ॥ २०४ ॥ अबतक आपने मुझे बहुतसे देवताओंका विविध पूजन बताया, किन्तु उनमें नवपुष्पाञ्जलि आपने कहीं नहीं बतलायी ॥ २०५ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सो सावधान मन होकर सुनो । बहुत दिनोंकी बात है, कावेरी नदीके उत्तर तटपर रामनाथपुरमें अति भक्तिमान् सुन्दर नामका एक ब्राह्मण रहता था । वह रामका ध्यान करता था । रामका ध्यान करनेवाले उस भक्तके नौ बेटे थे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ चन्द्र, अतिचन्द्र, चन्द्राभ, चन्द्रास्य, चन्द्रशेखर, चन्द्रांशु, जितचन्द्र, चन्द्रचूड़ और गृहाभ रामचन्द्र ये उन लड़कोंके नाम थे । एक बार चैत्रके महीनेमें वे नवों लड़के भगवान् रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिये अयोध्या गये । वहाँ पहुँचकर वे सरयूके तटपर पहुँचे । तब तक अनेक देशोंके रहनेवाले करोड़ों मनुष्य चैत्रमास-स्नानके लिये अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ़कर वहाँ आ पहुँचे ॥ २०८-२११ ॥ उन आये हुए लोगोंकी भारी भीड़के कारण वे नवों ब्राह्मणकुमार रामचन्द्रजीका दर्शन नहीं पा सके ॥ २१२ ॥ उस समय उन्होंने परस्पर मंत्रणा की कि इस प्रकारकी भीड़में रामचन्द्रजीका दर्शन कैसे हो ॥२१३॥ बहुत प्रयत्न करनेपर यदि थोड़ा-सा दर्शन हो भी जाय तो जबतक अच्छी तरह उन्हें न देख सकूँ तो दर्शनसे लाभ ही क्या ? ॥ २१४ ॥ उस क्षणिक दर्शनसे हमें सन्तोष नहीं होगा । उनमेंसे ज्येष्ठ भ्राता चन्द्र बोला कि हमलोग तीव्र तपस्या करके यहाँ ही रामचन्द्रजीका

वयं तीव्रेण तपसा प्राप्स्यामस्तप्यतां तपः । तच्चन्द्रवचनं श्रुत्वा पुनः प्रोचुर्द्विजोत्तमाः ॥२१६॥
एककाले तु सर्वेषां तपतामन्तरेण हि । कस्यादौ रामचन्द्रश्च दास्यत्यत्र प्रदर्शनम् ॥२१७॥
कस्य दास्यति पश्चाच्च विदितं तद्भविष्यति । कस्यास्मासु दृढा भक्तिर्विदिता सा भविष्यति ॥२१८॥
एवं परस्परं चोक्त्वा ते सर्वे द्विजसूनवः । त्यक्ताहारा वायुभक्षाश्चैकांते तत्परेण हि ॥२१९॥
गत्वाऽतिदूरं संमर्दात्तेपुः सर्वे तपो महत् । तत्सर्वं राघवो ज्ञात्वा सर्वसाक्षी जगत्प्रभुः ॥२२०॥
तेषां स्वदर्शनं दातुं नवमे दिवसे मुदा । मंत्रायामास श्रीरामः क्षणं चित्ते समास्थितः ॥२२१॥
एककाले तु सर्वेषां यदि दास्यामि दर्शनम् । तर्ह्येव तुष्टिः सर्वेषां भविष्यति न चेन्नहि ॥२२२॥
अतोऽद्याहं करिष्यामि नव रूपाणि निश्चयात् । एवं संमंत्र्य श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥२२३॥
शिबिकामानयस्वाद्य बहिर्गच्छाम्यहं मुदा । तथेति रामवाक्येन शिबिकां लक्ष्मणस्तथा ॥१२४॥
आनयामास दूतैः स राघवाय न्यवेदयत् । तदा सिंहासनाद्रामश्चोत्तीर्य शिबिकास्थितः ॥२२४॥
बन्धुभिर्मंत्रिवर्यैश्च सुहृन्मित्रादिभिर्युतः । बहिः शनैरयोध्याया ययौ रामो मुदान्वितः ॥२२६॥
ततस्तं जनसंमर्दं समतिक्रम्य राघवः । चकार नव रूपाणि ह्यात्मनः परमेश्वरः ॥२२७॥
शिबिकाः सुहृदो भ्रातन्दूतान्मित्रान्सवाहनान् । चकार नवधा रामस्तदा स क्षणमात्रतः ॥२२८॥
निरीक्षितुं समायाता नात्मानं तान् जनानपि । चकार नवधा रामस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२२९॥
ततस्तैस्तैर्जनैर्मित्रैर्दूतैर्बन्धुजनैः सह । नवानां भूसुराणां हि ययावग्रे रघूत्तमः ॥२३०॥
ततस्ते भूसुराः सर्वे तदैकसमये प्रभुम् । आत्मनः पुरतो रामं ददृशुस्तं पृथक् पृथक् ॥२३१॥
तत्तुष्टमनसः सर्वे प्रणेमू रघुनन्दनम् । शिबिकाभ्यस्ततो रामस्त्ववरुह्य पृथक् पृथक् ॥२३२॥
नवरूपधराः सर्वान्विप्रानालिंग्य सादरम् । ऊचुर्मधुरया वाचा प्रसन्नमुखपङ्कजाः ॥२३३॥

दर्शन पा लेंगे। चन्द्रकी इस रायको सुनकर वे सब बोल उठे कि यदि हम सब भाई एक साथ तपस्या करने लग जायँ तो रामचन्द्रजी किसको पहले दर्शन देंगे ॥ २१५-२१७ ॥ और किसको सबसे पीछे ? इससे यह बात भी ज्ञात हो जायगी कि हममेंसे किसकी भक्ति दृढ़ है ॥ २१८ ॥ इस तरह परस्पर बातचीत करके वे सब ब्राह्मणबालक उस भीड़से दूर जा बैठे और भोजन त्यागकर केवल जल पीते हुए एकाग्र मनसे तपस्या करने लगे। सारे संसारके साक्षी तथा निखिल जगत्के प्रभु रामचन्द्रसे यह बात छिपी नहीं रही ॥ २१९ ॥ २२० ॥ नवें दिन उन्होंने अपनी सभामें उनको दर्शन देनेके विषयमें मन्त्रणा की ॥ २२१ ॥ इसके बाद क्षण भर अपने मनमें विचार किया कि यदि उनको एक ही समयमें दर्शन न दूँगा तो वे सन्तुष्ट नहीं होंगे ॥ २२२ ॥ इस कारण आज मैं नौ रूप धारण करूँगा। ऐसा निश्चय करके उन्होंने लक्ष्मणसे आदरपूर्वक कहा—॥ २२३ ॥ हे लक्ष्मण ! पालकी मँगाओ। आज मैं बाहर घूमने जाऊँगा। बहुत अच्छा कह तथा दूतों द्वारा लक्ष्मणने पालकी मँगवाकर रामचन्द्रजीको इसकी खबर दी। तब सिंहासनसे उतरकर राम पालकीमें बैठे और भाईयों, मन्त्रियों, सम्बन्धियों तथा मित्रोंके साथ धीरे-धीरे अयोध्यासे बाहर निकले ॥ २२४-२२६ ॥ उस विशाल भीड़को पार करके रामचन्द्रने नौ रूप धारण किया ॥ २२७ ॥ क्षण भरके भीतर रामने पालकी, सम्बन्धी, सब भाई, दूत तथा वाहन समेत सब मित्रोंको नौ रूपमें परिणत कर दिया ॥ २२८ ॥ केवल अपने तथा अपने साथियों ही की उन्होंने नौ संख्या नहीं बनायी, बल्कि जो लोग वहाँ दर्शन करने आये थे, उनको भी उन्होंने नौ संख्यामें विभक्त कर दिया। यह एक विचित्र बात हुई ॥ २२९ ॥ इसके अनन्तर उन मनुष्यों, मित्रों, दूतों, बन्धुजनों तथा ब्राह्मणोंके आगे-आगे रामचन्द्रजी चलने लगे ॥ २३० ॥ फिर क्या था, उन नवों ब्राह्मणोंने एक ही समयमें प्रभुको अपने-अपने आगे खड़े देखा ॥ २३१ ॥ इससे प्रसन्न होकर उन्होंने रामको प्रणाम किया। इसके बाद वे नवों राम अपनी-अपनी पालकियोंसे उतरे और उन ब्राह्मणोंको गलेसे लगाया। फिर मीठी-मीठी वाणीमें उनसे बोले ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ उन्होंने कहा—हे ब्राह्मणों ! आप लोगोंने बड़ा कष्ट किया है।

भो विप्राः श्रमिता यूयं युष्माकं कृतनिश्चयम् । बुद्ध्वा वयं पृथक् रूपैर्जाताः स्मो नवधाऽद्य हि २३४॥
एकाकालेऽत्र तपतां सर्वेषां दर्शनं निजम् । कस्य देयं तु पूर्वं हि पश्चात्कस्य प्रदीयताम् ॥२३५॥
इति सम्मन्त्र्य हृदयेन त्वद्यैकसमयेन हि । युष्माकं दर्शनं दत्तं वरयध्वं वरानितः ॥२३६॥
रामाणां वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्भूसुरोत्तमाः । येनास्माकं भवेत्कीर्तिः स वरो दीयतां तु नः ॥२३७॥
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रामाः प्रोचुर्द्विजान्पुनः । युष्माकं दर्शनार्थं हि नवरूपधरा वयम् ॥२३८॥
अद्य जाता यतस्तस्माद्युष्माकं नामभिः सदा । नव रामाः परा ख्यातिं गमिष्यन्त्यवनीतले ॥२३९॥
अस्माकं नव यत्किंचित्तत्प्रियं हि भविष्यति । ते तेषां तु रामाणां वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥२४०॥
सन्तुष्टस्ते नता नेमुः स्वं स्वं रामं मुहुर्मुहुः । तदा सर्वे जना रामान् लक्ष्मणान् भरतादिकान्॥२४१॥
आत्मानं नवधा जातान्दृष्ट्वा विस्मयमागताः । ततो रामाः शिबिकासु स्थित्वा पृष्ट्वा द्विजोत्तमान्२४२॥
परावृत्य ययुः सर्वे मार्गे त्वेकोऽभवत्पुनः । सर्वे जातास्त्वेकरूपास्तथा ते विस्मयं ययुः ॥२४३॥
ततो रामो बन्धुभिश्च पूर्ववन्नगरीं ययौ । गत्वा गेहे तु सीतायै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥२४४॥
अतस्ते नव विप्राणां नामभिर्जगतीतले । ख्यातिं रामा ययुस्तत्र नव यद्यच्च तत्प्रियम् ॥२४५॥
यथार्का द्वादश प्रोक्ता एकविंशद्गणाधिपाः । रुद्रा एकादश प्रोक्ता यथाष्ट भैरवाः स्मृताः ॥२४६॥
नव दुर्गा यथा त्वत्र तथा रामा नव स्मृताः । प्रियं द्वादश सूर्याय एकादश शिवप्रियम् ॥२४७॥
एकविंशत्प्रियं यद्वद्गणेशाय महात्मने । प्रियमष्ट भैरवाय दुर्गायै तु नव प्रियम् ॥२४८॥
यथा यथाऽत्र रामाय नव शिष्य प्रियं सदा । तस्मान्नवविधैः पुष्पैरञ्जलिस्तत्प्रियो मतः ॥२४९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे रामपूजाद्वयविस्तारो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

आपके कष्टको देखकर ही मैं अलग-अलग रूप धारण करके एक ही समयमें सबके समक्ष आया हूँ ॥ २३४ ॥ मैंने अपने मनमें सोचा कि ये सब भाई एक साथ एक ही समयमें तपस्या करने बैठे हैं। ऐसी अवस्थामें मैं किसे पहले दर्शन दूँ और किसे पीछे ॥ २३५ ॥ यह विचारकर मैंने आज एक ही समय तुम लोगोंको दर्शन दिया है। अब अपने इच्छानुसार वर भी माँग लो ॥ २३६ ॥ उनकी वाणी सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—हे प्रभो! जिससे संसारमें हमारी कीर्ति हो, हमें आप वही वरदान दीजिये ॥ २३७ ॥ इस तरह उनकी बात सुनकर रामने उन ब्राह्मणोंसे कहा कि आप लोगोंको दर्शन देनेके लिये मैंने नौ रूप धारण किया है। अतएव आप लोगोंके नामसे ही मैं नौ रामके नामसे विख्यात होऊँगा ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ जो कोई भी नौ चीजें मुझे देगा, वे हमें अतिशय प्रिय होंगी। इस तरह उनकी बात सुनकर प्रसन्न मनसे उन ब्राह्मणोंने बार-बार रामको प्रणाम किया। उधर रामके साथवाले लक्ष्मण भरत आदि लोग अपनेको नौ संख्यामें देखकर बड़े चकराये। सदनन्तर वे सब राम पालकियोंमें बैठे और उन ब्राह्मणोंसे पूछकर अयोध्याके लिये लौट पड़े ॥ २४०–२४२ ॥ रास्तेमें रामने उन नवों रामोंका रूप समेट लिया और फिर ज्योंके त्यों एक राम हो गये। यह घटना देखकर भी लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४३ ॥ इस तरह राम अपने बान्धवोंके साथ नगरीको गये। घर पहुँचकर उन्होंने सीताको उस दिनका सारा समाचार कह सुनाया ॥२४४॥ हे शिष्य! इसी कारण राम उन नौ नामोंसे विख्यात हुए और जो-जो चीजें नौ संख्याकी दी जाती हैं, वे उन्हें विशेष प्रिय हुआ करती हैं ॥ २४५ ॥ जैसे बारह आदित्य माने गये हैं, इक्कीस गणेशजी, ग्यारह रुद्र, आठ भैरव तथा नौ दुर्गायें मानी गयी हैं, उसी तरह राम भी नौ माने जाते हैं ॥ २४६ ॥ बारह संख्याकी चीजें सूर्यको, एकादशसंख्यक रुद्रको, इक्कीस गणेशजीको, आठ भैरवको और नौ वस्तुयें दुर्गाको प्रिय होती हैं ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ इसी तरह जो चीजें नौ होंगी, रामको अत्यंत प्रिय हुआ करेंगी। इसीलिये नौ प्रकारके फूलोंसे अञ्जलीदानका विधान मैंने बतलाया है ॥ २४९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते मनोहरकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(लघुरामतोभद्रका विस्तार)

श्रीविष्णुदास उवाच

स्वामिंस्त्वया रामनाम्नामष्टोत्तरसहस्रकम् । भद्रमुक्तं तथा चाष्टोत्तरशतमनुत्तमम् ॥ १ ॥
रामनाम्नां भद्रमुक्तं रामचन्द्रप्रपूजने । तत्कीदृशे ते तु भद्रे लेखनीये मनोरमे ॥ २ ॥
ते मां विस्तरतो ब्रूहि यथाऽहं वेद्मि तत्त्वतः । तयोर्ये ये विशेषाश्च भद्रयोस्तेऽपि मां वद ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि भद्राणां रचनाः शुभाः । यथा पृष्टा त्वया मह्यं रामनाम्नां मनोरमाः ॥ ४ ॥
अष्टोत्तरशतं रामलिंगतोभद्रमुत्तमम् । आदौ मया विस्तरेण कथ्यते तन्निशामय ॥ ५ ॥
अत्रोपास्या राममुद्रा रुद्रश्चोपासकः स्मृतः । श्रीरामलिंगतोभद्रमत एवोच्यते बुधैः ॥ ६ ॥
तिर्यगूर्ध्वं तदा रेखा द्वे शते रेखयाऽधिके । तत्रादौ कृष्णपरिधिस्ततो रक्तः सितस्ततः ॥ ७ ॥
ततः पीतश्च परिधिः कोणेन्दुस्त्रिपदः स्मृतः । चन्द्राग्रे शृंखला कृष्णा स्मृता द्वादशपादिका ॥ ८ ॥
हरिता च ततो वल्ली त्रयोविंशत्पदात्मिका । ततः पीता शृंखला च स्मृता द्वादशपादिका ॥ ९ ॥
विंशत्पादभवं भद्रं रक्तं वापी सिता ततः । त्रयोदशपदा ज्ञेया लिंगं षड्विंशपादजम् ॥१०॥
कृष्णश्चतुष्पदो मूर्द्धा नाभिर्युग्मपदः स्मृतः । मूलस्कंधौ षट्पदजौ पार्श्वे तुर्यपदात्मके ॥११॥
ततो रक्तश्च परिधिर्मर्यादाख्योऽर्कपादजः । ततो मुद्रा तुर्यतुर्यभूमिपादमिता स्मृता ॥१२॥
ततो मर्यादापरिधिर्लिङ्गमुद्राः पुनः पुनः । एवं हरा नव ज्ञेया मुद्राश्चाष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥१३॥
परिधयः षोडशैव ह्यन्ते लिंगोर्ध्ववार्श्वके । तिर्यग् भद्रं नवपदैः पीतं वा हरितं क्वचित् ॥१४॥
रक्तभद्रोर्ध्वतः शेषपादानि यानि संति हि । यथेच्छं चित्रवर्णैश्च शृंखलार्थे नियोजयेत् ॥१५॥

विष्णुदासने कहा—हे स्वामिन् ! आपने हमें रामनामका अष्टोत्तर सहस्रका भद्र (आसन) और अष्टोत्तरशत नामका भद्र रामचन्द्रकी पूजाके प्रसङ्गमें बतलाया है। उन भद्रोंको किस प्रकार बनाना चाहिए, यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए। जिससे कि मै ठीक तरहसे समझ सकूँ। उनको जो विशेषतायें हों सो भी हमें बतला दीजिए ॥ १-३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! उन भद्रोंकी रचनाका प्रकार जिस तरह तुमने पूछा है, सो मै पहले अष्टोत्तरशत रामलिंगतोभद्रका रचनाप्रकार विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसमें राममुद्रा उपास्य है और रुद्र उपासक हैं। इसी कारण लोग इसे रामलिंगतोभद्र कहते हैं ॥ ६ ॥ यह भद्र बनानेवालेको चाहिए कि सीधी और बेड़ी दो सौ रेखाएँ खींचे। उसमें पहलेकी परिधि काली, फिर लाल, फिर सफेद रक्खे ॥ ७ ॥ इसके बादकी परिधि पीली और फिर कोणमें त्रिपद चन्द्रका आकार बनाये। चन्द्रमाके आगे काले रङ्गकी ऐसी शृङ्खला बनाये, जिसमें द्वादश पाद (कोष्ठक) विद्यमान हों। फिर हरे रङ्गकी तेईस पादकी बल्ली बनावे। फिर द्वादश पादकी पीली शृङ्खला रक्खे ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर बीस पादका भद्र बनाये। तदनन्तर सफेद रङ्गकी वापीका निर्माण करे। जिसके तेईस पाद बने हों। फिर छब्बीस पादका लिंग बनाये। फिर चार पाद (कोष्ठक) का काले रङ्गसे मस्तक बनाये, फिर दो पादकी नाभि बनाये। उसके दो मूल स्कन्द छः-छः पादोंके बनाये और चार पादका पार्श्वभाग बनाये। फिर बारह पादकी मर्यादा बनाये, जो लाल रङ्गसे रङ्गी हो। फिर चार-चार पादोंकी मुद्रा बनाये। फिर मर्यादाकी परिधि एवं लिङ्गमुद्रा बनाये। इसी तरह नौ शिव एवं आठ मुद्रायें बनाये ॥ १०-१३ ॥ फिर लिंगके ऊपर और बगलमें सोलह परिधियोंकी रचना करे। फिर नौ पादोंसे कहीं पीले और कहीं हरे रङ्गके भद्र बनावे ॥ १४ ॥ रक्त भद्रके ऊपर जितने भी चरण हों, उनकी शृङ्खलाके लिए चित्र-

मध्यलिंगस्कंधयोश्च सिते नेत्रे स्मृते शुभे । पीते लिंगस्कंधयोश्च शृंखले त्रित्रिपादजे ॥१६॥
अधोमुखं हरोर्ध्वं च रक्तं भद्रं द्विषट्पदम् । तिर्यग्भद्रे तु हरिते स्मृतेऽष्टादशपादजे ॥१७॥
ततः पंक्तेरूर्ध्वभागे हरितः परिधिः स्मृतः । तत ऊर्ध्वं पीतवर्णः प्रोक्तश्च परिधिः शुभः ॥१८॥
एवं प्रोक्ता प्रथमेयं पंक्तिः सर्वत्र कारयेत् । द्वितीयाया विशेषं च वक्ष्यामि न पुरेरितम् ॥१९॥
सप्त मुद्रा हरा ह्यष्टौ परिधयश्चतुर्दश । भद्रं रक्तं षट्पदं च शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥२०॥
तृतीयायां ततः पंक्तौ मुद्राः पञ्च शिवा रसाः । परिधयो दश ज्ञेया भद्रं त्रिंशत्पदात्मकम् ॥२१॥
ततः पंक्तौ चतुर्थ्यां तु त्रीशा मुद्राचतुष्टयम् । परिधयोऽष्ट विज्ञेया भद्रं च नव वेदजम् ॥२२॥
हरित्पीतयोर्मध्ये हि लोहितः परिधिः स्मृतः । पञ्चमायां ततः पंक्तौ मुद्रैका शङ्करद्वयम् ॥२३॥
परिधयश्च चत्वारि भद्रं नवतिपादजम् । हरिद्रक्तपीतवर्णा परिधयश्च पूर्वतः ॥२४॥
षष्ठायां च ततः पंक्तौ मुद्रैका परिधिद्वयम् । नव वेदभवं भद्रं तिस्रः परिधयोऽपि च ॥२५॥
मध्येऽपि सर्वतोभद्रं वेदनेत्राग्निपादजम् । त्रिपदेंदुः शृंखलाश्च कृष्णाः पञ्चपदा मताः ॥२६॥
एकादशपदा वल्ली भद्रं नवपदात्मकम् । चतुर्विंशत्पदा वापी पीतश्च परिधिः स्मृतः ॥२७॥
पदेषु षोडशेष्वेव मध्ये पद्मं यथारुचि । कर्णिका पीतवर्णा च शेषं बुद्ध्या नियोजयेत् ॥२८॥
एतदष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं स्मृतम् । तत्र मुद्रास्वरूपं च वेदवेदेंदुभिः स्मृतम् ॥२९॥
राज्यकाण्डे उत्तरार्धस्य सर्गेऽष्टादशमे पुरा । उक्तं मुद्रास्वरूपं च तथाप्यत्र तु कथ्यते ॥३०॥
पंक्तयोऽर्कमितास्तत्र सर्वा द्वादशपादजाः । तासु पूर्वदिगारभ्य क्रमेणैव प्रपूरयेत् ॥३१॥
प्रथमा सप्तमी चोभे पंक्ती कृष्णे प्रपूरयेत् । ऊर्ध्वाधः पंच पंचैव पंक्तयस्तत्क्रमं ब्रुवे ॥३२॥
पंचपंक्तिषु चोर्ध्वं हि प्रथमायाः प्रपूरयेत् । प्रथमं चेशदिग्जं च कृष्णवर्णं न चापरम् ॥३३॥

विचित्र वर्णोंका बनाये ॥ १५ ॥ मध्यलिंगके दोनों कन्धोंपर सफेद रङ्गके दो नेत्र रहें। लिंगके स्कन्धमें पीले रङ्गकी तीन-तीन पादोंवाली दो शृङ्खलाएँ रहें ॥ १६ ॥ शिवके ऊपर अधोमुखके ढंगपर आठ पाद (कोष्ठक) से लाल रङ्गका भाग रहेगा। अष्टादश पादका तिरछा भद्र हरे रङ्गसे बनेगा ॥ १७ ॥ पंक्तिके ऊर्ध्वभागमें हरे रङ्गकी परिधि रहेगी। उसके ऊपर पीले वर्णकी परिधि रहेगी ॥ १८ ॥ उक्त रीतिसे प्रथम पंक्ति बनायी जायगी। अब दूसरी पंक्तिकी विशेषताएँ बतलाता हूँ, जो पहले नहीं बतलायी थीं ॥ १९ ॥ दूसरी पंक्तिमें सात मुद्रा, आठ शिव एवं चौदह परिधियाँ रहेंगी। यह भद्र छ पैरोंवाला एवं लाल रङ्गका रहेगा और तीस पादका भद्र बनेगा ॥ २० ॥ २१ ॥ चौथी पंक्तिमें तीन शिव, चार मुद्रा, आठ परिधियाँ और चार पादका भद्र बनेगा ॥ २२ ॥ हरे-पीलेके मध्यमें लाल रङ्गकी परिधि रहेगी। पाँचवीं पंक्तिमें एक मुद्रा रहेगी और दो शिव रहेंगे ॥ २३ ॥ चार परिधि रहेगी और नब्बे पादका भद्र बनेगा। बाकी हरे-लाल-पीले वर्णकी परिधियाँ पूर्ववत् रहेंगी ॥ २४ ॥ छठवीं पंक्तिमें एक मुद्रा, दो परिधि, चार पादकी नौ और तीन परिधियाँ रहेंगी ॥ २५ ॥ मध्यमें तीन सौ चौबीस पादका सर्वतोभद्र रहेगा, तीन पादकी चन्द्राकार शृङ्खला रहेगी और पाँच पादकी कृष्ण बल्लियाँ रहेंगी ॥ २६ ॥ इसमें एकादश पादकी बल्ली रहेगी और नौ पादका भद्र रहेगा। चौबीस पादकी वापी रहेगी और वह पीले रङ्गकी रहेगी ॥ २७ ॥ सोलह पादोंके बीचमें अपनी पसन्दके माफिक कमल रहेगा। उसकी कर्णिकाएँ पीले रङ्गकी होंगी! बाकी सब अवयव अपनी रुचिके अनुसार होंगे ॥ २८ ॥ यह मैंने अष्टोत्तरशत रामलिंगतोभद्र बतलाया है। इसमें मुद्राका स्वरूप १४४ रहेगा ॥ २९ ॥ यद्यपि राज्यकाण्डके उत्तरार्द्ध भागके अट्ठारहवें सर्गमें कह आये हैं। फिर भी मुद्राका स्वरूप यहाँ बतला रहे हैं ॥ ३० ॥ इसमें कुल बारह पंक्तियाँ होती हैं और हर पंक्तियोंमें बारह पाद (कोठे) होते हैं। पूर्व दिशासे आरम्भ करके उन्हें पूर्ण करना चाहिए ॥ ३१ ॥ पहली और सातवीं पंक्ति काले रङ्गसे रंगी रहनी चाहिए। ऊपर-नीचे पाँच-पाँच पंक्तियाँ रहेंगी। उनका क्रम बतलाते हैं ॥ ३२ ॥ ऊपरकी पाँच

तदर्धञ्च द्वितीयायाः प्रथमं च द्वितीयकम् । चतुर्थं सप्तमं षष्ठं ह्यष्टमं नवमं तथा ॥३४॥
तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् । तदधश्च तृतीयायाश्चतुर्थं षष्ठसप्तमे ॥३५॥
तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् । चतुर्थ्यास्तदधश्चापि प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३६॥
चतुर्थं सप्तमं वप्रं नवमं रुद्रसंमितम् । तदधः पञ्चमायाश्च प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३७॥
चतुर्थं च तथा षष्ठं नवमैकादशे तथा । राजेति द्वेऽक्षरे शुक्ले द्रष्टव्ये पञ्चपंक्तिषु ॥३८॥
पञ्चपंक्तिष्वधश्चाथ प्रथमायाश्च पूर्ववत् । तदधश्च द्वितीयायाः प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३९॥
चतुर्थं सप्तमं षष्ठं नवमं दशमं ततः । तथा चैव द्वादशमं कृष्णवर्णानि पूरयेत् ॥४०॥
तृतीयायाश्चतुर्थं च षष्ठमर्कं च सप्तमम् । चतुर्थ्याः प्रथमं षष्ठं द्वितीयं च चतुर्थकम् ॥४१॥
अष्टमं नवमं चार्कं दशमं चापि पूरयेत् । पञ्चमायाः प्रथमं च द्वितीयं च चतुर्थकम् ॥४२॥
षष्ठमर्काष्टमं चापि सप्तमं दशमं तथा । नवमं कृष्णवर्णानि रामेति द्वेऽवलोकयेत् ॥४३॥
राजा रामेति चत्वारि ह्यक्षराणि निरीक्षयेत् । व्यत्ययाद्रामराजेति बुद्ध्या कार्येऽक्षरे नरः ॥४४॥
अथवा राम रामेति तृतीयं नाम कारयेत् । विशेष तत्र वक्ष्यामि ह्यधः पञ्चसु पंक्तिषु ॥४५॥
पंक्तेश्चतुर्थ्याः प्रथमं पदं कृष्णेन कारयेत् । नाकारस्तेन द्रष्टव्यो रामनामावलोकयेत् ॥४६॥
अथवा राम रामेति विशेषश्चोर्ध्वपंक्तिषु । प्रथमा पूर्ववज्ज्ञेया द्वितीयायास्ततः परम् ॥४७॥
प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयं पञ्चमं तथा । अष्टमं नवमं षष्ठं तथैकादशमं त्वपि ॥४८॥
तृतीयायाश्च प्रथमं रुद्रं षष्ठं च पंचमम् । चतुर्थ्याः प्रथमं चैव द्वितीयं च तृतीयकम् ॥४९॥
पञ्चमं सप्तमं चापि ह्यष्टमं नवमं तथा । तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् ॥५०॥
पञ्चमायाः प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयकम् । पञ्चमं सप्तमं षष्ठं ह्यष्टमं नवमं तथा ॥५१॥
तथैकादशमं चापि रामेति द्वेऽक्षरे सिते । नामान्येतानि चत्वारि चतुष्पार्श्वेषु योजयेत् ॥५२॥

पंक्तियों भरे और पहली तथा ईशानकोणकी पंक्तिको काले रङ्गसे रङ्गकर बाकीको खाली छोड़ दे ॥ ३३ ॥ उसके नीचे दूसरी पंक्तिकी पहली, दूसरी, चौथी, छठवीं, सातवीं, नवीं तथा ग्यारहवीं पंक्तिको काले रङ्गसे भरे। उसके नीचे तीसरा, चौथा, छठा, सातवाँ और ग्यारहवाँ कोष्ठ काले रङ्गसे भरे। चौथी पंक्तिका पहला दूसरा, चौथा, सातवाँ, छठाँ, नवाँ और ग्यारहवाँ कोठा काले रङ्गसे रंगे। उसके नीचे पाँचवीं पंक्तिका पहला, दूसरा, चौथा, छठाँ, नवाँ और ग्यारहवाँ कोष्ठक काले रङ्गसे भरे जायेंगे। बाकी कोठे खाली रहेंगे। इन पाँचों पंक्तियोंमें "राजा" ये दो अक्षर सफेद रङ्गके दीखने चाहिए ॥ ३४-३८ ॥ प्रथम पंक्तिके नीचेवाले पाँच कोठोंको पूर्ववत् रक्खे। उनके नीचे दूसरी पंक्तिका पहला, दूसरा, चौथा, सातवाँ तथा बारहवाँ कोठा काले रङ्गसे भरे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तीसरी पंक्तिका चौथा, छठाँ, बारहवाँ तथा सातवाँ कोष्ठक पूर्ववत् रक्खे। चौथी पंक्तिका प्रथम, दूसरा, चौथा, छठाँ, बारहवाँ, आठवाँ, सातवाँ, दसवाँ और नवाँ कोष्ठक काले रंगसे भरे। जिससे "राम" यह दो अक्षर साफ दिखाई दें ॥ ४१-४३ ॥ यह सब हो जानेपर उसमें "राजाराम" ये चार अक्षर दिखलाई देने लगेंगे। अपनी बुद्धिसे उसीको उलटकर "रामराजा" भी भर सकते हैं। अथवा राम राम राम इन तीनों नामोंकी कल्पना करे। नीचेकी पाँच पंक्तियोंमें जो विशेषताएँ हैं, वह मैं बतलाऊँगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ चौथी पंक्तिका पहला कोष्ठक काले रंगसे भर दे। इससे उस स्थानका आकार नहीं दीखेगा और "राम" यह साफ-साफ मालूम पड़ने लगेगा ॥ ४६ ॥ अथवा "राम राम" यह स्थापित करे। इसकी पहली पंक्ति पूर्ववत् रहेगी। इसके बाद दूसरी पंक्तिका पहला, दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, आठवाँ, नवाँ, छठाँ तथा ग्यारहवाँ कोष्ठक, तीसरी पंक्तिका पहला, ग्यारहवाँ, छठाँ, पाँचवाँ, चौथी पंक्तिका पहला, दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ, आठवाँ, नवाँ तथा ग्यारहवाँ कोष्ठक कृष्णवर्णसे भर दे ॥ ४७-५० ॥ पञ्चम पंक्तिका पहला, दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, छठाँ, आठवाँ, नवाँ तथा ग्यारहवाँ कोष्ठक भी काले रंगसे भर दे। ऐसा करनेमें

लघुमुद्रान्वितं रामलिंगाख्यं भद्रमुच्यते । मया शिष्याधुना तत्त्वं शृणुष्व स्वस्थमानसः ॥५३॥
तिर्यगूर्ध्वमेकपञ्चाशद्रेखास्तत्पदेषु च । सप्त सप्तपदा ते द्वौ परिधी पीतवर्णके ॥५४॥
कार्यौ तत्र कोणदेशेष्विन्दुस्त्रिपदशुक्लकः । शृङ्खलतुपदा कृष्णा त्रयोदशपदा लता ॥५५॥
हरितेशो वसुपदः कृष्णवर्णः प्रकारयेत् । त्रिपदं लोहितं ज्ञेयं भद्रं वल्ल्यन्तिकस्थितम् ॥५६॥
षष्टिपादात्मिका मुद्रा तत्रेन्द्रियदिक्स्थिता । त्यक्त्वा पंक्तिकोणकोष्ठं सिंधुसिंधुमितस्तथा ॥५७॥
सिंध्वर्तुपंक्ती च सप्तमायाः पंक्तेः पदं त्वधः । मषिणा पूरयेत्तत्र भाति रामेति सत्पदम् ॥५८॥
तत्रादावग्निमुद्रा स्यात्सीमापरिधयस्तथा । रक्तलिङ्गद्वयं भद्रं तथा लिङ्गोपरि स्थितम् ॥५९॥
पदद्वयं पीतवर्णं वीथीवल्ल्या नियोजयेत् । द्वितीये त्वेकमुद्रा द्वौ परिधी द्वौ शिवौ मतौ ॥६०॥
भद्रं नवपदं लिङ्गवल्ल्योर्मध्ये रसात्मकम् । भद्रं पातं लिङ्गोपरि रक्तं तुर्यपदात्मकम् ॥६१॥
लिंगस्कन्धपदे द्वे द्वे हरिते वीथिकाऽपि च । भद्राणि त्रीणि ज्ञेयानि पीतं द्वे लोहितेऽत्र हि ॥६२॥
ततोऽन्तः सर्वतोभद्रं कार्यं तत्र तु वापिका । चतुर्विंशत्पदं भद्रमंककोष्ठ लते सिते ॥६३॥
त्रिपदोऽब्जः पञ्चपदा शृंखला परिधिस्ततः । मध्ये पद्म रक्तवर्णं रचयेद्वा विचित्रितम् ॥६४॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णाश्चांते परिधयो मताः । एतत्षोडशमुद्राभी रामलिङ्गाख्यभद्रकम् ॥६५॥
सदानन्दमयं रामं चिज्ज्योतिषमनामयम् । सर्वावभासकं नित्यं स्वात्मानं समुपास्महे ॥६६॥
चन्द्रकलं रामलिंगतोभद्रं यद्विकल्पितम् । निर्विकारं नास्ति तस्मिन्विवेकः स विविच्यते ॥६७॥
कल्पितः स नरो राजा रामलिंगयुतः स्मृतः । रमणाद्राम इत्युक्तो योगिगम्यः परं महः ॥६८॥
लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं व्योमेत्युक्तं ब्रह्मविदुत्तमैः ॥६९॥

"राम" ये दो अक्षर सफेद दीखने लगेंगे। इन चारों नामोंको चारों ओर रख दे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे शिष्य ! अब लघुमुद्रान्वित रामलिंगतोभद्र बतलाता हूँ। सो तुम स्वस्थचित्त होकर सुनो ॥ ५३ ॥ खड़ी और बड़ी ५१ रेखाएँ खींचे। उनके सात सात खानोंमें पीले रंगकी दो परिधियाँ बनाये ॥ ५४ ॥ कोणभागमें तीन कोष्ठकोंमें सफेद रंगके दो इन्दु बनावे। छ कोष्ठकोंकी एक शृङ्खला और तेरह कोष्ठकोंकी लता बनावे ॥ ५५ ॥ आठ पादका हरे रंगका शिव बनावे। लाल रङ्गसे बल्लीके पास ही तीन पादका भद्र बनावे ॥ ५६ ॥ साठ पादकी मुद्रा और चन्द्रमा याम्य कोणमें रहेगा। प्रत्येक कोण और छठें कोष्ठकको छोड़कर ऊपर बतलायी गयी मुद्रा रखनी चाहिए। इसके अनन्तर सातवीं पंक्तिके नीचेके कोष्ठकोंको काली स्याहीसे भर दे तो "राम" ऐसा स्पष्ट दिखायी देने लगेगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ उसके आदिमें अग्निमुद्रा और उसकी बाकी परिधियाँ लाल रङ्गसे रंगे। दोनों लिंगोंके भद्र तथा लिंगके ऊपर स्थित दोनों पाद पीतवर्णसे रंगने चाहिये। इसमें कई वीथी तथा वल्लियाँ बनानी चाहियें। दूसरीमें एक मुद्रा, दो परिधि, दो शिव, नौ पादोंका भद्र, लिंग और वल्लीके मध्यमें छः भद्र बनावे। लिंगके ऊपरवाला भद्र पीले रङ्गका हो और चार कोष्ठकोंको लाल रङ्गसे रंगना चाहिये ॥ ५९–६१ ॥ लिंगके स्कन्धस्थानमें दो-दो हरे रङ्गके भद्र रहेंगे और वीथियाँ हरे ही रङ्गकी रहेंगी। यहाँपर तीन भद्र रहेंगे, एक पीला और दो लाल। इसके मध्यभागमें सर्वतोभद्र बनेगा। जिसमें चौबीस कोष्ठक रहेंगे, नौ कोष्ठकोंकी लता बनेगी और शिव भी बनेंगे ॥ ६२ ॥ तीन पादका अब्ज (कमल) और पाँच पादकी शृङ्खला और परिधि रहेगी। मध्यमें रक्तवर्ण या कई रङ्गके कमल बनावे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इसके अन्तमें पीले, सफेद, लाल और काले रङ्गकी परिधि रहेगी। इन षोडश मुद्राओंसे रामलिंगतोभद्र बनता है ॥ ६५ ॥ सदा आनन्दमय, चित्, ज्योतिर्मय, व्याधिरहित और सबके अवभासक, ऐसे अपने आत्मारूप रामकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ६६ ॥ सोलह कलाओंका यह रामलिंगतोभद्र जो मैंने बतलाया है, वह विचार-विहीन नहीं है। उसमें जो विचार है, अब उसकी विवेचना करते हैं ॥ ६७ ॥ राजाराम इस चिह्नका निर्माण करनेवाला मनुष्य धन्य है। सब लोगोंको आनन्द देनेके कारण रामका "राम" यह नाम पड़ा है। योगीजनोंकी ही गति उनतक है। उनका सर्वोत्कृष्ट तेज है ॥ ६८ ॥ उन्हींमें संसारके सब प्राणी लीन होते हैं और फिर

लिंग्यते चिंत्यते येन भावेन भगवान् शिवः । लिंगरूपो स रामेति लिंगं चेति द्विनामकः ॥७०॥
बहूनि सन्ति नामानि रामेशस्य महात्मनः । रजांसि गणयेत्कोऽपि भूमेर्नैवाखिलेशितुः ॥७१॥
तस्मिन्यत्सर्वतोभद्रं हृदयं तत्प्रकीर्तितम् । तत्र पद्ममष्टपत्रं सकेसरसकर्णिकम् ॥७२॥
तत्स्थानं रामलिंगस्य ध्यानार्थं परिकल्पितम् । अन्यथा सर्वगस्यास्य कथं देशादिभेदता ॥७३॥
दिग्ज्योतिः परमात्मायं स्वमायावशतां गतः । धर्मार्थकाममोक्षार्थं सृष्ट्युपाधिं प्रविष्टवान् ॥७४॥
तस्य चैतन्यचन्द्रस्य षोडशेमाः कलाः पराः । चिद्व्याप्ताश्च द्वारभूता घटादीन्विषयानिह ॥७५॥
प्रकाशयन्ति गृह्णन्ति त्यजन्ति च स्वभावतः । बुद्धिरेकाऽत्यन्तसिता सन्निकृष्टा शिवात्मनः ॥७६॥
अतो ज्ञानप्रधाना सा तज्ज्ञातं चक्षुरादिषु । प्रसृत रूपशब्दादीन् जानाति सुविशेषतः ॥७७॥
चतुर्द्धा वृत्तिभेदेन प्रोक्ता तत्त्वार्थदर्शिभिः । प्रयोजनं न तेनात्र प्रकृतं तद्विविच्यते ॥७८॥
क्रियाप्रधानः प्राणश्च पञ्चधाऽसौ स्ववृत्तितः । प्राणापानौ तथा व्यानः समानोदानकाविति ॥७९॥
वागादिकर्मेन्द्रियेषु क्रिया प्राणाश्रया मता । श्रवणं नयनं घ्राणं त्वग्रसनेन्द्रियं तथा ॥८०॥
पञ्चेमानि चेन्द्रियाणि ज्ञानद्वाराणि वै विदुः । वाक्पाणिपादपायूपस्थाश्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥८१॥
एवं षोडशसंख्यानं कलानामुच्यते बुधैः । तासु सर्वासु चैतन्यं रामनामेति विश्रुतम् ॥८२॥
प्रविष्टं दीप्यते शश्वत्तेन विश्वं विचेष्टते । अनादिसंसारतरुः कर्ममूलफलात्मकः ॥८३॥
देहाभिमानिनो जीवाः फलभोगाय पक्षिणः । यथाकर्म सुखं दुःखं खादन्ति स्वेश्वरार्पितम् ॥८४॥
कश्चिज्जन्मसहस्रेषु ज्ञानवान् जायते यदा । तदात्मस्थं रामरूपं ज्ञात्वा मोक्षी भवत्यलम् ॥८५॥

उन्हींमेंसे आविर्भूत होते हैं । इसी कारण ब्रह्मको जाननेवाले श्रेष्ठ लोगोंने इसे परम व्योम कहा है ॥ ६९ ॥ जिस भावसे भगवान् शिवकी पूजा की जाती है । वे ही राम लिंग और राम इन दो नामोंसे पुकारे जाते हैं ॥ ७० ॥ उन महात्मा रामके बहुतसे नाम हैं । संसारका कोई प्राणी पृथ्वीके रजकणोंको भले ही गिन ले । किन्तु भगवान्‌के नामोंकी गणना कोई भी नहीं कर सकता ॥७१॥ उसमें जो सर्वतोभद्र है, वही हृदय जानना चाहिये । उसमें आठ पत्रोंका केसर और पंखुड़ियों युक्त जो कमल है, वह रामके लिङ्गका ध्यान करनेके लिए ही बनाया जाता है । नहीं तो सर्वव्यापी भगवान्‌की देशादिभेदता किस प्रकार मानी जाती ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ चिज्ज्योतिर्मय वे परमात्मा अपनी मायाके वशीभूत होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गका साधन करनेके लिए ही संसारमें आये थे ॥ ७४ ॥ उस चैतन्य चन्द्रकी षोडश कलाएँ सर्वश्रेष्ठ मानी गयी हैं । वे संसारकी सब वस्तुओंमें विद्यमान रहती हैं ॥ ७५ ॥ ये स्वभावसे ही सबको प्रकाशित करतीं, समय पड़नेपर फिर छोड़ देतीं और कभी-कभी फिर अपनेमें समेट लिया करती हैं । पवित्र आत्मावालोंके लिए बुद्धिमात्र कला है और वह सबके पास रहती है ॥ ७६ ॥ इसीसे वह चक्षु आदिमें रहती हुई ज्ञानप्रधान मानी जाती है । वह शब्दरूपादि संसारमें फैले हुए पदार्थोंको अच्छी तरह जानती है ॥ ७७ ॥ वह वृत्तिभेदसे चार प्रकारकी मानी गयी है । यहाँ उसके विषयमें विशेष विवेचनकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती । अतएव इस विषयमें वास्तविक विवेचना करते हैं ॥ ७८ ॥ अपनी वृत्तिके अनुसार प्राणक्रिया प्रधान मानी जाती है और इसके पाँच भेद हैं—प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान ॥ ७९ ॥ वाक् आदि कर्मेन्द्रियोंकी सारी क्रियाएँ प्राणाश्रयी हुआ करती हैं । श्रवण, नयन, घ्राण (नाक), त्वचा और जीभ ॥ ८० ॥ ये ही पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मानी गयी हैं । वाक्, पाणि (हाथ), पाद, पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ८१ ॥ इसीलिए कलाओंकी सोलह संख्या कही गयी है । उन सबोंमें उन रमानाथकी चेतना शक्ति विद्यमान रहती है ॥ ८२ ॥ उन्हींके प्रवेशसे यह संसार देदीप्यमान होता है और उन्हींकी चेष्टासे सचेष्ट रहा करता है । वे अनादि संसाररूपी वृक्ष हैं और सबको कर्मानुसार फल देते हैं ॥ ८३ ॥ देहका अभिमान करनेवाले जीव पक्षियोंकी तरह अपने प्रभुके दिये हुए सुख-दुःखरूपी कर्मोंको भोगते हैं ॥ ८४ ॥ हजारों बार जन्म लेनेके बाद कहीं कोई ज्ञानवान् होता है और अपनी आत्मामें स्थित रामका रूप जानकर मोक्षपद-

इन्द्रियाणि पराण्येव तेभ्यो बुद्धिः परा मता । तत्परः परमात्मा च सर्वसाक्षी विनिश्चितः ॥८६॥
द्वौ सुपर्णावेकवृक्षं समाश्रित्य स्थितौ तयोः । एकः सारफलं स्वादु खादत्यन्यो विचक्षते ॥८७॥
त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोग्यश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षीत्याह चाथर्वणी श्रुतिः ॥८८॥
यच्चास्तीह यत्स्फुरति यच्चानन्दयति स्वयम् । यस्मिंश्च महसि प्रख्ये सर्वे वेदाः समन्विताः ॥८९॥
विषयादि धीपर्यन्तं जडं सर्वमनात्मकम् । यस्यार्थे च प्रियं चैतत्स रामात्मा महाप्रियः ॥९०॥
सर्वेषां प्राणिनां स्वात्मा परप्रेमास्पदो मतः । स तु सर्वत्रैक एव नेह नानास्ति गच्छति ॥९१॥
चिद्रामं हृद्गतं ज्ञात्वा योऽसौ सोऽहमितीरया । आचार्यदत्तया सम्यक् परमोपासन गतः ॥९२॥
आवृत्तिरसकृन्न्यायात्फलीभूते परात्मनि । बोधदार्ढ्ये पुनस्तस्य न कार्यं विद्यते भवे ॥९३॥
सर्वेऽप्युपायाः शास्त्रेषु यज्ज्ञानार्थे प्रयोजिताः । स चेद्दैशिकशब्देन हृद्याविः किं परं ततः ॥९४॥
दृष्टेऽस्मिन्रचिते भद्रं यद्येवं प्रविचार्यते । तदा चित्ते परा प्रीतिर्जायते विदुषां सताम् ॥९५॥
नमो रामाय शांताय लिङ्गरूपधराय च । शम्भवे विष्णवे तुभ्यं शङ्कराय शिवात्मने ॥९६॥
अथवाऽऽद्ये स्थले भद्रं कार्यं नवपदात्मकम् । तिर्यग् भद्रं षट्पदजं रक्तपीतेऽत्र ते स्मृते ॥९७॥
द्विद्विपादात्मके कार्ये शेषं सर्वं हि पूर्ववत् । रामतोभद्रमेतच्च केवलं रामतुष्टिदम् ॥९८॥
स्थले द्वितीयभद्रं हि रक्तं विंशत्पदात्मकम् । तिर्यग् भद्रं नवपदैः पीतं चित्रे तु शृङ्खले ॥९९॥
नत्वेशानं राममानन्दकन्दं मायातीतं निर्विकारं निरीहम् ।
विद्याधीशं षड्गुणैकाश्रयं च वक्ष्ये भद्रं रामनामांकितं तत् ॥१००॥

को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ पहले तो इन्द्रियाँ ही प्रधान हैं, उनसे बुद्धि श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ सर्वसाक्षी परमात्मा है ॥ ८६ ॥ दो पक्षी एक वृक्षपर बैठे हैं। उनमेंसे एक तो मीठे-मीठे फल खा रहा है, दूसरा टुकुर-टुकुर ताकता है ॥ ८७ ॥ तीनों धामोंमें जो भोग्य वस्तु, भोक्ता तथा भोग्य पदार्थ हैं। उन सबसे साक्षी परमात्मा विलक्षण है। यह अथर्व वेद कहता है ॥८८॥ इस शरीरमें जो चलायमान रहता है और जिसके तेजसे आनन्दको प्राप्त होता है। उसके विषयमें सब वेद एकमत होकर कहते हैं कि विषयसे लेकर बुद्धिपर्यन्त सब वस्तुएँ जड़ और आत्मविहीन हैं। जिसके लिए ये सब प्रिय मालूम होते हैं, वे परमात्मा राम सर्वप्रिय हैं ॥८९॥९०॥ संसारके सब प्राणियोंका अपनी आत्मा सबसे बढ़कर प्रिय होती है। यद्यपि वह एक है, फिर भी अनेक रूपोंसे विद्यमान दीखता है ॥ ९१ ॥ जो प्राणी 'सोऽहं' इस भावनासे चिन्मय रामको अपने हृदयमें सदा वर्तमान समझकर आचार्य द्वारा दी हुई दीक्षासे रामका उपासना करता है, वह परमात्माकी दी हुई श्रद्धाके फलीभूत होनेपर अनेकों बार इस संसारमें जन्म लेता है, किन्तु ज्ञानके दृढ़ हो जानेपर फिर संसारमें उसे कुछ करना बाकी नहीं रह जाता अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ शास्त्रोंमें जितने भी उपाय बतलाये गये हैं, उनका एकमात्र प्रयोजन ज्ञान प्राप्त करना है। यदि वह सांसारिक उपायोंसे प्राप्त हो सके तो फिर क्या कहना ॥ ९४ ॥ यदि उक्त प्रकारसे बनाये हुए भद्रको ध्यानसे देखकर उसपर विचार किया जाय तो विद्वानोंके हृदयमें ईश्वरके प्रति महाप्रीतिका उत्पत्ति होती है ॥ ९५ ॥ शान्त, लिङ्गरूपधारी, शम्भु, विष्णु, शङ्कर तथा शिवात्मा रामको प्रणाम है ॥ ९६ ॥ यदि उक्त प्रकारका भद्र अपनेको न रुचे तो नौ पादका भद्र बनावे। इस तिरछे भद्रमें छः पाद (कोष्ठक) होंगे और दो भद्र लाल और पीले रहेंगे ॥ ९७ ॥ फिर दूसरा लाल भद्र बीस पादका होगा। तिरछा भद्र नौ पादका होगा। इसका पाला रङ्ग रहेगा और कई रङ्गोंके मेलसे इसमें दो-दो पादोंकी दो शृंखलाएँ बनायी जायँगी ॥ ९८ ॥ बाकी सब पूर्ववत् रहेगा। इस भद्रका नाम रामतोभद्र है और यह केवल रामचन्द्रको प्रसन्न करनेवाला है ॥ ९९ ॥ आनन्दकन्द, मायातीत, निर्विकार, निरीह, विद्याके स्वामी और षड्गुणोंके एकमात्र आश्रय शिवको यह भद्र नहीं प्रसन्न कर सकता। इसलिए मैं

प्रागुत्तरा द्विशतमंकनवाधिका २९९ श्च रेखाः समाः सुपरिकल्प्य पदेषु तासाम् ।
कोणांतराऽत्र उपरींदुशकुंतसंख्याः २१ पीताश्च ते परिधयः परिकल्पनीयाः ॥१०१॥
कोणाब्जशृंखललताः सितकृष्णनीला भद्राणि भिन्नरचनान्यरुणानि तानि ।
मुद्राश्च तत्परिधयश्च सिताश्च रक्ताः संपूरिताश्च जनयंति रतिं मुनीनाम् ॥१०२॥
मुद्रा तु षष्टिपदसंवलिता च तत्र पंक्ती विहाय यमवामवदिक्तनस्थे ।
प्रत्येककोणकपदानि चतुष्टयादि पंक्तिद्वयं रसतुरीयकमञ्जनाभम् ॥१०३॥
कृत्वा पदैकमधतस्त्वथ सप्तमायास्तेनातिसुन्दरतरं परिभाति सारम् ।
रामेति द्व्यक्षरमुमेशजपं निधानं प्राणप्रयाणसमये जपतां महोदयम् ॥१०४॥
रचयेदादितः सम्यग्यावद्विंशस्थलावधि । सर्वत्र राममुद्रासु मध्येषु परिधिद्वयम् ॥१०५॥
आदौ तत्त्वमिता मुद्रास्त्रयोविंशन्मितास्ततः । द्वाविंशैकविंशविंशषट्सप्तदशमापराः ॥१०६॥
ह्यष्टचतुर्दशत्रयोदशद्वादशरुद्रकः । नवाष्टसप्तषट्तुर्यत्र्येकाश्चाप्यनुक्रमात् ॥१०७॥

भद्रं षोडशपादं च विंशत्त्रिंशत्षडग्रिकम् ।
चंद्रकलं तत्त्वमितं त्रिंशाक्षिसिंधुविंशकम् ॥१०८॥
तत्त्वषडग्निनेत्रांबुनिधिविंशन्नभोऽग्रिकम् ।
षट्त्रिंशत्षोडशपदं तत्त्वे त्रिंशद्द्विसिंधुकम् ॥१०९॥

विंशत्कोष्ठं क्रमादेवं भवेत्पार्श्वचतुष्टये । एकविंशत्पदे भद्रमेककोष्ठं च वापिका ॥११०॥
चतुर्विंशपदा कार्या परिध्यन्तोऽरुणांबुकम् । भद्रोपरि यत्र यत्र पदान्युर्वरितानि च ॥१११॥
तिर्यक् भद्रशृंखलार्थे यथेच्छं पूरयेद्धिया । सर्वत्र शृङ्खलाः पञ्चपदजैकादशी लता ॥११२॥
त्रिपदश्च शशी ज्ञेयः परिधयो बहिः क्रमात् । कृष्णरक्तशुक्लपीताश्चतुर्दिक्षु समंततः ॥११३॥

एतदष्टोत्तरदशशतं १००८ ज्ञेयं रामस्य भद्रकम् ।
अथवा मनु १४ रेखानां वृद्धिं कृत्वा प्रकल्प्य च ॥११४॥

एक दूसरा भद्र बतला रहा हूं ॥ १०० ॥ पहले उत्तरकी ओरसे २९९ रेखा खींचे। उसमें २१ कोष्ठकोंसे पीले रंगकी परिधियाँ बनावे ॥ १०१ ॥ कोणमें कमल बनाकर सफेद, काले और नीले रंगकी शृङ्खला और लताएँ बनावे। उनमें बने सब कोष्ठक भिन्न-भिन्न प्रकारके लाल रङ्गके रहेंगे। उसमें बनी सफेद और लाल रङ्गकी मुद्रायें मुनियोंके हृदयमें भी अनुराग उत्पन्न किये बिना नहीं रहतीं ॥ १०२ ॥ इसमें साठ कोष्ठकोंकी मुद्रा बनायी जाती है, किन्तु दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण कोणकी पंक्तियाँ सादी छोड़ दी जाती है। प्रत्येक कोणके चार पाद, दो पंक्ति तथा छठीं और चौथी पंक्ति काले रङ्गकी रहेगी ॥ १०३ ॥ इसके अतिरिक्त सातवीं पंक्तिके नीचे एक पाद काले रङ्गका बनावे तो वह भद्रके सारकी तरह बहुत ही सुन्दर लगेगा। राम यह दो अक्षर शिवजीके जपपुञ्जका एक बड़ा खजाना है। यदि प्राण निकलते समय इसका जप किया जाय तो बड़ा कल्याण हो ॥ १०४ ॥ आदिसे लेकर बाईसवें कोष्ठक पर्यन्त भद्रकी रचना करता जाय। हर एक राम-मुद्राके बीचमें दो परिधियाँ रहेंगी ॥ १०५ ॥ पहले पच्चीस मुद्रायें रहेंगी। इसके बाद बाईस, इक्कीस, बीस, अठारह, सत्तरह, सोलह, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, नौ, आठ, सात, छ, चार, तीन, दो, एक ये मुद्रायें रहेंगी, ॥१०६॥१०७॥ इस भद्रमें बीच, तीस, छत्तीस, सोलह, पच्चीस, तीस, बयालीस, बीस, पच्चीस, छत्तीस, बयालीस, ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इस प्रकार बीस-बीस कोठे चारों ओर रहेंगे। इक्कीस कोष्ठकका भद्र रहेगा और नौ कोष्ठकोंकी वापी बनेगी ॥ ११० ॥ चौबीस कोष्ठकोंसे परिधिके पास कमल बनेगा। जो पाद बाकी बचे हों, उन्हें अपनी बुद्धिसे भरे। इसमें पाँच पादोंकी शृङ्खलाएँ रहेंगी और ग्यारह पादकी लताएँ बनायी जायेंगी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ तीन पादका चन्द्रमा बनेगा और उसके आस-पास चारों ओर काली, लाल, सफेद तथा

परिधिस्तत्र लिङ्गानामेविंशाधिकं शतम् । वाप्यो भद्राणि चंद्रादिचतुःपार्श्वेषु योजयेत् ॥११५॥
चतुर्विंशपदं लिङ्गं वाप्यष्टशतपादिका । द्वे भद्रे नव नव पदे ह्यष्ट ह्यष्ट पदानि षट् ॥११६॥
त्रिंशल्लिङ्गानि वाप्यस्तु सप्तविंशन्मिता मताः । एकस्मिन् पार्श्वके लिङ्गाधिक्ये भद्रे प्रकल्पयेत् ११७॥
ह्यष्टह्यष्टपदे शेषाण्यंककोष्ठानि योजयेत् । लिंगं कृष्णं सिता वाप्यः शेषं सर्वं पुरोदितम् ॥११८॥
पदानि शेषभूतानि यत्र यत्रेह तानि च । भद्रशृंखलयोग्यानि तदर्थे विनियोजयेत् ॥११९॥
कृष्णरक्तशुक्लपीता अंते परिधयो मताः । एवं लिंगयुतं रामतोभद्रं परिकीर्तितम् ॥१२०॥
अनेन देवौ सुप्रीतौ रामेशौ भवतस्त्विह । रामस्य पूजनार्थं हि त्विदं प्रोक्तं वरासनम् ॥१२१॥
आचार्यान् ज्ञानसंपन्नान्नत्वा तेषां प्रसादतः । वक्ष्येऽहं रामतोभद्राकृतिं च शंभुसंयुताम् ॥१२२॥
प्रकृतिं रामतोभद्रं विकृतिं लिंगसंयुतम् । अन्ये विकाराः संज्ञेया ह्येवं कृतिस्त्रिधोच्यते ॥१२३॥
तिर्यगूर्ध्वमग्न्यधिकाः शतरेखाः प्रकल्पयेत् । तत्पदेषु परिधयः षट्षडन्ते षडेव तु ॥१२४॥
पीताः कोणेषु त्रिपदः शुक्लेन्दुः शृंखलाऽसिता । पञ्चपदैकादशिका वल्लरी भद्रसंक्रमात् ॥१२५॥

सिन्धुषोडशसूर्यर्तुयुगषोडशकोष्ठकम् ।
कल्पयेत्त्वष्टकोष्ठेषु राममुद्रां हि पूर्ववत् ॥१२६॥
अष्टौ षष्ठ च पञ्चसिंधुवह्निचन्द्रमिताः शुभाः ।
तासां सीमापरिधयस्त्वेकास्तु लोहिताः ॥१२७॥

रजनीशनेत्रसिंधुपंक्तिषु मध्यमास्त्रयः । मर्यादाख्याः परिधयो भवंति द्विगुणीकृताः ॥१२८॥
अंतिमं तु परिध्यन्ते सर्वतोभद्रकं लिखेत् । विशेषस्तत्र वापी तु चतुर्विंशपदात्मिका ॥१२९॥
भद्रं नवपदं पद्मं परिध्यंतः सुलोहितम् । पीता तत्कर्णिका कार्या अन्ते परिधयोऽपि च ॥१३०॥

पीलीं परिधियाँ रहेंगी ॥ ११३ ॥ यह एक हजार आठ नामोंका भद्र है। अथवा चौदह रेखाओंकी कल्पना करके उनकी वृद्धि करे। उसमें एक सौ इक्कीस कोष्ठकोंकी परिधि बनेगी। वापी-भद्र आदि पहलेकी तरह रक्खे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ चौबीस कोष्ठकोंका लिंग बनेगा और अठारह पादकी वापी बनायी जायगी। दो भद्र नौ-नौ पादके रहेंगे और दस-दस पादोंके छः भद्र बनाये जायँगे ॥ ११६ ॥ उनमें तीस तथा बीस पादोंके लिंग रहेंगे और सत्ताइस पादोंकी वापी बनायी जायेगी। जो कुछ बाकी पाद बचें, उनमें दस-दस पादोंसे दो भद्रोंकी रचना करे ॥ ११७ ॥ बाकी नौ कोष्ठकोंको यथास्थान रक्खे। इसमें लिंग काला और वापी सफेद रहेगी। बाकी सब पहलेके भद्रोंकी तरह ज्योंके त्यों रहेंगे ॥ ११८ ॥ बाकी जितने पाद हैं, वे सब भद्र और शृङ्खलाके काममें आ जायँगे ॥ ११९ ॥ काले, लाल, सफेद और पीले रङ्गकी इसकी परिधियाँ रहेंगी। इस प्रकारके लिंगसे रामतोभद्रकी रचना बतलायी गयी ॥ १२० ॥ इस भद्रसे राम तथा शिवजी दोनों प्रसन्न होते हैं। यहाँ रामका पूजन करनेके लिये वरासन बतलाया गया ॥ १२१ ॥ अब मैं ज्ञानसम्पन्न आचार्योंको प्रणाम करके उनकी कृपासे शम्भुसंयुक्त रामतोभद्रकी रचनाका प्रकार बताऊँगा ॥ १२२ ॥ इसमें रामतोभद्रकी प्रकृति विकृत रहती है। और भी कई तरहकी विकृतियाँ इसमें होती हैं ॥ १२३ ॥ खड़ी और बेड़ी कुल एक सौ तीन रेखाएँ खींचे। इसमें भी छ-छ पादोंकी परिधियाँ रहेंगी ॥ १२४ ॥ कोनोंमें तीन-तीन पाद पीले रङ्गके रहेंगे। चन्द्रमा उज्ज्वल रहेगा और शृङ्खला काले रङ्गकी रहेगी। सोलह पादकी बल्लरी बनायी जायगी ॥ १२५ ॥ चार, सोलह, बारह, छ, चार, सोलह पादके क्रमसे कोष्ठकोंमें पूर्ववत् राममुद्राकी रचना करे ॥ १२६ ॥ आठ, छ, पाँच, चार, तीन, एक, इस पादक्रमसे इसकी परिधियाँ बनेंगी और एक परिधि लाल रङ्गकी रहेगी ॥ १२७ ॥ एक, दो, चार और दस इनकी द्विगुणित क्रमसे मर्यादाख्या परिधियाँ होती हैं ॥ १२८ ॥ अन्तिम परिधिके बीचमें सर्वतोभद्र बनाना चाहिये। यहाँ यह विशेषता है कि इसमें चौबीस चौबीस कोष्ठकोंकी वापी बनायी जायगी ॥ १२९ ॥ नौ कोष्ठकोंका भद्र बनेगा और परिधिके भीतर लाल

पीतशुक्लरक्तकृष्णवर्णा यत्र पदानि च । भद्रोर्ध्वं शेषभूतानि तानि युक्त्या प्रपूरयेत् ॥१३१॥
तिर्यग्भद्रशृंखलाद्यैः पीतचित्रे च ते स्मृते । एतदष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमीरितम् ॥१३२॥

एकं संसारशून्यं सकलसुखनिधिं सच्चिदानन्दकन्दं
मायायोगेन विश्वात्मकमिदममलं ब्रह्मविष्ण्वीशसंज्ञम् ।
सृष्टिस्थित्यन्तहेतुं निगमकविनुतं सर्वभूतात्मभूतं
सर्वज्ञं सर्वशक्तिं रणहरममृतं तन्महो भावयेऽहम् ॥१३३॥

नत्वा श्रीदेशिकेंद्रस्य पादाब्जममरप्रदम् । वक्ष्ये चाध्यात्मिकीं सूक्तिं सतां चित्तचमत्कृतिम् ॥१३४॥
पशूनां नखरोमादि सर्वमर्थाय कल्पते । मृतस्य नरदेहस्य सृष्टिर्दोषावहोदिता ॥१३५॥
एकमेवामुना साध्यं ज्ञानं यत्स्वस्वरूपदम् । तद्विना तु पशुभ्यश्च नरो हीनतरो मतः ॥१३६॥
प्रतिभावान्पुण्यतमः श्रद्धावान् गुर्वधोक्षजे । कोटिष्वेकः स्वयं साक्षान्नरो नारायणो भवेत् ॥१३७॥
केनचिद्रामतोभद्रं मुदा षष्टिपदात्मिका । रामांकिता च संकल्प्य विविच्यते च ते उभे ॥१३८॥
लोकाः सप्त यथांडेऽस्मिंस्तथा तत्र प्रकल्पिताः । तेनेयं रचना तुल्या ज्ञात्वा हृत्स्थमुदीर्यते ॥१३९॥
ब्रह्मांडं रामतोभद्रं मुद्राभूतानि संमताः । रामचैतन्ययुक्तानि सम्मतानि तु सूरिभिः ॥१४०॥
यस्यां स्यान्मुदितं वस्तु सा मुद्रेति निगद्यते । मुद्रेत चिह्नितं चाथ पिहितं ह्यर्थतो भवेत् ॥१४१॥
तद्वत्सर्वासु चैतासु ब्रह्ममुद्रितमुच्यते । तथाप्यासां सबाह्यांतश्चैतन्यः संप्रकाशते ॥१४२॥
आच्छादितोऽपि कलशे स्फटिकेऽन्तर्बहिः किल । दीपः प्रकाशते कस्तं लोपयेच्च तथेष्यते ॥१४३॥
मूषासिक्तं ताम्ररसं तदाकारं प्रपद्यते । तथा ब्रह्म निराकारं मुद्राकारं विभासते ॥१४४॥

रङ्गका कमल रहेगा। पीले रङ्गसे उस कमलके दल बनाये जायँगे ॥ १३० ॥ पीले, सफेद, लाल और काले रङ्गकी परिधियाँ रहेंगी। भद्रसे बाकी बचे जितने कोष्ठक हों; उन्हें युक्तिके साथ रंगोंसे पूर्ण कर दे ॥१३१॥ इसकी शृङ्खलाएँ तथा भद्र पीले और विविध रंगके होंगे ॥ १३२ ॥ मैं भगवान्‌के उस रूपका ध्यान करता हूँ जो संसारमें अकेला है, समस्त सुखका निधान है, सच्चित् और आनन्दकन्द है। जिसने अपनी मायाके योगसे इस निर्मल विश्वके प्रभुओंको ब्रह्मा, विष्णु और शिवके नामसे अभिहित कर रक्खा है। जो सृष्टि, पालन और विनाशका हेतु है। जिसकी ऋषियोंने बार-बार स्तुति की है, जो सब प्राणियोंका प्राण है, जो सब कुछ जानता है, जिसके पास सब प्रकारकी शक्तियाँ हैं, जो संग्रामका अन्तक और अमृतस्वरूप है ॥ १३३ ॥ अब मैं श्रीदेशिकेन्द्रके अमरपद प्राप्त करानेवाले चरणकमलको प्रणाम करके सज्जनोंके चित्तमें चमत्कार उत्पन्न करनेवाली आध्यात्मिकी सूक्तियोंका वर्णन करूँगा ॥ १३४ ॥ मृत पशुओंके नख-लोम आदि सब पदार्थ काम आ जाते हैं, किन्तु मनुष्यके मर जानेपर यह मालूम होता है कि विधाताने इसकी सृष्टि करके बड़ा भारी अपराध किया है ॥ १३५ ॥ इस शरीरसे आत्माका स्वरूप पहचाननेकी साधना की जा सकती है। यदि यह काम नहीं किया तो वह मनुष्य पशुसे भी हीन माना जायगा ॥ १३६ ॥ करोड़ों मनुष्योंमें कहीं कोई एक मनुष्य पवित्र गुरु तथा भगवान्‌में श्रद्धा रखनेवाला होता है। जो ऐसा होता है, वह साक्षात् नारायण ही है ॥ १३७ ॥ कुछ लोग ऊपर बतलाये हुए रामतोभद्रकी रचना करके उसमें साठ कोष्ठकोंकी मुद्रा बनाकर इस प्रकार विवेचना करते हैं— ॥ १३८ ॥ जैसे ब्रह्माण्डमें कितने ही लोक हैं, ठीक उसी तरह यह रामतोभद्र भी है ॥ १३९ ॥ रामतोभद्र ब्रह्माण्ड है, इसकी मुद्रामें ही प्राणिसमूह बसते हैं। उसमें रामरूप चैतन्य (जीव) है। ऐसा कितने ही तत्त्वदर्शियोंने कहा है ॥ १४० ॥ जिसमें कोई वस्तु मुद्रित हो (अर्थात् लपेटकर रक्खी हो) उसे लोग मुद्रा कहते हैं। मुद्रितका अर्थ है—चिह्नित या पिहित (घिरोया हुआ)। यह सारी सृष्टि ब्रह्मसे मुद्रित है। फिर भी इसके बाहर चैतन्यता प्रकाशित हो रही है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ स्फटिक मणिका कलश बना और उसके भीतर दीपक रखकर चाहे वह चारों ओरसे ढाँक दिया जाय, फिर भी दीपकका प्रकाश कोई लुप्त नहीं कर सकता। ठीक यही दशा उस ब्रह्मकी भी है ॥ १४३ ॥ जिस तरह कि

पुरश्चक्रे प्रभुः सर्वाः पुरः पुरुष आविशत् । इत्युक्तं कण्वशाखायां अन्यत्रापि हि पठ्यते ॥१४५॥
एको वशी सर्वभूतांतरात्मेति श्रुतेर्यद्वचः । एको देवः सर्वभूतेष्विति चैवापरा श्रुतिः ॥१४६॥
पुरः सृष्टाः परेशेन नैव ताभिस्तुतोष सः । सृष्ट्वेमां मानुषीं मुद्रां परं तोषमवाप सः ॥१४७॥
देवताश्चान्नभुक्त्यर्थं दृष्ट्वेमां पौरुषीं तनुम् । हर्षादाहुश्च सुकृतं बतेति श्रूयते स्फुटम् ॥१४८॥
पुरुषं त्वेवाविस्तरमात्मेत्याह श्रुतिः स्वयम् । पुरा सृष्टैः सर्वभूतैरतुष्टहृदयः स्वराट् ॥१४९॥
ब्रह्मावलोमधिषणं नरं दृष्ट्वा मुदं गतः । इत्यस्माभिर्विष्णुदास श्रूयते भगवद्वचः ॥१५०॥
मुदं करोति देवस्य द्रावयेद्दुःखपातके । इति मुद्रानिरुक्तिश्च मन्त्रशास्त्रेऽपि श्रूयते ॥१५१॥
अतः सर्वेषु देहेषु सद्रूपग्रहणं कृतम् । स्वर्गापवर्गयोश्चैषोऽधिकारोऽस्मिन्न चेतरे ॥१५२॥
लोके प्रसिद्धिर्यः कश्चिद्राजमुद्रांकितो नरः । अधिकारीति मन्यंते पूजयंत्यादरादिभिः ॥१५३॥
तथानयांकितो जीवोऽधिकारी शास्त्रभूमिषु । नान्याभिर्यो निभिर्ज्ञातुं शक्यते स्वात्मनः पदम् ॥१५४॥
तस्मिंश्चैव नरोपाधौ पदानि षष्टि संति हि । तानि संक्षेपतः सम्यक् प्रदर्श्यन्तेऽवबुद्धये ॥१५५॥
अविद्याकामकर्माणि भोक्तृभोगौ सुषुप्तिका । षट्पदानि तु ज्ञेयानि देहे कारणसंज्ञके ॥१५६॥
तमोऽज्ञानमविद्येति शब्दा एकार्थवाचिनः । अतो गुणाग्रहो नात्र दृश्यते षट्सु भो द्विज ॥१५७॥
लिंगे पुर्यष्टकेऽविद्याकामकर्मग्रहः स्मृतः । तथाप्यत्र तु हेतुत्वात्त्रयाणां ग्रहणं कृतम् ॥१५८॥
कार्याभावेऽप्यवस्थानात्कारणे कारणात्मना । कामस्य कर्मणश्चात्र विद्यते सूक्ष्मरूपता ॥१५९॥
अविद्या या मुख्यतोऽत्र विद्यते कारणात्मना । वस्तुतस्तु न कामोऽत्र कामना वा श्रुतेर्मतम् ॥१६०॥

सुवर्णमें तामा डाला जाता है तो सुवर्ण उसे अपने रंगमें मिला लेता है। यही दशा उस निराकर ब्रह्मकी भी है ॥ १४४ ॥ प्रभुने पहले इस जगत्की सृष्टि की। तदनन्तर उसमें पुरुषका समावेश किया। ऐसा कठशाखामें कहा गया है। अन्य स्थानोंमें भी ऐसे ही वाक्य कहे गये हैं। उन्हें भी बतलाता हूँ ॥ १४५ ॥ श्रुतिका कथन है कि सब प्राणियोंकी अन्तरात्मामें रहनेवाला एक ही परमात्मा है। दूसरी श्रुति भी इसी बातको पुष्ट करती हुई कहती है कि वह एक ही देवता है, जो संसारके सब प्राणियोंमें विद्यमान रहता है ॥ १४६ ॥ सृष्टिकर्ताने पहले अनेक तरहकी सृष्टियाँ कीं, किन्तु इससे उसे सन्तोष नहीं हुआ। फिर जब उसने इस मानुषी मुद्राकी सृष्टि की, तब उसे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १४७ ॥ अन्नका भोग करनेके लिए देवताओंने पुरुषका शरीर देखा तो हर्षसे गद्गद होकर बोल उठे—आपने यह बहुत अच्छा किया, जो मानुषी शरीरकी सृष्टि कर दी ॥ १४८ ॥ विस्तारविहीन सूक्ष्म आत्माको ही श्रुतिने पुरुष कहा है। पहले ब्रह्माने और-और प्राणियोंकी सृष्टि की, किन्तु उनका हृदय प्रसन्न नहीं हुआ और जब ब्रह्मको प्राप्त करनेवाले मनुष्योंको उन्होंने देखा तो बहुत प्रसन्न हुए। हे विष्णुदास ! इस प्रकार हम लोगोंने भगवद्वाक्य सुने हैं—॥ १४९ ॥ १५० ॥ वह ब्रह्म देवताओंको प्रसन्न करता हुआ सब दुःखों और पातकोंको पानी-पानी करके बहा देता है। इस प्रकार मुद्राओंकी निरुक्ति मंत्रशास्त्रमें भी की गयी है ॥ १५१ ॥ इसीलिए उसने सब देहोंमें सद्रूपको अपना घर बनाया है। स्वर्ग और अपवर्गका अधिकार भी इसी नरजातिको दिया गया है—औरोंको नहीं ॥ १५२ ॥ संसारमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्यके पास राजाकी मुहरका कोई प्रमाणपत्र होता है। उसे लोग अधिकारी समझते हैं और उसकी पूजा करते हैं ॥ १५३ ॥ उसी प्रकार इस रामतीर्थकी मुद्रासे अङ्कित जीव शास्त्रभूमिका अधिकारी माना जाता है। अन्य योनिके जीव अपना-अपना आत्मपद नहीं जान सकते ॥ १५४ ॥ नरकी उपाधिमें कुल साठ पद हैं। उनको जाननेके लिए यहाँ अच्छी तरह बतलाते हैं ॥ १५५ ॥ कारणसंज्ञक देहमें अविद्या, काम, कर्म, भोक्ता, भोग और सुषुप्तिके स्थान हैं ॥ १५६ ॥ हे द्विज ! तम, अज्ञान और अविद्या इन तीनों शब्दोंका एक ही मतलब है। इससे इसमें किसी गुणका ग्रहण किया जाना नहीं दीखता ॥ १५७ ॥ सातवें शरीररूपमें अविद्या, काम और कर्मको ग्रहण किया गया है। फिर भी कारण वश इन तीनोंको ग्रहण ही करना पड़ता है ॥ १५८ ॥ कारणका चाहे कोई कार्य हो या न हो, वहाँ कारणरूपसे रहता ही है।

अष्टत्रिंशत्पदानीह विद्यन्ते सूक्ष्मदेहके । दशेंद्रियाणि पंचैव प्राणा बुद्धिर्मदस्त्विति ॥१६१॥
सप्तदशात्मकं लिंगं प्रसिद्धं शास्त्रसम्मतम् । पञ्चविषयग्रहणं पञ्च कर्मक्रियास्ततः ॥१६२॥
पञ्च संप्राणव्यापाराः संकल्पो निश्चयस्त्विति । सप्तदश चैव धर्माः प्रसिद्धाः शास्त्रसंमताः ॥१६३॥
स्वप्नाभिमानिनौ भोगौ रजश्चेति चतुष्टयम् ।देवानामिंद्रियाणां च स्थानाभावेऽप्रवृत्तितः पदे॥१६४॥
स्थूलदेहे षोडशैव पदानि सम्मतानि हि । गणाः सप्तदश तेषामपानव्यानयोः पदे ॥१६५॥
पायुत्वक्स्थानयोर्ज्ञेये वाचोरसि निकेतने । प्राणस्य मनसश्चापि बुद्धिस्थाने पदं त्विति ॥१६६॥
पदानि द्वादशे मासि भोक्तृभोगौ तथा गुणः । अवस्था जागृतिश्चेति कथितानि मनीषिभिः ॥१६७॥
मुद्रामेतादृशीं प्राप्य वेद वेदात्मचित्पदम् । तस्य जन्म कृतार्थं स्यान्महती नष्टिरन्यथा ॥१६८॥
मुद्रारूपं विविच्यैव यन्नाम्नां सांकितेति च । उक्तं तदधुना किंचित्संक्षेपेण निरुच्यते ॥१६९॥
रामेति लोकरमणाद्रमन्ते योगिनोऽमले । परमानन्दपदे नित्यं तेन राम इतीर्यते ॥१७०॥
रसेनैवामुना सर्वे जीवा जीवन्ति नान्यथा । इमं रसमयं लब्ध्वा भवंत्यानन्दिनोऽखिलाः ॥१७१॥
विशता येन विश्वेषु सर्वं चेतयते जगत् । न तं चेतयते कश्चित्स राम इति कीर्त्यते ॥१७२॥
सत्ता येनाखिलं विश्वं स देवेति प्रतीयते । असत्सत्ताप्रदः साक्षाद्राम इत्यभिधीयते ॥१७३॥
यथा प्रसिद्धं रामेति ब्रह्मणो ह्यभिधानकम् । तथा लिंगं पदं व्योम निष्कलः परमात्मनः ॥१७४॥
लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिंगं पदं व्योम निष्कलः परमः शिवः ॥१७५॥
इति शास्त्रविदां वाणी श्रूयते तत्त्वदर्शिनाम् । अतः सर्वाणि नामानि रूपाणि चांतरात्मनः ॥१७६॥
संति तेन शब्दभेदे रूपभेदेऽपि सर्वथा । तत्त्वतो नैव भेदोऽस्ति ह्यर्थस्यैकस्य वस्तुनः ॥१७७॥

उस शरीरमें काम और कर्म ये दोनों सूक्ष्मरूपसे रहते हैं ॥ १५९ ॥ इस कारणात्मामें अविद्याकी प्रधानता है। वास्तवमें न इसमें काम रहता है और न कामना ही रहती है। यह श्रुतिका सिद्धान्त है ॥ १६० ॥ इस सूक्ष्म देहमें कुल साठ पद हैं। दस पद इन्द्रियका, पाँच पद प्राणका, बुद्धि, मन और लिंगका सत्रह पद शास्त्रोंमें कहा गया है। पाँच पद विषय ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंका, पाँच कर्मक्रियाओंका और पाँच प्राणोंके व्यापारका। कुल सत्रह ही पद धर्मशास्त्रसम्मत हैं ॥ १६१-१६३ ॥ स्वप्न, अभिमानी, भोग और रज ये चार देवताओं और इन्द्रियोंमें प्रवृत्ति नहीं कर पाते। इसलिए स्थूल शरीरमें सोलह ही पद माने गये हैं। किन्तु गण सत्रहका ही रहेगा। उनमेंसे दो पद अपान और व्यान वायुका है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ पायु और त्वक्स्थानका दो पद, वाणी और हृदयका दो पद, प्राण, मन तथा बुद्धिके एक एक पद ॥ १६६ ॥ ये बारह पद, भोक्ता और भोगका पद, इन्हें विद्वानोंने गुण, अवस्था तथा जागृति कहा है ॥ १६७ ॥ इस प्रकारकी मुद्रा प्राप्त करके प्राणी वेदका अविनाशी पद पा लेता है। इसको पानेसे जन्म कृतार्थ हो जाता है। अन्यथा नष्ट ही हो जाता है ॥ १६८ ॥ मुद्राके रूपकी विवेचना करके उसके नामोंसे संकेतित मुद्राओंकी अब संक्षेपरूपसे बतलाते हैं ॥ १६९ ॥ संसारके प्राणियोंको आनन्द देनेके कारण भगवानका 'राम' नाम पड़ा है। योगीगण इसी अमल परमानन्द पदमें आनन्द लेते हैं। इस लिए भी राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७० ॥ इसी रससे संसारके सब जीव जीते हैं, इस सरस पदको पाकर लोग आनन्दमय हो जाते हैं ॥ १७१ ॥ जो जगत्में प्रविष्ट होकर सारे जगत्को चैतन्य कर देता है। जिस रामको चैतन्य करनेवाला कोई भी नहीं है, वे ही राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७२ ॥ जिन भगवन्की सत्ता समस्त विश्वमें है। वे इसी कारण देवता कहलाते हैं। वे असत् जगत्में भी अपनी सत्ता बनाये रखते हैं। अतएव लोग उन्हें राम कहते हैं ॥ १७३ ॥ जिस तरह उनका राम यह नाम प्रसिद्ध हुआ। उसी तरह परमात्माके लिङ्ग और रूप भी हैं ॥ १७४ ॥ लोग लिंगका अर्थ इस प्रकार करते हैं—जिसमें जगत्के सब प्राणी अन्तमें लीन होते और सृष्टिके आदिमें जिससे प्रादुर्भूत होते हैं, उसीकी लिंग संज्ञा है। वह लिंग, शून्य निष्कल और परम कल्याणकारी है ॥ १७५ ॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शी शास्त्रज्ञोंकी बातें सुनायी पड़ती है। इससे यह

स ब्रह्मा स शिवश्चाथ स हरिः स सुरेश्वरः । सोऽक्षरः परमश्चैव स स्वराडिति वेदवाक् ॥१७८॥
यस्येमे सच्चिदानन्दाः स व्याप्तः सर्ववस्तुषु । तेनास्ति च प्रियं भाति वस्तुमात्रं प्रदृश्यते ॥१७९॥
आम्नायेषु च सर्वेषु रामब्रह्मात्मकीर्तनम् । आदिमध्यावसानेषु श्रूयते गुर्वनुग्रहात् ॥१८०॥
ऐतरेयके आत्मा वा इदमेकः पुरा जनैः । आसीच्चैनैव लोकानां पालानां सृष्टिरिच्छया ॥१८१॥
कृतार्थः सर्वदेवानामन्नभुक्त्यर्थमीप्सितम् । ददावायतनं चान्नं सृष्टं तेभ्यस्ततः परम् ॥१८२॥
विचार्य स्वीयस्वामित्वं सीमाद्वारा प्रविष्टवान् । तत्रात्मानं ब्रह्म ततं दृष्ट्वैवोपेंद्रतां किल ॥१८३॥
कोऽयमात्मेति संप्रश्ने येन पश्यति जिघ्रति । इत्यादिभिर्विनिर्णीतं तदेतद्बृहदादिभिः ॥१८४॥
प्रज्ञानस्यास्य नामानि चोक्त्वा तत्सर्वता समा । एष ब्रह्मेत्यादिशब्दैर्दर्शितं चाखिलं जगत् ॥१८५॥
प्रज्ञानेत्रं च प्रज्ञाने प्रतिष्ठितेत्यनेन हि । प्रज्ञानं ब्रह्म श्रुत्यान्ते त्रिकालेष्विति दर्शितम् ॥१८६॥
तद्राम सच्चिदानन्दघनानन्तं न संशयः । तैत्तिरीयकशाखायां ब्रह्मणे लक्षणं पुरा ॥१८७॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं सङ्कीर्त्य वेदगुहादिकम् । यश्चासावश्नुते कामान्सर्वान्युगपदेव हि ॥१८८॥
फलं ज्ञानस्य चोक्त्वाऽथ तस्माद्ब्रह्मात्मकं किल । क्रमोत्पत्तिर्हि गुप्तानां कोशपंचकवेदनम् ॥१८९॥
तत्फलं तदनात्मत्वं संप्रदर्श्यान्तरत्वतः । पुच्छं ब्रह्मेति निर्णीय तदसत्सत्प्रतीतितः ॥१९०॥
असत्सद्भवति ह्येवं संकीर्त्य च ततः परम् । कामयित्वा तदेवेह स्वात्मानं जगदात्मना ॥१९१॥
कृत्वा तस्मिन् प्रविष्टैव सच्चासच्चाभवत्किल । अपानप्राणयोश्चेष्टा यस्यास्तित्वे प्रजायते ॥१९२॥
आत्मैव रस एवैष आनन्दयति चाखिलान् । भयहेतुस्तदेवेह वातादीनां प्रदर्शितम् ॥१९३॥
मानुषारभ्य ब्रह्मांता आनन्दा ये शतोत्तराः । बिंदवस्ते परब्रह्मानन्दस्येति विनिश्चितम् ॥१९४॥

निश्चय हुआ कि उस अन्तरात्माके ही नाम और रूपभेद रहते हुए भी वास्तवमें सब एक हैं। इसकी वास्तविक स्थितिमें कोई भी अन्तर नहीं आता ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ वे ही ब्रह्मा, वे ही शिव, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र है। वे ही अक्षर ब्रह्म और वे ही वेदवाक्य तथा विश्वके सम्राट् हैं ॥ १७८ ॥ वे ही सब वस्तुओंमें सत् चित् और आनन्द रूपसे व्याप्त रहते हैं। इसीके कारण सब चीजें अच्छी लगती हैं ॥ १७९ ॥ सब वेदोंमें रामरूपी ब्रह्मका कीर्तन विद्यमान है। गुरुजनोंके अनुग्रहसे आदि, मध्य, अन्त सब समयमें रामहीका कीर्तन सुनायी पड़ता है ॥ १८० ॥ ऐतरेय उपनिषदमें लिखा है कि सर्वप्रथम यह आत्मा अकेला था। उसकी यह इच्छा हुई कि हम लोकों और लोकपालोंकी सृष्टि करें ॥ १८१ ॥ ऐसा विचार होनेपर उसने सृष्टिके मनुष्य तथा देवता इन दोनोंको और उनसे पहले अन्नकी सृष्टि की ॥ १८२ ॥ तदनन्तर उन्होंने अपने-अपने स्वामित्वका विचार किया और एक सीमामें देवताओंके राजा इन्द्र बने ॥ १८३ ॥ जो कि इस संसारको देखता तथा संसारकी वस्तुएँ सूँघता है, वह कौन है ? इसका ज्ञान आदि नाम बतलाते हुए "यह ब्रह्म ही सब कुछ है" आदि वाक्योंसे उन्होंने इस प्रश्नको हल किया और बतलाया कि सत्, चित्, आनन्दसे लेकर घन पर्यन्त राम ही राम हैं। पूर्व समय तैत्तिरीयक शाखामें ब्रह्मका लक्षण बतलाते हुए रामको सत्य, ज्ञान और अनन्तकी उपाधि दी है। इस संसारमें जो एक साथ भोगोंको भोगता और खाता-पीता है, वह ब्रह्म ही है। इससे भी यह तै पाया गया कि समस्त सृष्टि ब्रह्ममयी है। सब प्राणियोंकी क्रमोत्पत्ति, पंचकोशका ज्ञान और आत्माकी विभिन्नता आदि दिखाकर बतलाया है कि सत् और असत्को प्रतीतियोंसे इन सबका मूल कारण ब्रह्म ही है ॥ १८४-१९० ॥ ऐसा कहकर कहा कि सत् और असत् यह क्या वस्तु है ? इस प्रश्नको हल करते हुए कहते हैं कि जो जगत्में आकर और जगत्की आत्मा बनकर कामनाओंको चाहता हुआ उनमें लीन हो जाता है, वही सत् है। जिसके अस्तित्वसे प्राण और अपानकी चेष्टा जायमान होती है, उसे असत् कहते हैं ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ यह आत्मा ही सारे संसारको आनन्दित करता है। वातादिका एकमात्र वही भयहेतु है ॥ १९३ ॥ मनुष्यसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त तथा इसके भी आगे जो आनन्दबिन्दु है, वह एकमात्र परब्रह्मानन्दका ही आभास है।

स यश्चायं नरोपाधावादित्येयश्च वर्तते । स एक इति ज्ञातारं पापं पुण्यं कृताकृते ।।१९५।।
न संतापयतस्त्वेवं सम्यक् सर्वं प्रकीर्तितम् । यद्ब्रह्ममहिमाऽपेक्ष्यः तद्रामेति न संशयः ।।१९६।।
छांदोग्येऽपि स वेदेति ब्रह्मोपक्रम्य ब्रह्मणः । तेजोऽबन्नादिका सृष्टिः सन्मूला सा स्थितिर्हृतिः।।१९७।।
जीवात्मना प्रवेशश्च व्याकृतिर्नामरूपयोः । श्वेतकेतोस्त्वंपदस्य तत्पदेनैक्यताऽपि च ।।
सदसंभावनार्थं च सद्भावे च बहूक्तिता ।।१९८।।
तज्ज्ञाने च गुरोर्ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षोऽपुनर्भवः ।
सत्यब्रह्माभिसंधस्येत्येवं सद्ब्रह्मकीर्तनम् । तद्रामेति परं ब्रह्म सृष्टिस्थित्यंतहेतुकम् ।।१९९।।
अन्यस्यामपि शाखायां प्रश्नप्रत्युक्तितः स्फुटम् ।मनःप्राणेंद्रियाणां यन्मनः प्राणेन्द्रियं हि तत् ।।२००।।
सर्वेषामनुभूतेः सद्विदिताविदितात्परम् । विषयो नेन्द्रियादीनामित्युक्त्वा तस्य शोधनम्२०१।।
सर्वदर्शी सर्ववेत्तृदेवानां जयकारणम् । तदज्ञानं च देवानां गुरोर्ज्ञानमुपास्तिता ।।२०२।।
विद्यैव नान्यन्मानुष्यं प्राप्य जन्म न वेद चेत् । विनष्टिर्महती तस्य चेति प्रोक्तं ततः परम् ।।२०३।।
अध्यात्माधिदेवभिदा विद्यासाधनमेव च । ब्रह्मज्ञानेन पापानां हानिस्तत्प्राप्तिरित्ययम् ।।२०४।।
ब्रह्मणो महिमा श्रुत्या कीर्तितो व्यासतः स्वयम् । तद्रामेति गुरोर्ज्ञेय नान्यथा ग्रन्थकोटिभिः ।।२०५।।
मुंडकेऽपि परा विद्या विषयो ब्रह्म ब्रह्मणः । सृष्टिश्चानेकदृष्टांतैरुक्ता तस्मिंश्च संस्थिता ।।२०६।।
लयश्चापि हि तत्रैव विश्वं सर्वं हि तन्मयम् । तारेण धनुषा वेद्य लक्ष्य आत्मार्पणं तथा ।।२०७।।

ऐसा निश्चित है। जो मनुष्यकी उपाधिमें सूर्य विद्यमान है। उस एकमात्र प्रभुको जान लेनेपर कर्म-अकर्म तथा पाप-पुण्य कुछ शेष नहीं रह जाता ।। १९४ ।। १९५ ।। तब किसी प्रकारका सन्ताप नहीं झेलना पड़ता। ये सब गुण जिसमें हैं, वह ब्रह्म ही है। उसकी महिमा देखकर निश्चित होता है कि वह ब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। इसमें संशय नहीं है ।। १९६ ।। छान्दोग्य उपनिषद्में भी कहा है कि ब्रह्मसे ही अन्नादिककी सृष्टि हुई है और उन्हींके आधारसे इस जगत्का पालन-पोषण होता है ।। १९७ ।। जीवात्माके द्वारा ही आत्माका प्रवेश होता है, किन्तु देहके आधारवश उसके नाम और रूपमें अन्तर पड़ जाता है। श्वेतकेतुको उसके पिताने शिक्षा दी थी कि उस पद यानी ब्रह्मपदके साथ एकता होना ही मुक्तिका सर्वप्रशस्त साधन है। जब तक सत् पदका लाभ नहीं होता, तब तक एकता रहती है और सद्भावके विद्यमान रहनेपर एकताके स्थानपर बहुत्व आ जाता है। उस सत् पदका ज्ञान होनेसे गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान प्राप्त होनेपर पुनर्जन्मविहीन मोक्षपद प्राप्त होता है ।। १९८ ।। सत्यरूप ब्रह्ममें जिसकी लगन लग जाती है, उसका इतना ही ब्रह्मकीर्तन है कि वह राम ही परब्रह्म हैं। उन्हींके द्वारा इस जगत्की सृष्टि, पालन और प्रलय होता है ।। १९९ ।। अन्य शाखाओंमें भी प्रश्न और उत्तरके रूपमें अनेक प्रश्न और प्रत्युक्तियाँ हुई हैं। उनसे भी यही सिद्ध होता है कि मन, प्राण और इन्द्रियोंका जो मन, प्राण और इन्द्रिय है। वह ब्रह्म ही है। वह सत्यस्वरूप ब्रह्म ज्ञान और अज्ञान इन दोनोंसे परे है। यही सबका अनुभव है। किन्तु वह इन्द्रियोंके विषयगोचर नहीं होता अर्थात् अनुभवसे ही जाना जाता है। यह कहकर उसका संशोधन किया गया है ।। २०० ।। २०१ ।। वह ब्रह्म सब कुछ देखता है, सब जानता है, देवताओंके विजयका कारण है और वह देवताओंके लिए भी अज्ञात रहता है। गुरुकी उपासना करनेसे ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है ।। २०२ ।। विद्या ही मनुष्यका मनुष्यत्व है। इस संसारमें जन्म लेकर जिसने विद्या नहीं पायी तो यह उसका एक बहुत बड़ा विनाश है। ऐसा कहा गया है ।। २०३ ।। अधिदेवको भी भेदन करनेवाले ब्रह्मज्ञानसे विद्याका साधन होता है, पापोंका नाश होता है और अन्तमें उसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ।। २०४ ।। श्रुतिने स्वयं विस्तारपूर्वक ब्रह्मकी महिमाका गान किया है। इसलिए जिज्ञासुको चाहिए कि वह गुरुसे रामका ज्ञान प्राप्त करे। वैसे करोड़ों ग्रन्थ पढ़नेसे भी उनका सच्चा ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता ।।२०५।। मुण्डक उपनिषद्में कहा गया है कि ब्रह्म और ब्रह्मका विषय जाननेके लिए गुरु प्रधान है। उक्त उपनिषद्ने अनेक दृष्टान्तोंसे सृष्टिका वर्णन किया है ।। २०६ ।। वह कहती है कि यह सारी सृष्टि उसी ब्रह्ममें स्थित है और अन्तमें उसीमें

महिमातिशयस्तस्य तद्भासा भात्यशेषकम् । अगोचरं च सर्वेषां ध्यायमानोऽनुपश्यति ॥२०८॥
वेद हि तं गुहायां योऽविद्याग्रंथिं भिनत्ति सः । कृपया वृणुते ब्रह्म यं कञ्चन सुसाधकम् ॥२०९॥
तेनैव लभ्यते साक्षान्नान्यथा यत्नतोऽपि हि । अथवा यं परेशं तं प्राप्तुमिच्छति साधकः ॥२१०॥
तेनैव हेतुना लभ्यो नान्यथा साधनान्तरैः । बलहीनादिभिर्नैव लभ्यते तैस्तु लभ्यते ॥२११॥
संन्यासयोगतः सत्त्वं शुद्धं येषां विचारतः । ते परान्तेन कालेन परिमुच्यन्ति नान्यथा ॥२१२॥
यथा नद्यः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपतः । तथा विद्वान्कला देवप्रतिष्ठायां च संक्षयम् ॥२१३॥
प्रारब्धकर्मणां साक्षान्मोक्षमेत्यपुनर्भवम् । यो वेद परमं ब्रह्म स ब्रह्म भवतीति च ॥२१४॥
सर्वं समुदितं यस्मात्तद्रामब्रह्माचिद्घनम् । पूर्णमदः पूर्णमिति कंडिकाया समासतः ॥२१५॥
आदिमध्यावसानेषु पूर्णं ब्रह्मैव निश्चितम् । पूर्णं परोक्षरूपेण जातं तत्पदसंज्ञितम् ॥२१६॥
प्रत्यक्षं त्वंपदाख्येन स्थितं भूतमयेषु च । पूर्णान्निरूपकात्पूर्णं सोपाधिकमिहोच्यते ॥२१७॥
तत्पूर्णं शास्त्रशास्तृभ्यां स्वाविद्याज्ञानतः स्वयम् । स्वखंडैकरसं लक्ष्यमादायोपनिषद्गिरा ॥२१८॥
निर्गतोपाधिकं सर्वं पूर्णमेवावशिष्यते । तद्रामं परमं ब्रह्म योगिध्येयं सनातनम् ॥२१९॥
सर्वधर्मनिषेधेन श्रुतिगीतं परात्परम् । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥२२०॥
मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥२२१॥
इत्याह भगवान् साक्षाद्वेदेऽपि तज्जलानिति । एवं सर्वासु श्रुतिषु स्मृत्यादिषु यदीरितम् ॥२२२॥

लय भी हो जायगा। क्योंकि समस्त विश्व उसीका स्वरूप है। लोगोंको चाहिए कि जैसे धनुर्धारी एक लम्बे-चौड़े धनुषसे लक्ष्य बेधना सीखता है। उसी तरह वे धीरे-धीरे उस ब्रह्मके लिए आत्मसमर्पण करना सीखें ॥ २०७ ॥ उस ब्रह्मकी बड़ी महिमा है। उसीके तेजसे यह जगत् प्रकाशमान है। वह सबसे छुपा हुआ है, किन्तु ध्यान द्वारा देखा भी जा सकता है ॥ २०८ ॥ जो प्राणी हृदयरूपिणी कन्दरामें बैठे हुए ब्रह्मको जान लेता है, वह अविद्याकी कठिन गाँठोंको काट डालता है और किसी अच्छे साधकको ढूँढ़ लेता है। वही प्राणी इन साधनोंसे उसे साक्षात् रूपसे प्राप्त कर सकता है। अन्यथा किसी प्रकार वह नहीं प्राप्त हो सकता। इसके अतिरिक्त जिस किसी भी साधन द्वारा ईश्वरको प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो तो पूर्वोक्त साधनोंसे ही वह प्राप्त हो सकता है, अन्य साधनोंसे नहीं। जो लोग कि निर्बल हैं, वे इस पदको नहीं प्राप्त कर सकते। वह तो उन्हींको मिल सकता है, जिनका हृदय संन्यास एवं सद्विचारोंसे शुद्ध हो चुका है। वे ही लोग ब्रह्मपदको प्राप्त होकर कालपाशसे मुक्त होते हैं, और लोग नहीं ॥ २०९–२१२ ॥ जिस तरह कि नदियाँ नाम और रूपके साथ अन्तमें समुद्रमें जाकर मिल जाती हैं। उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य ज्ञानरूपिणी कलाकी प्रतिष्ठामें लीन हो जाता है ॥ २१३ ॥ वह अपने प्रारब्ध कर्मोंसे अपुनर्भव मुक्तिपदको प्राप्त होता है। जो उस परब्रह्मको जानता है, वह साक्षात् ब्रह्म ही हो जाता है ॥ २१४ ॥ जिससे यह संसार बना है, वह राम ही चिद्घनस्वरूप ब्रह्म है। कण्डिकाओंमें भी संक्षिप्त रूपसे इसी प्रकार कहा गया है कि बस, वह ही पूर्ण है। बाकी सब अपूर्ण हैं ॥ २१५ ॥ आदि, मध्य और अन्त सर्वत्र ब्रह्म ही पूर्ण है। यह निश्चित है। परोक्षरूपसे भी वही पूर्ण माना जा चुका है ॥ २१६ ॥ वह प्रत्यक्षरूपसे सब प्राणियोंमें रहता है। इस पूर्णके निरूपणसे वह सोपाधि कहा जाता है ॥ २१७ ॥ वह शास्त्र और शास्ता इन भावोंसे स्वयं अपनी अविद्यमानताका नाश करता हुआ उपनिषद्की बातोंके आधारपर सब काम करता है ॥ २१८ ॥ जब कि उसकी उपाधि नष्ट हो जाती है तो वह पूर्णरूपसे शेष होकर अकेला रह जाता है। जो कुछ करने-धरनेवाले हैं, वे योगियोंके ध्येय एकमात्र राम हैं ॥ २१९ ॥ समस्त धर्मोंका निषेध करते हुए श्रुतियों द्वारा भगवान्ने स्वयं यह कहा है कि मैं इस संसारका प्रभव (उत्पन्नकर्ता) और प्रलय (नाशक) हूँ ॥ २२० ॥ हे धनंजय ! मुझसे परे और कुछ है ही नहीं। यह समस्त विश्व मुझमें उसी तरह पिरोया हुआ है, जैसे धागेमें मणियोंके दाने पिरोये रहते हैं ॥ २२१ ॥ ऐसा भगवान्ने वेदोंमें कहा है। उसी तरह श्रुतियों और स्मृतियोंमें भी कहा है कि परब्रह्म राम जो

तद्राम परमं ब्रह्म योगिगम्यमनामयम् । अनन्तनामरूपैश्च विश्वाकारं स्वमायया ॥२२३॥
भूत्वा सर्वेषु भूतेषु व्यापकं भूतचालकम् । स्फुटमप्यस्फुटं तेषामज्ञानं स्वात्मनः सदा ॥२२४॥
ब्रह्मज्ञाने परो हेतुः सर्वेऽपि बहिरीक्षकाः । मानवाः सन्ति तेनेदं चिद्ब्रह्म न प्रकाशते ॥२२५॥
परांचि खानि प्रभुणा सृष्टानि चेक्षते पराक् । वीक्षन्ते नांतरात्मानं प्रसिद्धं श्रुत्युदीरितम् ॥२२६॥
सर्वोऽपि मनुजो दासो वित्तस्त्रीतनुजान्मनाम् । किंवा स्वः कामदासोयं तेनांतश्चिन्न काशते ॥२२७॥
यदि भूयात्सदानंदःस्वात्मा साक्षी गुणात्परः । तदा किन्नाम रोचेत व्यासादन्यन्नरस्य हि ॥२२८॥
आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥२२९॥
इत्याह च श्रुतिः साध्वी बृहदारण्यगा यथम् । यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥२३०॥
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते । इति साक्षाज्जगन्नाथोऽर्जुनाय प्रोक्तवान्स्वयम् ॥२३१॥
भोगासक्तः पुमान्पूर्वमेकाकी रमते न च । एषणामयसम्बद्धो यततेऽर्थाय नित्यदा ॥२३२॥
स लोकोऽपुत्रिण श्रुत्वा पुत्रोत्पादनतत्परः । जायां सम्पादयत्यादावतियत्नेन मूढधीः ॥२३३॥
पुत्रानुत्पाद्य क्लेशेन देवतीर्थादिसेवया । कुटुम्बभरणार्थं च यागार्थं वा धनेच्छया ॥२३४॥
अनिशं दह्यते चित्ते न प्राप्नोति यथेप्सितम् । शास्त्रज्ञोऽपि सत्क्रियावानर्थदासः प्रतिग्रहम् ॥२३५॥
धनिनां यात्यगवतां ग्रामे कौलेयको यथा । अव्युत्पन्नमतानां तु का वार्ता स्वात्मचिंतने ॥२३६॥
अनेकपुण्यपुञ्जैः सत्कुले जन्माप्य साधुभिः । सज्जते सद्भिरुक्तेन मार्गेणेति यदा तदा ॥२३७॥
रामब्रह्मदर्शनार्थं मुद्रां स्वां पूरयत्युत । युक्त्या न दत्तया सद्भिर्न स्वयाऽमूलया क्वचित् ॥२३८॥

योगियोंके ध्यानगम्य और व्याधिविहीन है। अपने अनन्तरूपसे अपनी माया द्वारा विश्वके आकारवाले बनकर सब प्राणियोंमें विद्यमान रहते हुए जगत्का संचालन करते हैं। जो लोग ज्ञानसे पराङ्मुख हैं, उनके आगे स्फुट या अस्फुट भावसे सामने रहता हुआ भी वह ईश्वर नहीं दीखता ॥ २२२-२२४ ॥ उस ब्रह्मके ज्ञानमें अपनी आत्मा ही सर्वप्रधान हेतु है। संसारी जीवोंकी आँखें केवल बाहरकी चीजोंको देखती हैं। यही कारण है कि उन्हें वह चिद्ब्रह्म दृष्टिगोचर नहीं होता ॥ २२५ ॥ एक प्रसिद्ध श्रुतिमें भगवान्‌ने कहा है कि प्राणियोंकी आँखें मैंने बाहर बनायी है। इसलिए लोग अन्तरात्माको नहीं देख पाते ॥ २२६ ॥ संसारके सब मनुष्य अपने धन, स्त्री और पुत्रके दास बने रहते हैं। इसी कारण अन्तरात्मा उन्हें दीखती ही नहीं ॥ २२७ ॥ यदि उनके दास न होकर सदा आनन्दमय रहें, त्रिगुणसे परे हों और अपनी आत्माको साक्षी बनाकर सब कार्य करें तो उन्हें जञ्जालकी बातें रुचें ही नहीं ॥२२८॥ यदि लोग आत्माको जानकर यह समझ लें कि मैं ही वह परम पुरुष ब्रह्म हूँ तो फिर किसके लिए अपने शरीरको सांसारिक ज्वालामें भूनें। यह बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा गया है। इसके अतिरिक्त गीतामें स्वयं भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है कि जो प्राणी और किसी ओर अपनी चित्तवृत्ति न लगाकर आत्मासे प्रेम करता है, आत्मामें ही तृप्त रहता है और आत्मामें सन्तोष करता है। उसके लिए संसारमें कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता अर्थात् उसीसे उसका सब काम पूर्ण हो जाता है ॥ २२९-२३१ ॥ भोगोंमें आसक्त प्राणी पहले एकाएक इस ओर नहीं झुकता । वह तो तीन प्रकारकी इच्छाओंके चक्करमें पड़कर सदा धन पानेकी चेष्टा करता रहता है ॥ २३२ ॥ वह मूर्ख किसीसे यदि स्वयं को अपुत्री सुनता है तो पुत्रके उत्पादनमें तत्पर हो जाता है और इसके लिए जितनी चेष्टा कर सकता है, करता है ॥ २३३ ॥ देवताओं तथा तीर्थोंकी सेवासे यदि पुत्र उत्पन्न कर लेता है तो कुटुम्बके भरण-पोषण तथा यज्ञके लिए धनकी इच्छासे मन ही मन रात-दिन जला करता है, फिर भी अपनी कामना नहीं पूर्ण कर पाता। चाहे शास्त्रज्ञ पंडित तथा सत्तम क्रियावान् ही क्यों न हो, यदि वह धनका लोभी है तो धनियोंके घर कुत्तोंकी तरह दौड़ता रहता है। फिर यदि कोई व्युत्पन्नमति (समझदार) नहीं है तो उसके लिए आत्मचिन्तनकी चर्चा किस कामकी ॥ २३४-२३६ ॥ अनेक प्रकारके पुण्य एकत्रित होनेपर प्राणी अच्छे कुलमें जन्म और सज्जनोंकी संगति पाता है। फिर उनकी बातोंपर चलता हुआ कभी-कभी रामरूप ब्रह्मके दर्शनार्थ मुद्राओंको भी पूर्ण करनेका उपाय करता है और

तं पूरणप्रकारं तु संक्षेपेणोच्यतेऽधुना ।यथा लोकेऽञ्जनं सम्यक् संपाद्य पूर्यतेऽक्षि च ॥२३९॥
निधिः प्रत्यक्षतस्तस्य दर्शनं याति नान्यथा । एवमत्रापि तत्तुल्यं साधनं यच्चतुष्टयम् ॥२४०॥
सम्पाद्य चेक्षते शुद्धं रामेति पदमव्ययम् । मायाव्यसितवर्णं यद् ब्रह्म तत्साधनं यथा ॥२४१॥
शुद्धाविद्यामयं चेति प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः । शास्तृशास्त्रं च शास्यञ्च मिथ्याऽविद्यामयं त्रयम्२४२॥
ज्ञानोत्तरमिति मतं तस्माच्चद्वर्णमीरितम् ।
चतुष्पादसाधनं तत्पूर्णमित्यभिधीयते । प्रत्येकं साधनं यच्च चतुःसाधनमुच्यते ॥२४३॥
विवेकवैराग्यशमादिषट्कं मुमुक्षुता चेति प्रसिद्धमेतत् ।
लक्ष्माणि प्रत्येकमुशत्तमानि प्रोक्तान्यमीषां स्मृतिभूमिकासु २४४॥
साधनानां चतुष्कं च ह्येषणात्यागपूर्वकम् । संन्यासश्च गुरोः सेवाश्रयणादित्रयं ततः ॥२४५॥
पूर्वोत्तरसमाधी च पुञ्ज एकादशात्मकः । एतेषां तु मिथः साक्षात्प्राणाद्या सङ्गतिर्मया ॥२४६॥
मुमुक्षया तु न्यासादि षण्णां साक्षादिहोच्यते । समाधिरुत्तरश्चापि पृथगेवेति सम्मतः ॥२४७॥
पूर्वत्रयाणां न विना मुमुक्षा षडभिरादरः । एतैः साधनसंघैश्च पदानि पूरयत्यलम् ॥२४८॥
सर्वाणि तानि प्रोच्यन्ते श्रोतॄणामवबुद्धये । दशेंद्रियाणि तेषां तु गोलकानि नवैव तु ॥२४९॥
प्राणापानौ मनोबुद्धी तस्माद्धर्माश्च तन्मिताः । बुद्धर्ज्ञानं यथाऽसोश्च क्रिया तत्तंत्रता मता ॥२५०॥
उभयेंद्रियधर्माणामतोऽमीषामनाग्रहः । सप्तविंशतिसंख्यानि पदानीमानि साधनैः ॥२५१॥
योग्यानि लांछितुं सम्यक् पूरयत्येव सर्वथा । तदा यत्परमं ब्रह्म रामेति पदमव्ययम् ॥२५२॥
याति प्रत्यक्षतस्तेन कृतकृत्यो हि जायते । एतावता विधानेन रामतोभद्रमुद्रिके ॥२५३॥
रामश्च कथितश्चाथ सर्वतोभद्रमीर्यते । स्थानतो नामतश्चापि संशयस्यापनुत्तये ॥२५४॥

यदि उसके साथी सज्जन युक्तिसे उसे सही रास्तेपर ले जाते हैं तो वह अपनी साधना पूरी भी कर लेता है ॥२३७॥२३८॥ उसको पूर्ण करनेका प्रकार मैं यहाँ संक्षिप्त रूपसे कहता हूँ। जैसे संसारमें देखा जाता है कि आँखोंमें एक प्रकारका अंजन लगाकर लोग छिपे हुए खजानोंको भी प्रत्यक्ष देख लेते हैं। उसी प्रकार पूर्वजों द्वारा बताये हुए चारों साधनोंका सम्पादन करके प्राणी "राम" इस शुद्ध और नाशरहित पदको प्राप्त कर लेता है। जिस तरह कि मायावी और असित वर्णोंवाला ब्रह्म सद्ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन है। उसी तरह तत्त्वदर्शियोंने शुद्ध और विद्यमान साधन बतलाये हैं। शास्ता, शास्त्र और शास्य ये तीनों मिथ्या और अविद्यामय हैं ॥ २३९–२४२ ॥ संसारमें जितने भी सिद्धान्त हैं, वे सब प्राणीको ज्ञानके पास पहुँचाते हैं। जितने चतुष्पाद साधन हैं, वे पूर्ण कहे जाते हैं और प्रायः सब साधन चतुष्पाद ही हुआ करते हैं ॥ २४३ ॥ स्मृतिकी भूमिकामें विवेक, वैराग्य, शम, दम आदि छः धर्म और मोक्षकी इच्छाका उत्पन्न होना ये साधकके उत्तम चिह्न बतलाये गये हैं ॥ २४४ ॥ उन साधनोंमें सबसे पहला साधन इच्छाओंका त्याग करना है। फिर संन्यास, गुरुकी सेवा, श्रवण, भजन, कीर्तन, पूर्वोत्तर समाधि तथा एकादश प्रकारके पुञ्ज ही साधन हैं। इन सबके साथ प्राण आदिकी संगति होती है ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ मोक्ष पानेके लिए यहाँपर छः प्रकारके न्यास आदि काममें लाने चाहिये। किन्तु उत्तर समाधि इससे अलग ही रहेगी, यह बात सब लोग मान चुके हैं ॥ २४७ ॥ पूर्वकी तीन समाधियोंके बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। इन साधनसमूहोंसे सब पद सरल रीतिसे पूर्ण हो जाते हैं ॥ २४८ ॥ सुननेवालोंको बोध करानेकी इच्छासे उनको यहाँ बतला रहे हैं। उनके विचारमें कुल दस इन्द्रियाँ हैं और नौ गोलक हैं ॥ २४९ ॥ अतएव प्राण, अपान, मन, बुद्धि, इन इन्द्रियोंसे इतने ही प्रकारके धर्म उत्पन्न हुए। बुद्धिसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। प्राणेन्द्रिय अपने इच्छानुसार जो चाहे वह करे, उसके लिए कोई नियम नहीं है ॥ २५० ॥ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंके धर्मसे और प्राणके धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तरह इन सत्ताइस प्रकारके पदोंको साधन करके पूर्ण करना चाहिए। ऐसा करनेपर जो अव्यय-परब्रह्म रामका पद है, वह प्रत्यक्ष दीखने लगता है। जिससे प्राणी कृतकृत्य हो

कल्याणं सर्वतः पुंसां चिंतनाद्यस्य ब्रह्मणः । तद्भद्रवाचकं मुख्यं मंगलानां च मंगलम् ॥२५५॥
यत्र यद्व्यज्यते साक्षात्तन्नाम्ना तदुदीर्यते । अधिदैवं तथाऽध्यात्मं सर्वतोभद्रमिष्यते ॥२५६॥
विविच्यतेऽत्रोभयं च प्रोच्यते वस्तुव्यक्तये । अधिदैवे तु यद्भद्रं तदादावुच्यतेऽमलम् ॥२५७॥
अंडहृद्ब्रह्मलोकस्तु सर्वतोभद्रमुच्यते । तेनैव भद्रं सर्वेषां लोकानामिति हि स्थितिः ॥२५८॥
तत्र स्वर्णमयं वेश्म निर्मितं प्रभुणा स्वयम् । तत्पद्ममिति विज्ञेयं यत्र कार्यचितिः स्वयम् ॥२५९॥
न्यासेन सर्वसत्त्वानां गतानां सर्वयोगिनाम् । प्राणोपासननिष्ठानां ब्रह्मणा चित्प्रकाशते ॥२६०॥
ब्रह्मणा सह ते सर्व इति स्मृतिरथागमः । क्रममुक्तेस्त्वयं पंथाः श्रुतिस्मृतिमतोऽमलः ॥२६१॥
आध्यात्मे हृदये यत्तत्सर्वतोभद्रमीर्यते । तेन भद्रेण कल्याणं सर्वेष्ववयवेष्विह ॥२६२॥
तत्र यत्पुण्डरीकं तद्ब्रह्मणः स्थानमुच्यते । श्रुतावेवं प्रसिद्धिर्हि दहरांबुजवेश्मतः ॥२६३॥
साधनसंपत्संयुक्तास्तस्मिन्ये तु समाहिताः । गुरूपदिष्टया युक्त्या तेषां ब्रह्म प्रकाशते ॥२६४॥
परमः पुरुषो भूमौ स एवाधस्तथोपरि । इत्यादिश्रुत्या यत्प्रोक्तं तन्न पारोक्ष्यमित्यपि ॥२६५॥
आह चाहमेवाधस्तादित्यादिसमव्याप्तिताम् । गूढानामपि सर्वेषां देहेऽहमिति दृश्यते ॥२६६॥
माभूत्संभ्रम इत्यर्थमात्मैवेति पुनर्वचः । एकात्मरूपयोस्तयोर्भेदशङ्कानिवृत्तये ॥२६७॥
सर्वासूपनिषत्स्वेवं ब्रह्म द्वैतं सुनिश्चितम् । ब्रह्मैवेदममृतमित्याह चाथर्वणी श्रुतिः ॥२६८॥
तत्त्वमेव त्वमेवैतदिति कैवल्यगं वचः । तत्त्वमसीति छांदोग्ये ब्रह्मात्मैक्यं न भेदधीः ॥२६९॥
एकत्वं पदयोः स्पष्टं श्रुत्या यत्प्रतिपादितम् । साक्षान्मुक्तेः कारणं तद्बोधस्तेषां स एव हि ॥२७०॥

जाता है। इतने विधानोंसे रामतोभद्रकी मुद्रायें बतायीं और रामस्वरूप भी बतलाया। अब सन्देह नष्ट करनेके लिए प्रसंगवश सर्वतोभद्रका स्वरूप बतला रहे हैं ॥ २५१–२५४ ॥ जिस ब्रह्मका स्मरण करनेसे प्राणियोंका सब प्रकार कल्याण होता है, उसे लोग भद्र कहते हैं। भद्र एक वस्तु है और मङ्गलका भी मङ्गलकारी है ॥ २५५ ॥ जहाँ कि वह ब्रह्म साक्षात् रूपसे अधिदैव या अध्यात्म रीतिसे व्यज्यमान होता है, उसीको लोग सर्वतोभद्र करते हैं ॥ २५६ ॥ अब यहाँ इसकी वास्तविकताको दिखानेके लिए उन दोनों प्रकारोंको दिखलाते हैं। अधिदैवके अन्तर्गत जो भद्र रहता है, उस विमल भद्रको पहले बतलाते हैं ॥ २५७ ॥ इस अण्डको हरण करनेवाला लोक ब्रह्मलोक कहलाता है और उसीकी सर्वतोभद्र संज्ञा भी है। क्योंकि उसी लोकसे सबका कल्याण होता है और उसीके सहारे सब लोकोंकी स्थिति बनी हुई है ॥ २५८ ॥ वहाँपर प्रभुने स्वयं एक सुवर्णमय घर बनाया है। उसे पद्म या कार्यकी चेतना, जो चाहो सो कह लो ॥ २५९ ॥ न्यासके द्वारा सब प्राणियों, सब योगियों तथा प्राणकी उपासनामें लगे हुए प्राणियोंको वह नित्य पद दीखने लगता है ॥ २६० ॥ इससे ब्रह्म भी भासमान होने लगता है। यह स्मृतिका मत है और वेद भी इसी मतको स्वीकार करते हैं। वास्तवमें तो यह पवित्र मार्ग श्रुति और स्मृति इन दोनोंको मान्य है ॥ ३६१ ॥ अध्यात्मका जो हृदय है, उसे लोग सर्वतोभद्र कहते हैं। उस भद्रसे सब अवयवोंका कल्याण होता है ॥ २६२ ॥ वहाँपर जो कमल है, वह ब्रह्मका स्थान है। श्रुतियोंमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि साधनरूपा सम्पत्तिके सम्पत्तिशाली जो लोग वहाँ रहते हैं, उन लोगोंको गुरुजनोंकी उपदिष्ट युक्ति द्वारा ब्रह्म प्रकाशमान दीखने लगता है ॥ २६३ ॥ २६४ ॥ नीचे, ऊपर तथा मध्य इन तीनों स्थानोंमें वह पुरुष विद्यमान रहता है। इन श्रुतियोंमें जो कुछ कहा गया है, वह परोक्षमें नहीं प्रत्यक्ष ही जानना चाहिये ॥ २६५ ॥ प्रभुने स्वयं कहा है कि सूर्य आदिके साथ मैं संसारमें व्याप्त रहता हूँ और संसारी मूढ़ोंके शरीरमें भी रहता हूँ ॥ २६६ ॥ किसीको भ्रम न हो इस विचारसे "आत्मा एव" आदि वाक्योंको फिर-फिर दुहराया गया है। "एकात्मरूपी उस आत्माके भेदकी शंकाकी निवृत्त करनेके लिए सब उपनिषदोंमें उस ब्रह्मको अद्वैत बतलाया गया है। "ब्रह्म एव इदं अमृतं" आदि अथर्व वेदमें कहा गया है ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ 'तत्त्वमेव' तथा 'त्वमेवैतत्' इन श्रुतियोंसे तथा 'तत्त्वमसि' इस छान्दोग्यके महावाक्यसे ब्रह्मके एकत्वका प्रति-

यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥२७१॥
इदं सर्वं यदयमात्मैकमेवाद्वितीयकम् । सर्वं खल्विदमित्यादिश्रुतयो यद्ब्रुवन्ति हि ॥२७२॥
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । संपश्यन्नात्मयाजीति परमार्थं मनोर्वचः ॥२७३॥
एतादृशेन बोधेन भूत्वा ब्रह्मात्मरूपकाः । कृतकृत्याः स्वयं तीर्त्वा सच्छिष्यान्ग्राहयंति च २७४॥
अत्रोक्तं श्रुत्यभिप्रायं जानन्ति विदुषोऽखिलान् । किं बहूक्तेन चोद्दिष्टं संक्षेपेणोपसंहृतम् ॥२७५॥

नारायणाच्युत जनार्दन वासुदेव गोविन्द माधव मुकुन्द रमेश विष्णो ।
संकर्षणाज नरसिंह परावरात्मन्रामोरुगाय शिव वामन पाहि शिष्यम् ॥ २७६॥

येनेदं विकृतं विश्वं विशता येन चेतनम् । यत्स्थितं यत्प्रतिष्ठं च तस्मै सर्वात्मने नमः२७७॥
इदानीं रामतोभद्रस्याष्टोत्तरशतस्य च । नानाभेदाः प्रकथ्यन्ते लघुमुद्रान्वितस्य हि ॥२७८॥
पूर्वोक्तेऽष्टाविंशतीनां रेखावृद्धिं प्रकल्पयेत् । परिधी द्वावधिकौ तत्पंक्त्योर्लिङ्गानि योजयेत् ॥२७९॥
प्रथमे तिथिमितीशाश्चतुर्विंशत्पदात्मकाः । वाप्यः षोडशसंख्यातास्त्रयोदशपदात्मिकाः ॥२८०॥
भद्रं तत्त्वमितं चाथ द्वितीयेऽर्कमिताः शिवाः । वाप्यस्त्रयोदशमिता अष्टादशपदात्मिकाः ॥२८१॥
भद्रमर्कपदं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । एतद्रामलिंगतोभद्रशतं च वसूत्तरम् ॥२८२॥
अथवाऽऽद्ये रसमुद्रा रसेमा वापिकाश्च षट् । त्रयोदश पदाः कार्या भद्रं चन्द्रकलात्मकम् ॥२८३॥
द्वितीये पंच मुद्राश्च लिंगषट्कं च वापिकाः । तन्मिताश्च भद्रकर्मपदमग्रेऽष्टमावधि ॥२८४॥
तुर्यपंचतुर्यनेत्रचन्द्रसंख्याश्च मुद्रिकाः । षण्नेत्रनेत्रनयननेत्रेन्दुशंकरास्तथा ॥२८५॥
भद्रं षट्पदमर्काघ्रि षट्पदं विंशपादकम् । षोडशांघ्रियुग्मपादं क्रमाज्ज्ञेयं विचक्षणैः ॥२८६॥

पादन किया गया है। वही मुक्तिका कारण है और उसका बोध होनेसे तो प्राणी साक्षात् ब्रह्म ही हो जाता है ॥ २६९ ॥ २७० ॥ इस जगत्में बाहर-भीतर जो कुछ देखा और सुना जाता है, उन सबमें व्याप्त होकर वह नारायण स्थित है ॥ २७१ ॥ इस जगत्में जो कुछ है, उसमें एकमात्र वही अद्वितीय आत्मा है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" आदि वाक्योंसे श्रुतियाँ भी यही बात कहती हैं ॥ २७२ ॥ जो प्राणी संसारकी सब वस्तुओंमें अपनेको देखता है और सब प्राणियोंका प्रतिबिम्ब अपनेमें देखता है। उस आत्मज्ञानीके लिये यह कोई साधारण बात नहीं है। यह मनु भगवान्का कथन है ॥ २७३ ॥ इस प्रकारके ज्ञानसे लोग ब्रह्मात्मरूप होकर अपनेको कृतकृत्य मानते हुए स्वयं तो तरते ही हैं, साथ ही अपने अच्छे शिष्योंको भी यह उपदेशामृत पिलाकर भवसागरसे पार उतार देते हैं ॥ २७४ ॥ यहाँपर बतलायी हुई श्रुतियोंके अभिप्रायोंको विद्वान् लोग अच्छी तरह जानते हैं। अधिक कहना-सुनना व्यर्थ है। संक्षेपमें इस उद्देश्यका उपसंहार कर दिया गया है ॥२७५॥ हे नारायण, अच्युत, जनार्दन, वासुदेव, गोविन्द, माधव, मुकुन्द, रमेश, विष्णो, संकर्षण (बलराम), कृष्णके बड़े भ्राता, नरसिंह, परावरात्मन्, राम, गरुड़गामिन्, शिव, वामन ! आप इस शिष्यकी रक्षा कीजिए ॥ २७६ ॥ संसारी जीवोंमें प्रविष्ट होकर जिसने इस विश्वको चेतन किया है, जिसमें सब जीव स्थित हैं, जिसमें सब प्रतिष्ठित हैं, ऐसे सर्वात्मा रामको प्रणाम है ॥ २७७ ॥ अब लघुमुद्राके साथ-साथ एक सौ आठ रामतोभद्रोंके अनेक भेद बतलाते हैं ॥ २७८ ॥ पूर्वोक्त २८ रेखाओंकी वृद्धि करे। उसमें दो परिधि अधिक बनावे। फिर उनमें लिंगोंकी योजना करे ॥ २७९ ॥ प्रथम पंक्तिमें १५ ईश और सोलह पादोंका २५ भद्र बनावे ॥ २८० ॥ फिर दूसरी पंक्तिमें १२ शिव और १८ पादोंकी १३ वापी बनानी चाहिए । पहलेकी तरह १२ पादोंका भद्र बनावे। यह रामलिंगतोभद्र १०८ संख्याका है ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ अथवा छः मुद्रा, छः ईश और १३ पादसे छः वापिकायें बनावे और १६ पादका भद्र बनावे ॥ २८३ ॥ दूसरी पंक्तिमें पाँच मुद्रा बनावे और लिंग तथा छः ही वापी बनावे। आगे आठवीं पंक्तिसे लेकर चार, पाँच, दो, एक, इन संख्याओंकी मुद्रायें बनावे। फिर छः, दो, दो, दो, दो, एक, इस क्रमसे शिवकी रचना करे। इनमें छः पादका, बारह पादका, दो पादका, बीस पादका, सोलह पादका, चार पादका क्रमशः प्रत्येक पंक्तियोंमें भद्र बनेंगे। ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिए ॥२८४-२८६॥

अथवाऽष्टपदे मुद्रां विधाय तत्स्थलिंगकम् । रचयेत्स्थानके तुर्ये भद्रं विंशत्पदात्मकम् ॥२८७॥
सर्वत्र समसुद्रासु मध्ये च परिधिद्वयम् । मुद्रा सीमालिंगगता वाप्यर्द्धा तुर्यकोष्ठका ॥२८८॥
लिंगस्कन्धगता कोष्ठा वर्णैरिष्टैः प्रकल्पयेत् । वह्निवाप्योर्मध्यगानि पदान्युर्वरितानि तु ॥२८९॥
भद्रशृङ्खलयोग्यानि तदर्थं विनियोजयेत् । अथवाऽऽद्ये दश मुद्रा सीमापरिधयस्तथा ॥२९०॥
भद्रमर्कपदं मध्ये परिधी द्वे प्रकल्पयेत् । एवमग्रे परिधयस्तृतीयेऽष्टैव मुद्रिकाः ॥२९१॥
चतुष्पादात्मकं भद्रं पञ्च मुद्राश्च पञ्चमे । अर्कपादात्मकं भद्रं नात्र द्वौ परिधी स्मृतौ ॥२९२॥
सप्तमेऽग्निमिता मुद्रा भद्रं तुर्यपदात्मकम् । द्वये त्रयोदशेशाश्च वाप्यश्चापि चतुर्दश ॥२९३॥
भद्रं तत्त्वमितं तुर्ये नवेशा दश वापिकाः । भद्रं तत्त्वमितं षष्ठे पंचेशा वापिकाश्च षट् ॥२९४॥
भद्रं तत्त्वमितं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । अथवाऽऽद्ये पञ्चदश शिवा नेत्रेऽष्ट मुद्रिकाः ॥२९५॥
शिवद्वयं त्रिषट्पादं त्रिषट्पादा च भद्रिकाः । षट्तुर्ये पंच मुद्राः स्युर्बाणे सिंधुमितास्तथा ॥२९६॥
षष्ठे द्वे मुद्रिके मुद्रा गिरो मुद्रा गजैस्तथा । शिवद्वयं वापिके च सप्तमान्तं भवेदिदम् ॥२९७॥
भद्रमानं तत्त्वकोष्ठं षट्षोडशरवितु च । विंशषोडशभिश्चापि क्रमेणैव प्रकल्पयेत् ॥२९८॥
यद्वा द्वौ मुद्रिकामेकां मध्यलिंगं प्रकल्पयेत् । भद्रमिंदुकुलं कृत्वा तल्लिंगं रचयेद्गजे ॥२९९॥
भद्रे गजे तत्त्वकोष्ठं शेषं सर्वं तु पूर्ववत् । अथवाद्यत्रिपङ्क्तिषु पंचाब्ध्यग्निमिताञ्छिवान् ॥३००॥
मुद्रामन्ये नियोज्याथ मर्यादापरिधिस्तथा । भद्रसंख्या तु प्रथमा षट्पदा च द्वयाङ्किका ॥३०१॥
द्वितीया विंशकोष्ठा स्याद् द्वे द्वे वाप्यौ च लिंगके । रचयेत्पार्श्वयोः सम्यक् शेषं सर्वं पुरोदितम् ॥३०२॥
अथवोक्ताः प्रथमतः सप्त षट्पंचतुर्यकाः । वह्निचन्द्रचन्द्रमुद्राः सीमापरिधयस्तथा ॥३०३॥
षट्सु स्थानेषु च शिवास्तुर्यमिताः स्मृताः । विशेषस्तु लिंगद्वयं बाणैस्त्रिषट् त्रिषट् पदम् ॥३०४॥

अथवा आठ पादकी मुद्रा बनाकर चौथे स्थानमें लिंगकी रचना करे और बीस पादका भद्र बनावे ॥ २८७ ॥ जितनी समसंख्यक मुद्रायें हों, उन सबके मध्यमें दो परिधि बनावे। लिंगकी सीमाने मुद्रा और चार पादकी वापी बनावे ॥ २८८ ॥ लिंगके कन्धेके कोष्ठकोंको अपने इच्छानुसार किसी रङ्गसे रङ्ग दे। बगली और वापीके बीचवाले बचे कोष्ठकोंको, यदि वे भद्र तथा लिंगकी रचनाके योग्य हों तो उन्हें उसी काममें ले आये। अथवा आदिकी दस मुद्राओं और सीमाकी परिधियोंको आदिमें योजित कर दे ॥ २८९ ॥ २९० ॥ बीचमें बारह पादका भद्र बनावे और दो परिधियोंकी रचना करे। इसी तरह तीसरी पंक्तिमें केवल आठ मुद्राओंकी योजना करे ॥ २९१ ॥ चार पादका भद्र बनावे और पाँचवें स्थानमें मुद्रायें बनाकर बारह पादका भद्र बनावे। विशेषता केवल इतनी होगी कि इनमें दो परिधियाँ नहीं रहेंगी और चार पादका भद्र बनेगा। इसमें तेरह ईश रहेंगे और चौदह वापियाँ बनेंगी ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ चौथेमें २५ पादका भद्र बनेगा, नौ ईश रहेंगे, दस वापी बनेंगी और २५ भद्र बनेंगे। छठेमें पाँच ईश, छः वापी, पच्चीस भद्र, बाकी सब पूर्ववत् रहेंगे। अथवा आदिमें पन्द्रह शिव अट्ठाइस मुद्रायें, नौ पादके दो शिव और नौ ही पादोंकी मुद्रायें बनावे। चौथेमें छः या पाँच मुद्रायें, पाँचवेंमें सात मुद्रायें, छठेमें दो मुद्रायें, सातवेंमें एक मुद्रा, आठवेंमें एक मुद्रा, दो शिव और दो वापी रहेंगी। यह क्रम आदिसे लेकर सातवें स्थान तक चलेगा ॥ २९४–२९७ ॥ इनमें भद्रका मान पच्चीस, छः, सोलह, बारह, छः, बीस, सोलह, इस प्रकार है। बनानेवालेको चाहिए कि क्रमशः इनकी योजना करे ॥२९८॥ अथवा दो मुद्रायें बनाकर एकको लिंगके मध्यमें रक्खे और सोलह कोष्ठकोंका भद्र बनाकर सातवेंसे लिङ्गकी रचना करे ॥ २९९ ॥ सातवेंमें पच्चीस कोष्ठकोंका भद्र बनावे। बाकी सब पूर्ववत् रक्खे। अथवा आदिकी तीन पंक्तियोंमें पाँच, सात, तीन, संख्याओंका शिव बनावे ॥ ३०० ॥ मुद्राके मध्यमें मर्यादा और परिधिकी रचना करे। भद्रकी संख्या पहले जितनी ही रहेगी और छः, दो या बारह पाद उनमें रहेंगे ॥ ३०१ ॥ दूसरी पंक्ति बीस कोष्ठकोंकी रहेगी और लिंगके बगलमें दो वापियोंकी रचना करे। बाकी सब पूर्ववत् रहेगा ॥ ३०२ ॥ अथवा आदिसे लेकर छठीं पंक्ति तथा सात, छः,

वाप्योऽपि तन्मिताः कार्या भद्राणि वक्ष्यमाणतः । तच्चकोष्ठं कलाकोष्ठं तुर्यकोष्ठं च षट्पदम् ॥३०५॥
षट्पदं च कलाकोष्ठं शेषं सर्वं पुरोदितम् । अथवा प्रथमाद्यावत्पञ्चमस्थानकावधि ॥३०६॥
षट् षट् पञ्च तुर्यवह्निमुद्राश्च मध्यशङ्करान् । तुर्यनेत्राक्षिनेत्राक्षिमर्यादापरिधींस्तथा ॥३०७॥
विशेषस्तु लिंगद्वयं बाणैः षट् त्रिषट् पदम् । भद्रसंख्येन्दुकलेन्दुकलाकर्तुरसात्मिकाम् ॥३०८॥
प्रकल्प्यारचयेद्बुद्ध्या शेषं सर्वं पुरोदितम् ।एवं नानाविधा भद्रा बहवः सन्ति भो द्विज ॥३०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे श्रीरामदासविष्णुदास-सम्वादे लघुरामतोभद्रविस्तारो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामलिंगतोभद्र तथा अनेक लिंगतोभद्रोंका रचनाप्रकार)

श्रीरामदास उवाच

पूर्वोक्तश्रेष्ठमुदीर्य रामतोभद्रविस्तरान् । वदाम्यहं तवाग्रे हि विष्णुदास शृणुष्व तान् ॥ १ ॥
तिर्यगूर्ध्वरक्तरेखा एकषष्टिमिताः शुभाः । अन्तात्कृष्णरक्तशुक्लपीताः परिधयः क्रमात् ॥ २ ॥
द्वादशांते पीतकृष्णरक्तशुक्लाः पुनः स्मृताः । पञ्चमः पीतवर्णोऽपि सर्वतोभद्रमालिखेत् ॥ ३ ॥
बहिः पंक्तौ द्वादशांते सीमापरिधयः स्मृताः । पीता वा लोहिताः कार्या मध्ये द्वौ परिधी स्मृतौ ॥४॥
ततो मध्यगेहयोर्द्वे मुद्रिके वेदवर्णके । चतुःपार्श्वेषु चत्वारि नामानि पूर्ववल्लिखेत् ॥ ५ ॥
कोणगेहेषु कोणेन्दुस्त्रिपदः शुक्लवर्णकः । एकादशपदा कृष्णा शृङ्खला पीतवर्णका ॥ ६ ॥
दशपदा शृङ्खलाऽन्या बहुरी हरिता स्मृता । एकोनविंशत्पदजा भद्रं रक्तं नवात्मकम् ॥ ७ ॥

चार, पाँच, तीन, दो अथवा एक मुद्रा बनावे और सीमाकी परिधियोंकी ओर छहों स्थानोंमें चार-चार शिवोंकी रचना करे । विशेषता केवल इतनी रहेगी कि पाँच या नौ-नौ पादोंके लिंग बनेंगे । वापियाँ पूर्वोक्त संख्याके अनुसार ही रहेंगी, किन्तु भद्रकी संख्या वक्ष्यमाण संख्याके अनुसार रहेगी । कुछ भद्र पच्चीस कोष्ठकोंके, कुछ सोलह कोष्ठकोंके, कुछ चार कोष्ठकोंके, कुछ छः कोष्ठकोंके, फिर छः कोष्ठकों, कुछ सोलह कोष्ठकोंके, इस प्रकार भद्र बनेंगे । बाकी सब पहलेके समान ही होंगे । अथवा पहली पंक्तिसे पाँचवीं पंक्ति पर्यन्त ॥ ३०३-३०६ ॥ छः, पाँच, चार, तीन मुद्राएँ बनावे । बीचमें चार, दो, दो, दो, दो शिवकी रचना करे और मर्यादा तथा परिधियोंको ठीकसे बनाकर रक्खे ॥ ३०७ ॥ विशेषता इतनी है कि पाँच, तीन, छ, तीन, छः पादका लिंग बनावे । इसमें भद्रकी संख्या सोलह, सोलह तथा छः रहेगी । इस तरह कल्पना करके अपनी बुद्धिसे रचना करे । बाकी सब पूर्ववत् रहेंगे । इस प्रकार हे द्विज ! इस भद्रके बहुतसे भेद हैं, ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं—हे विष्णुदास ! अब मैं तुम्हारे आगे पूर्वोक्त रामतोभद्रका विस्तार बतलाता हूँ । उसे तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १ ॥ भद्र बननेवालेको चाहिए कि बेंड़ा और सीधी ६१ रेखायें खींचे । अन्तमें काली, लाल, सफेद तथा पीली परिधियाँ बनावे ॥ २ ॥ बारहवीं पंक्तिके आगे पीत, कृष्ण, रक्त तथा शुक्ल रङ्गकी सीमापरिधियाँ रहेंगी । चाहे तो पाँचवाँ स्थान पीले रङ्गसे भी बना सकता है । बारहके बाद बाहरकी पंक्तिमें पीले या लाल रङ्गकी परिधि रहेगी । बीचमें और दो परिधियाँ बनेंगी ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर मध्यके दोनों घरोंमें चार रङ्गोंकी दो मुद्राएँ बनेंगी । इसके अनन्तर चारों बगल पूर्ववत् चार नाम लिखने चाहिए ॥ ५ ॥ कोणवाले कोष्ठकमें तीन पाद और शुक्लवर्णका इन्दु बनावे । ग्यारह पादकी शृङ्खला बनावे और उसे कृष्ण वर्णकी रखे । दस पादकी एक दूसरी शृङ्खला पीले रङ्गसे बनावे । हरे रङ्गसे उन्नीस पादकी

त्रयोदशपदा वापी सितोऽन्यत् त्रिपदात्मकम् । रक्तं भद्रं पीतभद्रं तिर्यङ्नवपदात्मकम् ॥ ८ ॥
भद्रया शृंखला रक्ता द्विपदैव समन्ततः । अष्टमुद्रात्मकं रामतोभद्रं ते मयोदितम् ॥ ९ ॥
त्यक्त्वा पीतां शृंखलां वा लिंगं कृष्णं त्रिषट्पदम् । खण्डवाप्यश्चतुष्पादजा भद्रं लोहितं रसैः ॥१०॥
तिर्यग्भद्रं पीतवर्णं त्रिषिजं वेदजं तथा । लिङ्गोर्ध्वं मालिका रक्ता त्रिपदा वा त्रिलोचना॥११॥
अष्टमुद्रात्मकं चैतत्सलिंगं रामभद्रकम् । तिर्यगूर्ध्वं त्रिपञ्चाशद्रेखाः सर्वं हि पूर्ववत् ॥१२॥
मुद्रिकापरिधीनां च षट्कं स्वेच्छं प्रपूरयेत् । चतुर्मुद्रात्मकं चैतत्सलिंगं वापि पूर्ववत् ॥१३॥
तिर्यगूर्ध्वं त्रिसप्ताश्च रेखाः कार्याः सुलोहिताः । तासु चतुर्षु पार्श्वेषु कार्याः परिधयः क्रमात् ॥१४॥
कृष्णरक्तशुक्लपीता द्वादशांते पदेषु च । कार्यः पुनश्चतुःपार्श्वे परिधिः पीतवर्णकः ॥१५॥
तदग्रे रक्तवर्णश्च परिधिर्हि समन्ततः । ततोऽष्टपदः परितः परिधिः पीतवर्णकः ॥१६॥
ततः षष्ठपदोर्ध्वं च पुनः पीताः प्रकारयेत् । आद्यस्थाने च सीमाख्याः पीता परिधोऽथवा ॥१७॥
रक्ता वेदमिताः कार्या द्वादशांते पदेषु च । कोणगृहे पूर्ववच्च मध्ये च मुद्रिकात्रयम् ॥१८॥
ततो द्वितीयस्थाने हि चंद्रः कृष्णा च शृंखला । सप्तपदा वल्लरी च चतुर्दशसु पादिका ॥१९॥
वल्ल्योर्नियोजनं कार्यं रक्तं भद्रं हि षट्पदम् । त्रयोदशपदा कार्या वाप्या वेदमिताः सिताः ॥२०॥
षड्विंशत्पदजाः कार्यास्त्रिशताः कृष्णवर्णकाः । वाप्यस्त्रयोदश लेख्या हि लिंगमध्ये पदेषु च ॥२१॥
रामाति रामनामानि मध्या कंकणवत्स्वपि । मूर्द्धा चतुष्पदा ज्ञेयः पादाभ्यां कण्ठ ईरितः ॥२२॥
चतुष्पदौ लिंगपार्श्वौ पादस्कन्धौ हि षट्पदौ । शिवनेत्रस्थले शुक्ले द्वे पदे रचयेद्धिया ॥२३॥
वाप्युपरिष्ठाच्छेषाणि यानि ह्यष्टपदानि च । तेषु रक्तानि वाप्यादौ पञ्च पीतानि चोपरि ॥२४॥
मध्येऽथ सर्वतोभद्रे पूर्ववच्चैव नो परम् । सलिङ्गरामभद्रत्रयमकं मयेरितम् ॥२५॥

वल्लरी बनाये । लाल रङ्गसे नौ पादका भद्र बनावे ॥ ६ ॥ ७ ॥ सफेद रङ्गसे तेरह पादकी वापी बनावे । तीन पादसे लाल रङ्गका एक दूसरा भद्र बनावे । रङ्गसे नौ पादका एक तिरछा भद्र और बनावे ॥ ८ ॥ इन दोनों भद्रोंका शृङ्खला लाल रङ्गका और चारों तरफसे केवल दो पादका रहेगा । इस प्रकार अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र मैंने तुमको बतलाया ॥ ९ ॥ अथवा पीला शृंखलाको छोड़कर काले रङ्गसे नौ पादका लिङ्ग बनावे । चार पादकी एक खण्डवापी और छः पादसे लाल रङ्गका भद्र बनाये ॥ १० ॥ ऊपर बतलाये तिरछे और पीले भद्रमें सात या चार पादका भद्र बनावे । लिंगके ऊपर लाल रङ्गकी मालिका या तीन पादके शिव बनावे ॥ ११ ॥ यह अष्टमुद्रात्मक सलिङ्गरामतोभद्र है । पूर्ववत् सीधी और बड़ी तिरपन रेखायें खींचे ॥ १२ ॥ मुद्रा और परिधियोंके छः छः पादोंको अपने इच्छानुसार पहलेके समान पूर्ण करे । यह चतुर्मुद्रात्मक रामलिङ्गतोभद्र कहाता है । इसके सिवाय सब बातें पूर्ववत् रहती हैं ॥ १३ ॥ लाल रङ्गसे सीधी और बड़ी तिहत्तर रेखाएं खींचे और क्रमशः चारों बगल परिधियाँ बना दे ॥ १४ ॥ बारह पादोंका काला, लाल तथा शुक्ल वर्णोंका भद्र बनावे । फिर उसके चारों ओर पीले वर्णकी परिधि बनाये ॥ १५ ॥ उसके आगे चारों ओरसे लाल रंगकी परिधि बनावे । फिर आठ पादका परिधि उसके चारों तरफ बनावे ॥ १६ ॥ ऊपरकी ओर छः पादका परिधि पीले रंगसे बनावे । आदिम स्थानमें सीमा नामकी परिधियाँ अथवा लाल रंगसे चार परिधियाँ बनावे । पहलेकी तरह कोणके घरोंमें तीन मुद्रायें बनावे ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर दूसरे स्थानमें चन्द्रमा बनाकर काले वर्णकी शृङ्खला बनावे । सात पादकी वल्लरी अथवा चौदह पादोंसे वल्लरियोंका निर्माण करे और लाल रङ्गसे छः पादका भद्र बनावे । सात पादसे सफेद रंगकी चार वापियाँ बनाये ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर काले रंगसे छब्बीस पादोंके तीन शिव बनावे । लिंगके मध्यवाले काष्ठकोंमें तेरह वापियाँ बनावे ॥ २१ ॥ फिर उनमें स्याहीसे कङ्कणके समान रामके नाम लिखे । इसमें चार पादसे मस्तक, दो पादसे कंठ, चार पादसे लिंग और पार्श्वभाग, छः पादसे स्कन्ध, तीन पादसे पैर बनावे । सफेद रंगके दो पाद बाकी रहने दे ॥ २२ ॥ २३ ॥ अथवा ऊपरसे नौ आठ पाद बाकी बचे हैं,

एतद्द्वादशमुद्राभी रामलिंगात्मकं शुभम् । अतिरम्यं विचित्रं च रामतुष्ट्यर्थमीरितम् ॥२६॥
तिर्यगूर्ध्वमंकसप्त रेखाः सर्वं हि पूर्ववत् । चतुर्मुद्रात्मकं भद्रं यथा तद्वच्च मध्यमे ॥२७॥
आद्ये तिस्रः स्थले मुद्रा सीमापरिधयस्तथा । मध्ये त्रयस्त्रयो ज्ञेया ह्यन्ते द्वौ द्वौ शुभौ स्मृतौ॥२८॥
ततः षोडशमुद्राभी रामतोभद्रमीरितम् । अन्तर्गेहे कृते लिंगे सलिंगं षोडशात्मकम् ॥२९॥
तिर्यगूर्ध्वभूमिबाणवेदरेखाः ४५१ सुलोहिताः । अष्टमुद्रात्मकं मध्ये रामतोभद्रकं लिखेत् ॥३०॥
तिर्यगूर्ध्वं परिधयः पीताश्चैव समन्ततः । द्वादशांते रचनीया बहिः परिधयोऽपि च ॥३१॥
पूर्ववत् कोणगेहानि मुद्राणां च क्रमाऽधुना । उक्ते द्वे मुद्रिके पूर्वं तदधो वेदमुद्रिकाः ॥३२॥
मध्ये सर्वत्र परिधिद्वयं नान्यस्थलं कदा । ततो रसमिता ह्यष्टविशेषः पञ्चमे स्थले ॥३३॥
षण्मुद्रिका वेद वाप्यश्चतुरशीतिपादकाः । वाप्यन्तर्गतकुण्डञ्च कृष्णं द्वादशपादजम् ॥३४॥
वापीपार्श्वेषु भद्राणि चत्वारि लोहितानि च । पृथक् पृथक् पञ्चदशपदैर्ज्ञेयानि तानि हि ॥३५॥
षष्ठे स्थाने द्वादशैव मुद्रा ह्यग्रे चतुर्दश । षोडशाष्टादशवाथ विंशद्वाविंशमुद्रिकाः ॥३६॥
चतुर्विंशाथ षड्विंशा ह्यष्टाविंशत्सुमुद्रिकाः । त्रिंशद्वात्रिंशन्मुद्राणां स्थाने षोडश मुद्रिकाः ॥३७॥
वाप्यः षोडश विज्ञेया मध्ये वापाद्वय स्मृतम् । अष्टोत्तरसहस्रं च रामतोभद्रमीरितम् ॥३८॥
तिर्यगूर्ध्वं हि वस्वंकबाणरेखाः सुलोहिताः । सर्वलिंगरामभद्रवत्समकं पुरेरितम् ॥३९॥
तदत्र मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रास्थले शिवः । द्वितमातपदैः कार्यः कृष्णवर्णः प्रकारयेत् ॥४०॥
षट्त्रिंशद्रामनामानि वै लेख्यानि च हस्ततः । कृष्णा तत्कर्णिका कार्या चतुर्भिश्च शिरः स्मृतम्॥४१॥
कटिश्चतुष्पदैः कार्या पार्श्वे द्वादशपादजे । स्कन्धा विंशत्पदैर्ज्ञेयो मूलं विंशत्पदात्मकम् ॥४२॥

उनके आदिवाले तीन पादोंको लाल रङ्गसे और पाँच पाले रङ्गसे रंगे ॥ २४ ॥ उनके बीचमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना करे। इस प्रकार मैंने तुमको तीन भद्रका रामतोभद्र बतलाया ॥ २५ ॥ यह द्वादश मुद्राओंसे युक्त लिङ्गात्मक रामतोभद्र अतिरम्य, विचित्र तथा रामको प्रसन्न करनेवाला है ॥ २६ ॥ सीधी और बेंड़ी उन्नासी रेखायें पहलेकी तरह खींचे । ऊपर जैसे चतुर्मुद्रात्मक रामतोभद्र बतला आये हैं, उसी तरह बीचमें भद्रकी रचना करे ॥ २७ ॥ आदिके पादमें तीन मुद्रायें बनाकर पहलेके समान सीमाकी परिधि बनावे। बीचमें तीन तीन और अन्तमें भी तीन-तीन परिधियाँ देना शुभ है ॥ २८ ॥ यह षोडशमुद्रात्मक रामतोभद्र मैंने तुमको बतलाया। यदि इसके मध्यभागमें लिंगकी भी रचना कर दी जाय तो यही सलिङ्ग-रामतोभद्र हो जायगा ॥ २९ ॥ उनका क्रम इस प्रकार है—सीधी और तीखी ४५१ रेखायें लाल रङ्गसे खींचे। उनके बीचमें अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र लिखे ॥ ३० ॥ इसके चारों ओर पीले रङ्गकी परिधियाँ रहेंगी। वे परिधियाँ द्वादश पादके अन्तरपर बनायी जायँगी ॥ ३१ ॥ पहलेकी तरह कोणवाली मुद्राओंका क्रम बतला रहे हैं। सबके ऊपर दो मुद्रायें और उनके नीचे चार मुद्रायें बनावे ॥ ३२ ॥ सब तरफ दो परिधियाँ बनावे। इसके बाद छः मुद्रायें बनावे। फिर आठ मुद्रायें बनावे। पञ्चम स्थानमें कुछ विशेषता है, सो बताते हैं ॥३३॥ इसमें छः मुद्रायें, चौरासी पादकी चार वापी और उस वापीके अन्तर्गत काले रङ्गसे बारह पादका कुंड बनावे ॥ ३४ ॥ वापीके आस-पास लाल रङ्गके चार भद्र बनावे। वे अलग-अलग पन्द्रह पादोंके बनाये जायँगे ॥३५॥ छठीं पंक्तिमें केवल बारह ही मुद्रायें रहेंगी। आगे चौदह, फिर बीस, बाईस, चौबीस, छब्बीस, अट्ठाइस, तीस, बत्तीस, ये मुद्रायें रहेंगी। और अपने स्थानपर पूर्ववत् वे सोलह मुद्रायें रहेंगी। इसमें वापी भी सोलह रहेंगी और मध्यमें दो वापियाँ रहेंगी। इस तरह मैंने तुम्हें अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रका क्रम बतलाया ॥ ३६-३८ ॥ लाल रङ्गसे खड़ी बेड़ी और ५९८ रेखाएँ। जैसा कि मैंने पहले ही सर्वलिङ्गात्मक रामतोभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया है। उसी तरह यहाँ भी बनावे। उसके बीचमें मुद्राकी जगहपर बहत्तर पादके शिवकी रचना करे। इसका वर्ण लाल रहेगा। अथवा हाथसे ३६ रामनाम लिखे। काले रंगसे उनकी कर्णिका और चार पादसे सिर बनावे ॥ ३९-४१ ॥ चार पादकी कटि

षड्विंशपादजे ज्ञेये द्वे वापीशकले सिते । द्वाभ्यां शिवस्य वै नेत्रे सिते शेषपदानि हि ॥४३॥
पञ्च रक्तानि चत्वारि पीतानि शिवकर्णयोः ।
स्थाने तृतीये मुद्राश्च तिस्रो द्वौ शंकरौ वरौ । स्थाने चतुर्थे मुद्राश्च चत्वारस्त्रिशिवाः स्मृताः ॥४४॥
एवमग्रे क्रमेणैव विशेषं कथयाम्यहम् । स्थाने चतुर्थशे मुद्राश्चतुर्दश शिवास्तथा ॥४५॥
पञ्चदशे हि विज्ञेया एवमग्रे धिया लिखेत् । कोणस्थगेहयोः कार्यौ द्वौ शिवौ च त्रिषट्पदौ ॥४६॥
अष्टमुद्रात्मके भद्रे सलिंगे च कृतौ यथा । मुद्राभ्यो लिंगवृद्धिर्हि कर्तव्या चरमावधि ॥४७॥
स्थाने द्वाविंशतितमे मुद्रा द्वादश चेरिताः । त्रयोविंशच लिङ्गानि बहिः परिधयस्ततः ॥४८॥
एवं युक्त्या रचनीयं शेषं सर्वं पुरोदितम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं त्विदम् । रामासनं वरिष्ठं हि राघवस्यातितुष्टिदम् ॥४९॥
तिर्यगूर्ध्वं बाणशास्त्रभूमिरेखाश्च पूर्ववत् । अष्टमुद्रात्मकं मध्ये परिधयः समंततः ॥५०॥
तिर्यगूर्ध्वं द्वादशांते बहिः परिधयस्तथा । मध्ये सीमापरिधिद्वयं नान्यत्स्थले कदा ॥५१॥
नेत्रस्थाने वेदमुद्रा विशेषश्च तृतीयके । तिस्रो वाप्यस्त्रिमुद्राश्च ह्यष्टमे च चतुर्थके ॥५२॥
पञ्चमे दश मुद्राश्च शेषं सर्वं पुरोदितम् । अष्टोत्तरशतं रामतोभद्रं ते मयोदितम् ॥५३॥
तिर्यगूर्ध्वं त्रिपूर्णाभिरेखाः कार्याश्च पूर्ववत् । सर्वलिंगं रामभद्रत्रयमेके पुरोदितम् ॥५४॥
तदत्र मध्ये लेखा हि मध्यमुद्रा स्थले सिता । वापी कार्या दादशांते परिधयश्च पूर्ववत् ॥५५॥
तिर्यगूर्ध्वं शुभा कार्या बहिः परिधयस्तथा । स्थाने तृतीया मुद्राश्च तिस्रो द्वौ शंकरौ वरौ ॥५६॥
चतुर्थे वेदमुद्राश्च त्रयस्ते शंकराः स्मृताः । पञ्चमे पंच मुद्राश्च चत्वारश्च हरा वराः ॥५७॥
षष्ठे स्थाने च षण्मुद्राः शिवाः सप्त प्रकीर्तिताः । कोणस्थगेहयोः कार्यौ द्वौ हरौ च त्रिषट्पदौ ॥५८॥

बनावे। बारह पादसे दोनों पार्श्व और बीस पादका स्कन्ध बनावे ॥ ४२ ॥ छब्बीस पादसे शिव तथा वापी बनावे और दोनोंमें शिवजीके सफेद नेत्र बनावे ॥ ४३ ॥ बाकी कोष्ठकोंमेंसे पाँच कोष्ठक लाल रङ्गसे, चार पीले रङ्गसे दसवीं तथा तीसरी पंक्तिमें तीन मुद्रायें और दो शंकर बनावे। चौथी पंक्तिमें चार मुद्रायें और तीन शिव बनावे ॥ ४४ ॥ इस क्रमसे बनानेके अनन्तर इसमें जो कुछ विशेषतायें हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। चौदहवीं पंक्तिमें चौदह मुद्रायें और चौदह ही शिव बनावे ॥ ४५ ॥ यही क्रम पन्द्रहवीं पंक्तिमें भी रहेगा। बाकी सब अपनी बुद्धिके अनुसार पूर्ण करे। दोनोंके कोनों घरोंमें नौ-नौ पादके दो शिव बनावे ॥ ४६ ॥ अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्रका लिङ्गसंयुक्त कर लेनेके बाद अन्तपर्यन्त मुद्राके अनुसार लिङ्गकी वृद्धि करता जाय ॥ ४७ ॥ बाईसवीं पंक्तिमें बारह मुद्रायें बनावे। उसीमें तेईस लिङ्ग बनाकर बारहकी परिधियाँ भी बनावे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार युक्तिके साथ इस रामतोभद्रको बनावे। शेष अंश पहलेके समान ही रहेगा। यह अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामतोभद्र रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ ४९ ॥ सीधी तथा तिरछी १६५ रेखायें खींचे और अष्टमुद्रात्मक रचना करे। उसके बीचमें भद्र रहेगा। चारों ओरसे बारहवीं पंक्तिके बाद परिधियाँ रहेंगी। मध्यमें सीमा-परिधियें रहेंगी और किसी पंक्तिमें कुछ भी नहीं रहेगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसकी दूसरी पंक्तिमें चार मुद्रायें रहेंगी। तीसरी पंक्तिमें कुछ विशेषता है, सो बतलाते हैं। आठवीं और चौथी पंक्तिमें क्रमशः तीन वापी और तीन मुद्रायें बनावे ॥ ५२ ॥ पाँचवीं पंक्तिमें दस मुद्रायें बनाकर बाकी पूर्ववत् रक्खे। यह मैंने तुमको अष्टोत्तरशत रामतोभद्र बतलाया ॥ ५३ ॥ सीधी और तीखी २०३ रेखाएँ खींचे। फिर पूर्वोक्त रीतिके अनुसार भद्रत्रयात्मक रामतोभद्रकी रचना करके उसीके समान समस्त लिंगोंकी स्थापना करे ॥ ५४ ॥ इसके मध्य पहली पंक्तिमें सफेद रंगका एक भद्र और सफेद रङ्गकी ही एक वापी बनावे। फिर पहलेकी तरह बारह पंक्तियोंके बाद परिधियां बनावे ॥ ५५ ॥ बाहरकी तीखी और सीधी परिधियाँ बनाकर तीसरी पंक्तिमें पाँच मुद्रा और दो शिव बनावे ॥ ५६ ॥ चौथी पंक्तिमें चार मुद्रा और तीन शंकर बनावे। पाँचवीं पंक्तिमें पाँच मुद्रा और चार शिवकी रचना करे ॥५७॥

अष्टमुद्रात्मके भद्रे सलिंगे च कृतौ यथा । स्थाने च सप्तमे मुद्राः सप्त लिंगानि चाष्ट वै ॥५९॥
कोणस्थगृहयोः कार्यौ द्वौ हरौ च त्रिपट्पदौ । एतदष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं स्मृतम् ॥६०॥
षष्ठे स्थाने कोणगेहेऽथवा शंभुं न कारयेत् । स्थाने तृतीये मुद्रैका वाप्यौ द्वौ द्वौ हरावपि ॥६१॥
एतच्छतात्मकं भद्रं रामलिङ्गात्मकं मया । अष्टोत्तरशते रामतोभद्रे बह्विसद्मनि ॥६२॥
षडेव मुद्राः कर्तव्या अंते स्थाने हि पंचमे । पंच मुद्राः पञ्च वाप्यः शतमुद्रात्मकं त्विदम् ॥६३॥
अष्टोत्तरसहस्रे श्रीरामतोभद्रके वरे । बाणस्थाने हि षड् वाप्यो वेदमुद्राः प्रकल्पयेत् ॥६४॥
सहस्रराममुद्राणां रामतोभद्रमीरितम् । अष्टोत्तरसहस्रे श्रीरामलिंगात्मकाख्ये ॥६५॥
स्थाने चतुर्दशे कोणगेहे शंभुं न कारयेत् । मुद्रास्थाने च द्वौ वाप्यौ मध्ये कारि न कारयेत् ॥६६॥
सहस्ररामसुद्राणां रामलिंगात्मकं त्विदम् । षोडश रामतोभद्रे चाद्यस्थाने विदिक्षु च ॥६७॥
मध्यमुद्रास्थले वाप्यस्तिस्रः कार्या महत्तमाः । त्रयोदशात्मकं चैतद्रामतोभद्रमीरितम् ॥६८॥
अथवाऽऽद्यस्थले मध्यमुद्रासु वेददिक्षु च । वेदवाप्योऽपरे स्थाने [illegible] विदिक्षु च ॥६९॥
वाप्यश्चैतद्विज्ञातव्यं नवमुद्रात्मकं शुभम् । रामतोभद्रकं [illegible] ॥७०॥
तिर्यगूर्ध्वं बाणपूर्णभूमिरेखाश्च पूर्ववत् । त्रयोदशात्मकं मध्ये स्थाने तु मुद्रिकात्रयम् ॥७१॥
मुद्रामध्ये हि द्वौ वाप्यौ परिधयोऽर्कमध्यमाः । द्वौ द्वौ सर्वत्र संयोज्यौ तत्त्वमुद्रात्मकं त्विदम् ॥७२॥
ज्ञातव्यं रामतोभद्रं तोषदं तत्त्ववादिनाम् । कोणगेहेषु लिङ्गानि नेत्रस्थाने हि पश्चिमे ॥७३॥
कार्यं वापीस्थले लिंगं पञ्चविंशतिमं वरम् । पञ्चविंशतिमुद्राभी रामलिंगात्मकं त्विदम् ॥७४॥
अथोच्यन्ते दैवतानि रामासनभवानि च । मध्येऽथ सर्वतोभद्रे समावाह्याथ तत्सुरान् ॥७५॥
ततो बहिस्तु लिंगेषु रुद्रं वापीषु वै नलः । सुग्रीवं तत्र भद्रेषु तिर्यग्भद्रेषु वै गणम् ॥७६॥
पीतासु च शृङ्खलासु ह्यंगदं परिकल्पयेत् । पीतशृङ्खलाभावे तं तिर्यग्भद्रे चतुष्पदे ॥७७॥

छठीं पंक्तिमें छः मुद्रा तथा सात शिव बनावे । कोनेवाले दो घरोंमें नौ नौ पादके शिव बनावे ॥ ५८ ॥ लिंगयुक्त अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र बना लेनेपर उसकी सातवीं पंक्तिमें सात मुद्रा और आठ लिंग बनावे ॥ ५९ ॥ कोनेवाले दोनों घरोंमें नौ-नौ पादोंके दो शिव बनावे। इस तरह अष्टोत्तर-शतलिंगात्मक रामतोभद्र बतलाया ॥ ६० ॥ छठीं पंक्ति अथवा कोणवाले घरमें शिवको न बनावे। तीसरी पंक्तिमें एक मुद्रा, दो वापी तथा दो शिवकी रचना करे ॥ ६१ ॥ यह शतलिंगात्मक रामतोभद्र बतलाया । पूर्वोक्त अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी चौदहवीं पंक्तिमें केवल छः मुद्रा, अन्तवाली पाँचवीं पंक्तिमें पाँच मुद्रा और पाँच वापी बनावे तो इसे लोग शतमुद्रात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ पूर्वोक्त अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी पाँचवीं पंक्तिमें छः वापी और चार मुद्रायें बनावे तो इसे लोग सहस्र-रामतोभद्र कहते हैं । रामलिंगात्मक अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी चौदहवीं पंक्तिके कोणवाले घरमें सिर-की रचना न करे और मुद्राके स्थानमें बीचों-बीच दो वापियें बना दे और कुछ न बनावे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसे लोग रामलिंगात्मक सहस्ररामतोभद्र कहते हैं । षोडश रामतोभद्रकी पहली पंक्तिकी तीनों दिशाओंमें मध्यमुद्राके स्थानमें बड़ी-बड़ी तीन वापियें बनाये तो लोग इसे त्रयोदशात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥६७॥६८॥ अथवा पहली पंक्तिके मध्यमें मुद्राओं तथा चारों ओर चार वापी बनावे और तीन दिशाओंमें तीन वापीकी रचना करे ॥ ६९ ॥ रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला यह नौ मुद्रात्मक रामतोभद्र है ॥ ७० ॥ बेड़ी और सीधी पन्द्रह रेखायें पूर्ववत् त्रयोदशभद्रात्मक रामतोभद्रके समान खींचे। उसके बीचमें तीन मुद्रायें बनावे ॥ ७१ ॥ मुद्राके बीचमें दो वापियोंकी रचना करे और मध्यमें सूर्य बनाकर परिधि बनावे। दो-दो पादको परिधियाँ बनावे। इसे लोग तत्त्वमुद्रात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥ ७२ ॥ यह रामतोभद्र तत्त्ववादियोंके लिए आनन्ददायक है। कोण-के घरोंमें लोकोंकी रचना करे। पश्चिमकी ओर नेत्रके स्थानमें पच्चीस लिंग बनावे। यह पञ्चविंशतिमुद्रात्मक रामतोभद्र कहलाता है ॥७३॥७४॥ अब रामासनके देवताओंको बतलाते हैं। सर्वतोभद्रके बीच तथा सर्वतोभद्रके

कृष्णवर्णशृङ्खलासु समावाह्य विभीषणम् । बल्लीषु च जांबवन्तं मैंदं खंडेंदुषु स्मरेत् ॥७८॥
द्विविधं परिधिष्वेव मुद्रायां राघवं स्त्रिया । मुद्रायाः पश्चिमे चाथ दक्षिणे ह्युत्तरं पुरः ॥७९॥
लक्ष्मणं भरतं चापि शत्रुघ्नं वायुनन्दनम् । पूज्यपूजकयोर्मध्ये ज्ञेया पूर्वदिगत्र हि ॥८०॥
सितापरिधिष्वत्रैव सुषेणं परिचिन्तयेत् । सर्वत्र पदमात्रेषु चिंतयेत्सर्ववानरान् ॥८१॥
बहिस्त्रिपरिधिष्वेव त्रिवेणीं परिचिंतयेत् । चतुर्दिक्पालाभिमुखा हरा रुद्राश्च वापिकाः ॥८२॥
कर्तव्या वात्माभिमुखाः कार्या वा पद्मसंमुखाः। चतुर्दिक्पालाभिमुखा एवं भद्रेषु मेऽकथि ॥८३॥
पक्षत्रये वरिष्ठास्ता वदंतीत्थं मुनीश्वराः । पूर्वोक्तभद्रे देवान् हि संपूज्यादौ ततः परम् ॥८४॥
समारभेद्राघवस्य श्रेष्ठां पूजां सविस्तराम् । पद्मस्य कर्णिकायां च ससीतं राघवं न्यसेत् ॥८५॥
अष्टपद्मदलेष्वेव तस्यावरणदेवताः । पूजयेदिति सर्वत्र बुधैस्तु परिकथ्यते ॥८६॥
पद्मे सङ्कोचमालक्ष्य प्रकारान्तरमुच्यते । सर्वतोभद्रकमले धान्यराशौ घटं न्यसेत् ॥८७॥
जलपूर्णं च तस्यास्ये केतकीपत्रपूरिते । ताम्रपात्रं विस्तृतं च न्यस्य तंडुलपूरितम् ॥८८॥
तत्र वस्त्रे सावरणं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥८९॥
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । सर्वेषु रामभद्रेषु मुद्रापूज्यो रघूत्तमः ॥९०॥
पूजकश्च शिवो ज्ञेयो भद्राद्या रामपार्षदाः । श्रीरामलिंगतोभद्रमत एवोच्यते बुधैः ॥९१॥
एवं नानाविधा भेदा बहवः संति भो द्विज । श्रीमद्रामतोभद्राणां येषां संख्या न विद्यते ॥९२॥
मया भेदाः कियंतोऽत्र तवाग्रे विनिवेदिताः । नरैर्बुद्ध्या प्रकर्तव्याः पूजनार्थं रमापतेः ॥९३॥
हेमतंतुभवं चैवं कार्यमासनमुत्तमम् । राघवार्थं महच्छ्रेष्ठं रौप्यतन्तुभवं तु वा ॥९४॥

देवताओंका आवाहन करे। इसके बाद बाहरके लिंगोंमें रुद्रका, वापियोंमें नलका, भद्रोंमें सुग्रीवका, तिरछे भद्रोंमें गोका ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ और पीले रङ्गकी शृङ्खलाओंमें अङ्गदका आवाहन करे। आदि भद्रकमें पीत शृङ्खलाका अभाव हो तो तिरछे भद्रमें अङ्गदका आवाहन करे ॥ ७७ ॥ कृष्णवर्णकी शृंखलाओंमें विभीषणका, बल्लियोंमें जाम्बवान्‌का और खण्डेन्दुओंमें मैन्दका आवाहन करे ॥ ७८ ॥ परिधिके भीतरवाली मुद्रामें सीताके साथ-साथ रामका आवाहन करे। मुद्राके पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तथा पूर्वकी ओर क्रमशः लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न और हनुमान्‌जीका आवाहन करे। यहाँ पूज्य-पूजक दोनोंके लिए पूर्वदिशा उत्तम मानी गयी है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ सफेद रङ्गकी परिधियोंमें सुषेणका तथा बाकी सब स्थानोंमें सारे वानरोंका आवाहन करना चाहिए। बाहरकी तीनों परिधियोंमें त्रिवेणीका आवाहन करे। हर, रुद्र और वापिकाओंको चारों दिक्पालोंके अभिमुख कर दे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ यह विद्या बतानेवाले आचार्यने मुझे बतलाया है कि प्रत्येक भद्रमें हर, रुद्र तथा वापिकाओंको अपने सम्मुख करे या पद्मके आकारका बना दे अथवा दिक्पालोंके अभिमुख कर देना चाहिए ॥ ८३ ॥ मुनिगण ऐसा कहते हैं कि इन तीनों पक्षोंमें सर्वश्रेष्ठ पक्ष यह है कि पूर्वोक्त भद्रमें देवता आदिकोंकी पूजा करके रामचन्द्रजीका विस्तृत पूजन प्रारम्भ करे। पद्मकी कर्णिकामें सीताके सहित रामचन्द्रजीका न्यास करे। आठ दलवाले कमलमें उनके आवरण-देवताओंका पूजन करना चाहिए। पण्डितोंका कथन है कि यह नियम सर्वत्रके लिए है ॥ ८४–८६ ॥ यदि कमलमें कोई सङ्कोच दीखे तो उसके लिए प्रकारान्तर बतलाते हैं। सर्वतोभद्रके कमलमें धान्यकी राशिपर घट स्थापन करे ॥ ८७ ॥ केतकीके पत्रसे भरे हुए घटके मुँहपर चावलसे भरा एक बड़ा-सा तामेका बर्तन रक्खे। उसके वस्त्रपर आवरणदेवताके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा करे। हर-एक भद्रमें पत्थरकी, लकड़ी, लोहेकी, चूने-ईंटकी, बालूकी, रङ्गसे रङ्गकर बनायी हुई, मनसे कल्पित अथवा मणिमयी इन आठ प्रकारोंमें जो रुचे, उसकी प्रतिमा बनाकर श्रीरामका पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ शिवजी पूजक हैं और भद्र आदि रामजीके पार्षद हैं। इसीलिये विद्वान् लोग इसे श्रीरामलिंगतोभद्र कहते हैं ॥ ९१ ॥ हे द्विज ! इस तरह श्रीरामतोभद्रके बहुतसे भेद हैं। जिनकी कोई संख्या ही नहीं है ॥ ९२ ॥ यह मैंने उनमेंसे कुछ भेद बतलाये हैं। लोगोंको उचित है कि रामकी पूजाके लिए बुद्धि

अथवा पट्टकूलस्य चैव कार्यं वरासनम् । अथवा लेखयेत्पत्रे सर्वाभावे द्विजोत्तमैः ॥९५॥
भूर्जपत्रे विलिखितं विशेषात्सिद्धिदं नृणाम् । वा वस्त्रोपरि लेख्यं वा कर्तव्यं चित्रन्ततुभिः ॥९६॥
विनासनेन या पूजा सा पूजा निष्फला भवेत् । रामभद्रासने पूजा सा पूजाऽतिफलप्रदा ॥९७॥
यद्यद्रामपरं कर्म तत्तच्च द्विजपुंगवैः । रामासनस्थितं रामं पुरस्कृत्य समारभेत् ॥९८॥
रामभद्रासनैर्हीनं यत्कर्म तच्च निष्फलम् । तस्मादेवं स्वमेवैतत्कर्तव्यं रामपूजने ॥९९॥
अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं हि यत् । आसनं तद्वरिष्ठं हि राघवस्यातितोषदम् ॥१००॥
तदधो रामतोभद्रमष्टोत्तरसहस्रकम् । तदधो रामलिंगाख्यमष्टोत्तरशतात्मकम् ॥१०१॥
तदधो रामतोभद्रमष्टोत्तरशतात्मकम् । तदधः पञ्चविंशच्छ्रीरामभद्रासनं शुभम् ॥१०२॥
तदधो रामतोभद्र षोडशात्मकमीरितम् । त्रयोदशात्मकं रामतोभद्र तदधः स्मृतम् ॥१०३॥
द्वादशं च नवाख्यं च ह्यष्टमुद्रात्मकं तथा । चतुर्मुद्रात्मकं वापि पूर्वतश्चापरं ह्यधः ॥१०४॥
एवं क्रमेण ज्ञेयानि रामभद्रासनानि हि । श्रेष्ठासनेषु या पूजा तस्याः श्रेष्ठं फलं स्मृतम् ॥१०५॥
लघ्वासनेषु या पूजा तादृशं तत्फलं स्मृतम् । एवं ज्ञात्वा फलं बुद्ध्या श्रेष्ठमेवासन शनैः ॥१०६॥
यत्नेनैव प्रकर्तव्यं रामोपासनं मानवैः । प्रतिवर्षं नवीनं च कार्यमासनमादरात् ॥१०७॥
एकस्मिन्ह्यासने पूजा न वर्षादूर्ध्वतः शुभा । एवं शिष्यासनानां च भेदाः पृष्टास्त्वया पुरा ॥१०८॥
तवाग्रे हि मयाख्याताः श्रीरामस्यातितोषदाः । त्वत्पृष्टरामतोभद्रवर्णनस्य प्रसङ्गतः ॥१०९॥
स्मारिता रामचंद्रस्य किंचिल्लीला मयाऽद्य हि । वदाम्यहं तवाग्रे तां त्वं शृणुष्व द्विजोत्तम ॥११०॥
प्रत्यब्दं श्रावणे मासे गुरुवाक्याद्रघूत्तमः । चत्वारिंशद्धङ्कमितसुवर्णस्य पृथक् पृथक् ॥१११॥

लगाकर भद्रोंमें उनकी रचना करें ॥ ९३ ॥ उपासकको चाहिए कि सुवर्णके तारोंका एक सुन्दर आसन रामचन्द्रजीके लिए बनवावे। यदि सुवर्णके तारका न हो सके तो चाँदीके तारका ही बनवा ले। वह भी न बन पड़े तो रेशमके सूतका अच्छा-सा आसन बनवावे। यदि इनमेंसे कोई भी न बनवा सके तो किसी पत्तेपर आसन लिखवा ले ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ भूर्जपत्रपर लिखा हुआ आसन विशेष सिद्धिदायक होता है। इसके अतिरिक्त कपड़ेपर लिखवा ले या रङ्गीन सूतसे बुनवा ले ॥ ९६ ॥ बिना आसनके जो पूजा की जाती है, वह व्यर्थ होती है और रामभद्रासनके ऊपर जो पूजाकी जाती है, वह अतिशय फलदायिनी हुआ करती है ॥ ९७ ॥ द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको चाहिए कि श्रीरामचन्द्रके प्रीत्यर्थ जो-जो कार्य करना हो, वह रामको सामने करके उनके आगे ही करे ॥ ९८ ॥ रामभद्रासनसे रहित जो काम होता है, वह निष्फल होता है। इससे रामके पूजनमें आसनकी रचना अवश्य करे ॥ ९९ ॥ जो अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगात्मक भद्र है, वह रामचन्द्रजीको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ १०० ॥ उससे कुछ मध्यम अष्टोत्तर-सहस्र रामतोभद्र है। उससे भी मध्यम अष्टोत्तरशत रामलिङ्गात्मक भद्र है ॥ १०१ ॥ उससे मध्यम अष्टोत्तरशत रामतोभद्र तथा उससे मध्यम पञ्चविंशत् श्रीरामभद्रासन है ॥ १०२ ॥ उससे मध्यम षोडशात्मक रामतोभद्र है। उससे मध्यम त्रयोदशात्मक रामतोभद्र है ॥ १०३ ॥ उससे भी न्यून क्रमशः द्वादशात्मक, नवात्मक, अष्टमुद्रात्मक, चतुर्मुद्रात्मक भद्र है ॥ १०४ ॥ इस क्रमसे रामचन्द्रके आसनोंको जानना चाहिए। जितने ही श्रेष्ठ आसनपर पूजा की जाती है, वह उतनी ही अधिक फलवती हुआ करती है ॥ १०५ ॥ जितने ही साधारण आसनपर पूजा की जाती है, उतना ही साधारण फल भी प्राप्त होता है। ऐसा समझकर रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि बुद्धि लगाकर धीरे-धीरे श्रेष्ठ आसनकी ही रचना करें और प्रतिवर्ष पूजनके समय नयी-नयी किस्मके आसन बनाया करें ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ एक किस्मके आसनपर एक वर्षसे अधिक समयतक पूजन करना अच्छा नहीं होता। हे शिष्य! तुमने पहले हमसे आसनोंका भेद पूछा था। सो रामको प्रसन्न करनेवाले उन भेदोंको मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया। हाँ, तुम्हारे पूछे हुए रामतोभद्रके प्रसङ्गवश मुझे रामचन्द्रजीकी एक लीला याद आ गयी है। हे द्विजोत्तम! उसे मैं

प्रत्यहं लक्षलिंगानि कृत्वा पत्न्या युतोऽर्चयेत् । अष्टोत्तरसहस्रैश्च लिंगैर्भद्रमुत्तमम् ॥११२॥
तच्छंभोरासनं ज्ञेयं महाप्रीतिविवर्द्धनम् । तन्मध्यगतकमले चैकं लिंगं निवेश्य च ॥११३॥
षोडशैररुपचारैस्तत्संपूज्य स रघूत्तमः । हेममुद्रां दक्षिणार्थं दत्त्वा संपूज्य भूसुरम् ॥११४॥
तस्मै लिंगं सासनं तद्ददौ प्रत्येकमादरात् । एवं स कोटिलिंगानि त्रयस्त्रिंशद्दिनैर्ददौ ॥११५॥
एवं व्रतं श्रावणे हि प्रतिवर्षेऽकरोद्विभुः । दिव्यैराभरणैर्वस्त्रैर्द्विजा रामार्पितैर्विभुः ॥११६॥
हेमतंतुसमुद्भूतान्यकरोदासनानि सः । उद्यापनं च हवनं चकार रघुनंदनः ॥११७॥

विष्णुदास उवाच

अष्टोत्तरसहस्रैर्यल्लिङ्गतोभद्रमीरितम् । कथं कार्यं तस्य भेदा विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥११८॥
हेमतंतुसमुद्भूतमकरोदासनं विभुः । स हैमान्यपि लिंगानि चाकरोच्च वराणि हि ॥११९॥
दिव्यैराभरणैर्वस्त्रैरकरोत्स द्विजार्चनम् । अशक्तौ तद्व्रतं सिद्ध्येत्कथं तद्वक्तुमर्हसि ॥१२०॥

श्रीरामदास उवाच

शक्तौ च पट्टकूलस्य कंबलस्याथवा नरैः । कार्यं तदथवा वस्त्रे तंतुभिश्च प्रकारयेत् ॥१२१॥
लेख्यं वस्त्रेऽथवा रंगैर्लेख्यं पत्रादिसत्स्थले । अशक्तौ रजतान्येव लिंगानि ताम्रजानि च ॥१२२॥
किंवा पारदभूतानि स्फाटिकान्यौपलानि वा । दारुजानि चंदनैर्वा गोमयेन मृदाऽपि वा ॥१२३॥
कृत्वा लिंगानि पूज्यानि स्वशक्त्या पूजयेद्द्विजान् । इदानीं लिंगतोभद्ररचनां ते वदाम्यहम् ॥१२४॥
तिर्यगूर्ध्वं रक्तरेखा द्वे शतेऽष्टादश स्मृताः । तासां पदानामेकेन पूर्णसंख्या भवेदिह ॥१२५॥
पीताः परिधयः कार्याः षट्पदान्तेऽत्र सर्वतः । युगेंदुसंमितास्तेषु लिंगादि रचयेद्धिया ॥१२६॥
चतुष्कोणेषु शशिनस्त्रिपदैः परिकल्पयेत् । तदग्रे शृङ्खला पञ्चपादैः कार्या च सर्वतः ॥१२७॥

तुम्हारे आगे कह रहा हूँ, सुनो ॥१०८॥१०९॥११०॥ गुरु वसिष्ठके आज्ञानुसार रामचन्द्रजी प्रत्येक श्रावणमास-में चौवालिस टंक सुवर्णसे प्रतिदिन एक-एक लाख शिवलिंग बनाकर अपनी स्त्रीके साथ उनका पूजन करते थे। अष्टोत्तरसहस्रलिंगात्मक जो भद्र है, वह उत्तम माना जाता है। वही श्रीशिवजीका प्रीतिवर्द्धक आसन है। उसके मध्य विद्यमान कमलमें एक लिंग रखकर वे उसका षोडशोपचारसे पूजन करते और दक्षिणाके निमित्त ब्राह्मणोंको सुवर्णमयी मुद्राका दान दिया करते थे। वह लिंग तथा आसन भी उन्हीं ब्राह्मणोंको मिला करता था। इस तरह श्रीरामचन्द्रजी तैंतीस दिनोंमें एक करोड़ शिवलिंग बनवाकर दान दिया करते थे ॥१११-११५॥ वे सर्वव्यापक भगवान् प्रतिवर्ष श्रावणमासमें इस व्रतका पालन करते थे। उसी समय विविध प्रकारके दिव्य आभरण पा-पाकर रामराज्यके ब्राह्मण सुशोभित होते थे ॥ ११६ ॥ उस समय रामचन्द्रजीने सुवर्ण-तन्तुका ही आसन बनवाया और उद्यापन तथा हवन कराया ॥ ११७ ॥ विष्णुदासने कहा—अभी आपने जो दो अष्टोत्तरसहस्र लिंगतोभद्र बतलाया है, उसके भेद किस प्रकार करने चाहिये। सो विस्तारपूर्वक आप हमें बतलाइये ॥ ११८ ॥ मैंने माना कि रामचन्द्रजी सुवर्णतन्तुका आसन और सुवर्णके लिंग बनवाते थे। दिव्य वस्त्रों और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। लेकिन जिसमें उतनी सामर्थ्य नहीं है, उसका व्रत किस प्रकार सिद्ध हो, यह भी हमें बतलाइये ॥ ११९ ॥ १२० ॥ श्रीरामदासने कहा कि यदि न सामर्थ्य हो तो रेशमके या कम्बलके सूतसे अथवा साधारण कपड़ेपर आसनकी बुनाई करा ले ॥ १२१ ॥ अथवा पत्र आदिपर रङ्गसे लिखवा ले। यदि सुवर्णमय लिंग बनवानेकी शक्ति न हो तो चाँदी, ताँबा, पारा, स्फटिकमणि, लकड़ी, चन्दन, गोबर अथवा मिट्टीका लिंग बनाकर पूजन करे। जितनी अपनी सामर्थ्य हो, उतने ही ब्राह्मणोंका पूजन करे। अब मैं तुम्हें लिंगतोभद्रकी रचनाका प्रकार बतला रहा हूँ ॥ १२२-१२४ ॥ बेंड़ी और खड़ी २१८ रेखाएँ लाल रङ्गसे खींचे। इस प्रकार रेखा खींचनेसे पूर्वोक्त २१८ कोष्ठक बन जायँगे ॥ १२५ ॥ इस भद्रमें छः छः पाद-वाली पीले रङ्गकी परिधियाँ बनेंगी। उनमें अपनी बुद्धिसे चौदह लिंग आदि बनावे ॥ १२६ ॥ उसके चारों कोनोंमें तीन-तीन पादके चन्द्रमा बनावे। उसके आगे चारों तरफ पाँच पादकी शृंखलायें बनायी जायँगी

एकादशपदा वल्ली वापी त्रिदशपादिका । अष्टादशपदैः शम्भुः सर्वत्रैवं लिखेत्क्रमात् ॥१२८॥
तत्र प्रथमपरिधेरर्वाक् लिंगानि योजयेत् । त्रिरेकादशसंख्यानि वाप्यस्त्रेवाधिकास्ततः ॥१२९॥
भद्रेऽर्काकपदैः कार्या द्वितीये लिंगसंततिः । एकत्रिंशन्मिता कार्या भद्रे नवनवात्मके ॥१३०॥
तृतीये नवनेत्रेशसंख्या भद्रे तु षट् पदे । तुर्ये षड्विंशलिंगानि भद्रेऽर्काकपदे मते ॥१३१॥
पञ्चमे तुर्यनेत्रेशा भद्रे नवनवात्मके । षष्ठे द्वादशलिंगानि भद्रे षट् षट् पदे स्मृते ॥१३२॥
सप्तमे लिंगविततिरेकोनविंशत्संख्यकाः । भद्रेऽर्काकपदे ज्ञेयेऽष्टमे सप्तदशेश्वराः ॥१३३॥
भद्रे नवनवपदे नवमे मनुशंकराः । भद्रे शशिकलासंख्ये दशमेऽर्कमिताः शिवाः ॥१३४॥
भद्रेऽर्काकपदे ज्ञेये तथा त्वेकादशे दश । शिवा नव नवपदे भद्रे ज्ञेये मनोरमे ॥१३५॥
द्वादशे सप्त लिंगानि भद्रे चन्द्रकलात्मके । त्रयोदशे पञ्च हरा भद्रेऽर्काकपदे मते ॥१३६॥
चतुर्दशे त्रिलिंगानि भद्रे नवनवात्मके । चरमे ततस्तु रचयेत्सर्वतोभद्रमुत्तमम् ॥१३७॥
खंडेंदुस्त्रिपदः कोणे शृंखला षट्पदात्मिका । त्रयोदशपदा वल्ली वापी तत्त्वमितिर्मता ॥१३८॥
भद्रे षोडश षोडशपदेऽन्तः परिधिर्भवेत् । तदन्तरे पञ्च पञ्च पदैः पद्मं समुद्धरेत् ॥१३९॥
विचित्रं चित्रवर्णं च श्वेतेन्दुः शृङ्खलाऽसिता । वापी शुक्लाऽसितः शंभू रक्तं भद्रे प्रकल्पयेत् ॥१४०॥
नीला वल्लीश्वरस्कंधकोष्ठाश्चित्रा यथारुचि । यत्र यत्र पदानीह शेषभूतानि तानि तु ॥१४१॥
यथायोग्यं धिया तत्र शृङ्खलार्थे नियोजयेत् । शुक्लरक्तकृष्णवर्णा ह्येते परिधयस्त्रयः ॥१४२॥
वा पूर्वपीतपरिधिं दत्त्वा देवास्त्रयस्ततः । एतेषां परिधीनां वै पदान्यष्टाधिकानि हि ॥१४३॥
नोक्तानि पूर्वसंख्याया ज्ञात्वेत्थं वृद्धिमाचरेत् । अग्रेऽप्येवं हि बोद्धव्यं परिधीनां चतुष्टये ॥१४४॥
एतदष्टोत्तरदशशतं भद्रं लिंगोद्भवं स्मृतम् । एकस्त्वयं प्रकारो हि प्रकारांतरमुच्यते ॥१४५॥

॥ १२७ ॥ ग्यारह पादकी वल्ली और तेरह पादकी वापी बनायी जायगी। अट्ठारह पादके शंभु बनाये जायँगे। इसी क्रमसे लिखे ॥ १२८ ॥ उसमें पहली परिधिके पहले लिंगोंकी योजना करे। इसके अनन्तर चौंतीस वापियाँ बनावे ॥ १२९ ॥ तत्पश्चात् भद्रमें बारह बारह पादके ३१ लिंग बनावे। फिर तीसरी पंक्तिमें नौ-नौ पादके २९ भद्र बनाये। फिर छः पादके दो भद्रोंकी रचना करे। चौथी पंक्तिमें बारह-बारह पादके २६ लिंग बनावे ॥ १३० ॥ १३१ ॥ पाँचवीं पंक्तिमें नौ-नौ पादके २४ शिव बनावे। छठीं पंक्तिमें छ-छः पादके भद्रोंमें १२ लिंगोंकी रचना करे ॥ १३२ ॥ सातवीं पंक्तिमें बारह पादवाली १९ लिंगोंकी श्रेणी बनावे। आठवीं पंक्तिके नौ पादके भद्रोंमें १७ शिव बनावे। नवीं पंक्तिके सोलह-सोलह पादात्मक भद्रोंमें १४ शङ्कर बनावे। दसवीं पंक्तिके बारह-बारह पादके भद्रोंमें बारह शिव बनाये ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ ग्यारहवीं पंक्तिके नौ-नौ पादात्मक भद्रोंमें दस शिवकी रचना करे ॥ १३५ ॥ बारहवीं पंक्तिके सोलह-सोलह पादात्मक भद्रोंमें सात लिंगोंकी रचना करे। तेरहवीं पंक्तिके बारह-बारह पादात्मक भद्रोंमें पाँच शिव बनावे ॥१३६॥ चौदहवीं पंक्तिके नौ-नौ पादात्मक भद्रोंमें तीन लिंगोंकी रचना करे। अन्तमें उत्तम सर्वतोभद्र बनावे ॥ १३७ ॥ कोणभागमें तीन पादका एक खंडेन्दु और छः पादकी शृंखला बनावे। तेरह पादकी वल्ली और पच्चीस कोष्ठककी वापी बनावे ॥ १३८ ॥ भद्रमें सोलह-सोलह पादकी परिधि बनावे। इसके बाद पाँच-पाँच पादका कमल बनावे ॥ १३९ ॥ उस कमलका रङ्ग चित्र-विचित्र रहेगा। दल श्वेतवर्ण और शृङ्खला काले वर्णकी रहेगी। वापी सफेद, शिव शुक्ल, लाल भद्र, नील वल्ली रहेगी और वल्ली तथा शिवके स्कन्धवाले कोष्ठक अपने इच्छानुसार चित्र-विचित्र वर्णके बनाये। इससे भी जो पाद शेष बचें, वे अपने इच्छानुसार रङ्गसे रङ्गे जाकर शृंखलानिर्माणके काममें आ जायँगे। अन्तकी तीन परिधियाँ सफेद, लाल और काले वर्णकी रहेंगी ॥१४०-१४२॥ अथवा पहली परिधि पीले रङ्गकी बनाकर तीन परिधियाँ और बनावे। इन सब परिधियोंमें आठ पाद अधिक रहा करेंगे ॥ १४३ ॥ किन्तु ये पाद पूर्वसंख्याकी गणना करते समय नहीं गिनाये हैं। ऐसा समझकर वृद्धि करे। इसके आगे चारों परिधियोंमें भी यही क्रम रहेगा ॥ १४४ ॥ यही अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रका क्रम है। यह एक प्रकार हुआ। अब दूसरा प्रकार

द्वे शते सप्त पञ्चाशद्रेखाः पूर्वोत्तराः स्मृताः । पीताः परिधयः कार्याः षट्पदांतेऽत्र सर्वतः ॥१४६॥
सप्तेंदुसंख्या रचयेल्लिङ्गानां योजयेद्धिया । सर्वतस्तन्मिता चाद्या नवनेत्रमिता परा ॥१४७॥
सप्ताक्षिसंमिता त्वन्या वक्ष्यमाणानि धारय । बाणाक्षाग्निनयना नेत्रनेत्राब्ध विंशतिः ॥१४८॥
गजेंदुगिरिचन्द्रा च बाणेंदुहुतभुक् शशी । रुद्रा दशान्यष्टमिता षट् चत्वारि त्रिचन्द्रमाः ॥१४९॥
प्रतिपंक्तिमेकवापी लिंगेभ्यस्त्वधिका भवेत् । चतुर्विंशत्पदं लिंगं वापी चास्विदुपादिका ॥१५०॥
भद्रसंख्या क्रमेणैव ज्ञातव्याद्वक्ष्यमाणतः । पूर्वपंक्तौ च पञ्चम्यां नवम्यां हि तथैव च ॥१५१॥
त्रयोदश सप्तदशयोर्भद्रं विंशपदैः स्मृतम् । द्वितीयायां च षष्ठ्यां च दशम्यां चतनौ तथा ॥१५२॥
चतुर्दश्यां स्मृतं भद्रं पञ्चविंशपदैः स्मृतम् । तृतीयायां च सप्तम्यामकादश्यां तथैव च ॥१५३॥
पञ्चदश्यां हि पंक्तौ च भद्रं त्रिंशपदात्मकम् । षड्विंशद्भिः पदैर्भद्रं चतुर्थ्यां च ततः स्मृतम् ॥१५४॥
वस्वर्कषोडशीष्वेव भद्रं षोडशपादजम् । सर्वकोणेषु त्रिपदश्चन्द्रः शृङ्खलिकापदैः ॥१५५॥
पञ्चभिरेकादशभिर्लता कार्या ततोऽन्तरे । सर्वतोभद्रकं रम्यं चतुर्विंशस्तु वापिका ॥१५६॥
भद्रं नवपदं सर्वपार्श्वेष्वेवं प्रकल्पयेत् । परिध्यन्तर्भवेत्पद्मं रक्तं चित्रं यथारुचि ॥१५७॥
कृष्णं लिंगं शृङ्खलाऽपि भद्रं रक्तं च वापिका । श्वेतः शशी सितो ज्ञेयस्तथा नीला स्मृता लता ॥१५८॥
शिष्टानीह पदान्येव भद्राद्यर्थं नियोजयेत् । पीतशुक्लकृष्णरक्ता ह्यन्ते परिधयः स्मृताः ॥१५९॥
अष्टोत्तरसहस्राख्यं लिंगतोभद्रकं त्विदम् । एवं विकल्पतः प्रोक्ता रचना द्विविधा मया ॥१६०॥
अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि प्रकारांतरमुत्तमम् । सैकविंशच्छतैर्लिंगैर्लिङ्गतोभद्रमादरात् ॥१६१॥
अष्टाष्टरेखाः प्राग् याम्याः पश्चिमोत्तरदिक्षु च । सप्ताशीतिपदेष्वेव लिङ्गानां पञ्च पंक्तयः ॥१६२॥
तासु प्राथमिकायाश्च विस्तारः कथ्यतेऽधुना । पृथक् कोणेषु त्रिपदैः शशी श्वेतस्तदग्रतः ॥१६३॥

बतलाते हैं ॥ १४५ ॥ पूर्व और उत्तरके क्रमसे २५८ रेखायें खींचे । छः-छः पादके अन्तमें चारों ओर परिधियाँ बनावे ॥ १४६ ॥ अपनी बुद्धिके अनुसार १७ लिंग बनावे । चारों ओर १७ लिंग रहेंगे, किन्तु आदिकी पंक्ति में २९ लिंग रहेंगे ॥ १४७ ॥ इसके आगे चलकर २७ लिंग बतलानेवाले हैं । सो भी समझ लो । इसके आगे २५, फिर २३, फिर २२, फिर २०, इसके बाद १७, फिर १८, फिर १३, ग्यारह, दस, आठ, छः, चार, तीन और एक लिंग रहेंगे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ प्रत्येक पंक्तिमें लिंगकी अपेक्षा एक वापी अधिक रहेगी । चौबीस पादका लिंग और अठारह पादकी वापी बनेगी ॥ १५० ॥ आगे चलकर जैसा बतलानेवाले हैं, उस क्रमसे भद्र-की संख्या जाननी चाहिए । पहली, पाँचवीं, नवीं, तेरहवीं और सत्रहवीं पंक्तिमें बीस पादका भद्र बनाना चाहिए । दूसरी, छठीं, दसवीं तथा चौदहवीं पंक्तिमें पच्चीस पादका भद्र बनाना चाहिए । तीसरी, सातवीं, ग्यारहवीं तथा पन्द्रहवीं पंक्तिमें तीस पादका भद्र बनावे । चौथी पंक्तिमें छब्बीस पादका भद्र बनावे ॥१५१-१५४॥ आठवीं, बारहवीं तथा सोलहवीं पंक्तिमें सोलह पादका भद्र बनाना चाहिए । हर एक कोनेमें तीन पादका चन्द्रमा बनेगा और पाँच पादकी शृङ्खला बनेगी । इसके अनन्तर ग्यारह पादकी वल्ली बनायी जायगी । तब सर्वतोभद्र बनेगा और चौबीस पादकी वापी बनेगी । सब ओर नौ पादका भद्र बनेगा और परिधिके बीचमें लाल रङ्गका अथवा जैसी अपनी रुचि हो, वैसा कमल बनावे ॥ १५५-१५७ ॥ लिंग और शृङ्खला काली, भद्र लाल, वापी सफेद, चन्द्रमा सफेद और वल्ली काली रहेगी ॥ १५८ ॥ बाकी सब भद्र आदिके लिए नियत कर दे । पीत, शुक्ल, काली और लाल, क्रमशः अन्तमें ये परिधियाँ रहेंगी ॥ १५९ ॥ यह अष्टोत्तरसहस्र नामका लिंगतोभद्र है । इस तरह विकल्पसे मैंने रचनाके दो प्रकार बतलाये ॥ १६० ॥ अब मैं तुम्हें दूसरा और उत्तम प्रकार बतलाता हूँ । इक्कीस सौ लिंगोंसे इस लिंगतोभद्रकी रचना होगी ॥ १६१ ॥ अट्ठासी रेखायें पूर्व-पश्चिम तथा अट्ठासी ही रेखायें उत्तर-दक्षिण खींचे । सत्तासी पादोंमें केवल लिंगके लिए पाँच पंक्तियाँ छोड़ दी जायँगी ॥ १६२ ॥ अब मैं पहली पंक्तिका विस्तार बतलाता हूँ । प्रत्येक कोणमें तीन-

शृङ्खला कृष्णवर्णा च पदैः पञ्चभिरुत्तमा । तस्याः पार्श्वद्वये कार्ये वल्ल्यौ हरितवर्णके ॥१६४॥
पृथगेकादशपदैस्ततः पीते तु शृंखले । षड्भिः पदैरुभयतो भद्रं षोडशपादजम् ॥१६५॥
आरक्तं च सिता वाप्यो दशाष्टादशपादजाः । कृष्णान्यष्टादशपदैर्नव लिंगानि कारयेत् ॥१६६॥
मस्तकोपरि भद्रस्य लोहिते शृङ्खले शुभे । द्वाभ्यां पदाभ्यां च पृथङ् मध्ये हरितशृंखला ॥१६७॥
रचिता त्रिपदा रम्या वापीनां मस्तकोपरि । आरक्ते द्वे पदे कार्ये चैकं हरितशृङ्खला ॥१६८॥
उभयोः पार्श्वयोर्लिङ्गमस्तकस्य सिते पदे । एवं सर्वत्र बोद्धव्यं परिधिः पीतवर्णकः ॥१६९॥
सप्ताशीतिपदैश्चैव समाप्ता प्रथमा ततिः । प्रोच्यतेऽग्रे द्वितीया तु पक्तिस्त्रिसप्तपादजा ॥१७०॥
शशी च शृङ्खलावल्ल्यौ शृंखले द्वेऽत्र पूर्ववत् । भद्रं विंशपदैर्ज्ञेयं नव वाप्यस्त्रयोदशैः ॥१७१॥
पदैरष्टात्र लिङ्गानि भद्रयोर्मस्तकोपरि । द्वाभ्यां कार्ये शृंखलेऽत्र लोहिते ह्युत्तरे तयोः ॥१७२॥
द्विपदा शृंखला पीता हरिता त्रिपदा स्मृता । आरक्तं च पदं कार्यं वापीनां मस्तकोपरि ॥१७३॥
पूर्ववत्सकलं ज्ञेयमेकषष्टिपदैः शुभाः । परिधिः पीतवर्णश्च जाता पंक्तिर्द्वितीयका ॥१७४॥
ऊनैकेन पदा षष्टिपदैः पंक्तिस्तृतीयका । भद्र षड्भिः पदैः प्रोक्तं समलिङ्गानि कारयेत् ॥१७५॥
वसु वाप्यः स्मृताः शेषं पूर्ववच्च प्रकीर्तितम् । सप्तचत्वारिंशत्पदैः परिधिश्च प्रकीर्तितः ॥१७६॥
जाता तृतीया पक्तिर्हि चतुर्थ्यर्थं निगद्यते । पञ्चचत्वारिंशत्पदैरियं पंक्तिरुदाहृता ॥१७७॥
भद्रमर्कपदैर्ज्ञेयं पञ्च वाप्योऽत्र कीर्तिताः । तुर्यलिंगानि कार्याणि भद्रस्य मस्तकोपरि ॥१७८॥
आरक्ता षट्पदा वल्ली परिधिस्त्रित्रिभिः पदैः । जाता चतुर्थपक्तिर्हि पंचमैकत्रिभिः पदैः ॥१७९॥
भद्रं नवपदं ज्ञेयं त्रिवाप्यौ द्वौ हरौ स्मृतौ । त्रिपदा शृंखला रक्ता भद्रस्योपरि कीर्तिता ॥१८०॥
एकोनविंशतिपदः परिधिः संप्रकीर्तितः । जातेयं पंचमा पंक्तिस्त्वग्रे सप्तदशैः पदैः ॥१८१॥

तीन पादका श्वेत चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे काले रंगको सुन्दर शृंखला बनावे । उसके दोनों बगल हरे रंगसे ग्यारह पादकी बल्लियाँ बनावे । इसके बाद छः पादसे पीले रंगकी शृंखला बनावे और सोलह पादसे दोनों ओर भद्र बनावे, जिसका रंग लाल रक्खे ॥ १६३-१६५ ॥ तदनन्तर अठ्ठाईस पादसे सफेद वापियें बनाये । अट्ठारह पादसे काले रंगके नौ लिंगोंकी रचना करे । भद्रके मस्तकपर लाल रंगकी दो शृंखलायें बनावे । दो पादोंसे अलग और बीच-बीचमे हरे रंगकी शृंखला बनावे ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ जिसमें कुल तीन पाद रहेंगे । वापीके मस्तकपर लाल रंगकी दो पादोंकी शृंखला हरे रंगकी बनेगी । आस-पास तथा लिंगके मस्तकपर सफेद रंगसे दो पादकी शृङ्खला बनेगी । इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये । इसकी परिधियाँ पीत वर्णकी रहेंगी । इस तरह सत्तासी पादोंकी पहली पंक्ति समाप्त हुई । अब तिहत्तर पादोंवाली दूसरी पंक्तिके विषयमें कहते हैं ॥ १६८-१७० ॥ इसमें चन्द्रमा, शृंखलायें तथा बल्लियाँ ये पूर्व पंक्तिके समान रहेंगी । बीस पादका भद्र और तेरह पादकी नौ वापियें बनेंगी । तेरह ही पादोंसे भद्रके मस्तकपर आठ लिंग बनाये जायेंगे । उसी जगह दो पादोंसे लाल रंगकी दो शृङ्खलायें बनावे । दो पादसे पीली शृंखला और तीन पादकी हरी शृङ्खला बनाये । वापीके मस्तकपर कुछ लाल पाद रक्खे ॥ १७१-१७३ ॥ बाकी सब चीजें पहली पंक्तिके समान ६१ पादोंसे बनेंगी । दूसरी पंक्तिकी परिधि पीले वर्णकी रहेगी । यह दूसरी पंक्ति समाप्त हो गयी ॥ १७४ ॥ उनसठ पादकी तीसरी पंक्ति रहेगी । छ-छ पादोंसे एक भद्र, सात लिंग और आठ वापियें बनावे । बाकी सब पहली पंक्तिकी तरह रहेगा । इसमें सैंतालिस पादोंकी परिधि बनायी जायगी ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ इस प्रकार तीसरी पंक्ति समाप्त हुई । अब चौथी पंक्तिके विषयमें बतलाते हैं । यह चौथी पंक्ति पैंतालिस पादोंकी रहेगी ॥ १७७ ॥ इसमें बारह पादका एक भद्र बनेगा । पाँच वापियें बनेंगी । भद्रके मस्तकपर चार लिंग बनेंगे ॥ १७८ ॥ छः पादोंसे बिल्कुल लाल वर्णकी बल्ली बनेगी । तीन-तीन पादोंकी परिधि बनेगी । इस तरह चौथी पंक्ति समाप्त हुई । पाँचवीं पंक्ति कुल इकतीस पादोंकी रहेगी ॥ १७९ ॥ इसमें नौ पादका भद्र बनेगा, तीन वापियें बनेंगी और दो शिवकी रचना की जायगी । भद्रके मस्तकपर लाल रंगकी तीन पादवाली

चतुष्कोणं समं तत्र सर्वतोभद्रमालिखेत् । तस्यापि क्रम एवायं त्रिपदश्च शशी सितः ॥१८२॥
कृष्णाः पंचपदैः कार्याः शृंखलाः सर्वतः शुभाः । पदैरष्टादशैर्लिंगं पश्चिमे तस्य पार्श्वयोः ॥१८३॥
त्रयोदशपदैर्वाप्यौ भद्रं तुर्यपदात्मके । याम्यप्रागुत्तरेष्वेव मध्ये तिस्रश्च वापिकाः ॥१८४॥
भद्रं नवपदैः कार्या वल्लयो दशपदात्मिकाः । वल्लयोः स्थाने पश्चिमेऽत्र ह्याद्यन्ते हरिते पदे ॥१८५॥
मध्येऽत्र त्रुटिता वल्ली भद्रं यच्च नवात्मकम् । तस्योपरि पदाभ्यां हि रक्ताऽत्र शृंखला स्मृता ॥१८६॥
वापीनां मस्तके कार्यं पदं रक्तं च पार्श्वयोः । सिते द्वे द्वे पदे कार्ये परिधिः पंचपादजः ॥१८७॥
रक्तमष्टदलं मध्ये कार्यं नवपदात्मकम् । कर्णिका पीतवर्णा च बाह्याः परिधयः क्रमात् ॥१८८॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णाः सैकविंशशतात्मकम् । कथितं लिंगतोभद्रं सर्वेषां मुकुटोपमम् ॥१८९॥
प्रकारांतरमन्यच्च शृणु शिष्य ब्रवीमि ते । तिर्यगूर्ध्वं कृता रेखास्त्र्यधिकाः शतसंख्यकाः॥१९०॥
शतं द्व्यधिककोष्ठेषु रचयेल्लिंगपंक्तयः । नवाष्टरसचत्वारि द्व्येकसंख्याश्चतुर्दिशम् ॥१९१॥
लिंगसंख्याधिका वापी प्रतिपंक्ति भवेदिह । षट्सु परिधयस्तत्र षट्पदांते तु वापिकाः ॥१९२॥
कोणेष्विंदुः शृंखला च वल्ली च रचयेत्क्रमात् । त्रिपंचैकादशपदे लिंगं त्र्यष्टमितं त्रिषट् ॥१९३॥
वापी भद्राणि क्रमशः षट्त्रिंशद्विंशतत्त्रजम् । त्रिंशत्षट्त्रिंशविंशच्चांत्यपंक्तेश्च पार्श्वके ॥१९४॥
एकस्मिन् रचयेल्लिङ्गद्वयं भद्रे रसात्मके । तस्योपरि भवेत्सर्वतोभद्रं तत्र वापिका ॥१९५॥
चतुर्विंशत्पदं भद्रमंकसंख्या ततः परम् । परिध्यन्ते तुर्यतुर्यपदैः पद्मं समुद्धरेत् ॥१९६॥
चित्रं वा लोहितं लिंगशृंखले कृष्णवर्णके । हरिता वल्लरी भद्रं रक्तं शुद्धेऽब्जवापिके ॥१९७॥
एकविंशोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् । प्रकारांतरमन्यच्च शृणु शिष्य ब्रवीमि ते ॥१९८॥

शृङ्खला बनायी जायगी ॥ १८० ॥ उन्नीस पदोंकी परिधि बनायी जायगी । इस तरह यह पाँचवीं पंक्ति समाप्त हुई । आगे छठीं पंक्ति कुल सत्रह पदोंकी रहेगी ॥ १८१ ॥ इसके चारों कोनोंमें सर्वतोभद्रकी रचना करे । उसका क्रम इस प्रकार है । इसमें तीन पादसे सफेद रङ्गका चन्द्रमा बनेगा ॥ १८२ ॥ पाँच पादोंसे चारों ओर काले रङ्गकी शृङ्खला बनावे । अट्ठारह पादका लिंग बनाकर उसके दोनों बगल तेरह पादकी दो वापियाँ बनावे । दक्षिण, पूर्व तथा उत्तर दिशाओंके मध्यमें तीन वापियाँ बनावे ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ नौ पादोंसे भद्र बनाकर दस पादोंकी बल्लियाँ बनावे । पश्चिमवाली दोनों बल्लियाँ हरे रङ्गकी रहेंगी ॥ १८५ ॥ इस पंक्तिके बीचकी बल्ली टूट जायगी और नौ पादवाले भद्रके स्थानमें लाल रंगकी शृङ्खला रहेगी ॥ १८६ ॥ वापीके मस्तकपर काले रंगका पाद रहेगा और आस-पासके दो पाद सफेद ही रहेंगे । पाँच परिधियाँ बनेंगी ॥ १८७ ॥ बीचमें लाल और नौ पादका अष्टदल कमल बनेगा । इसकी कर्णिका पीली रहेगी और परिधियाँ क्रमशः पीली लाल और काली रहेंगी ॥ १८८ ॥ यह मैंने एकविंशतिशतात्मक लिंगतोभद्रका क्रम बतलाया । अबतक जितने भी भद्र बतलाये हैं, उनमें सर्वतोभद्र मुकुटके समान रहेगा ॥ १८९ ॥ हे शिष्य ! अब मैं प्रकारान्तर बतलाता हूँ, सुनो । खड़ी और बेंड़ी कुल १०३ रेखायें खींचे ॥ १९० ॥ उनमेंसे १०३ कोष्ठमें लिंगकी पंक्तियाँ बनाये । इसके चारों ओर नौ, आठ, छ, चार, दो और एक संख्याके कोष्ठक लिंगके लिये निर्धारित होंगे ॥ १९१ ॥ प्रत्येक पंक्तिमें लिंगसंख्याकी अपेक्षा वापीकी संख्या अधिक रहेगी । छः पादोंकी परिधियाँ रहेंगी । उसके बाद वापी रहेगी ॥ १९२ ॥ कोनोंमें इन्दु, शृङ्खला तथा वल्ली बनायी जायगी । क्रमशः तीन, पाँच और ग्यारह पादोंसे २४ लिंग बनाये जायँगे और अट्ठारह वापी बनेगी । फिर क्रमशः छत्तीस, बीस, पच्चीस, तीस, छत्तीस और बीस भद्र बनाये जायँगे । अन्तिम पंक्तिके बगल एक स्थानपर छः-छः पादके दो भद्र बनावे । उसके ऊपर सर्वतोभद्र रहेगा । चौबीस पादकी वापी बनेगी और नौ भद्र बनाये जायँगे । परिधिके अनन्तर सोलह-सोलह पादके पद्म बनावे ॥ १९३-१९६ ॥ उन कमलोंका रंग चित्रवर्ण अथवा लाल रहेगा । लिंग और शृङ्खलायें काले रंगकी रहेंगी । बल्लरी हरे रंगकी, भद्र लाल और कमल तथा वापी सफेद वर्णकी होगी ॥ १९७ ॥ यह मैंने तुम्हें एकविंशोत्तरशत लिंगात्मक भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया ।

षडधिकाशीतिरेखास्तिर्यगूर्ध्वं प्रकल्पयेत् । पञ्चाशीति पदानि स्युः पंक्तयस्तत्र सर्वतः ॥१९९॥
तत्र षट् षट् पदान्ते स्यात्परिधिः पीतवर्णकः । सर्वतोऽनेन विधिना चतुःपरिधयः क्रमात् ॥२००॥
तेषु वै पंक्तिकोष्ठेषु लिंगादि रचयेद्धिया । कोणेषु त्रिपदचन्द्रस्तदादि शृंखला मता ॥२०१॥
ततो वल्ली ततो भद्रं वापी लिंगं क्रमाद्भवेत् । तत्र प्रथमपंक्तौ तु शृंखला पञ्चपादिका ॥२०२॥
एकादशपदा वल्ली शृंखला षट्पदात्मिका । भद्रमेकपदं वापी त्रिषट् कोष्ठैः प्रकल्पयेत् ॥२०३॥
ईशानस्तन्मिते कार्य एवं ते नवसंख्यया । भवन्ति वाप्यो दश ता भद्रद्वयमभीप्सितम् ॥२०४॥
द्वितीयपंक्तौ वापी तु त्रयोदशपदा मता । भद्रं तु षड्दशपदं शेषं पूर्वं समीरितम् । २०५॥
अष्टौ लिंगानि वाप्यस्तु भवन्ति नवसंमिताः । तृतीयायां तुर्यपदं भद्रं शेषं तु पूर्ववत् ॥२०६॥
अष्टौ वाप्यः सप्त हराः क्रमशः स्युः समुद्धृताः । द्वे वाप्यावन्तिमे न्यूने त्रिभिः कोष्ठैस्तु संस्मृते ॥२०७॥
चतुर्थपंक्तौ वाप्यस्तु चतस्रः शंकरत्रयम् । भद्रं द्विदशकं ज्ञेयं शेषं पूर्ववदुद्धरेत् ॥२०८।
चतुर्थपरिध्युपरि बाणान्ते परिधिर्भवेत् । तत्पंक्तौ शृंखले न्यूने पदेनैकेन वल्लरी ॥२०९॥
द्वाभ्यां पदाभ्यां चन्द्रस्तु यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । भद्रद्वयं षट्षट्पदं त्वन्यं भद्रे नवात्मके ॥२१०॥
त्रयोदशपदैर्वापी तत्र तत्र प्रकल्पयेत् । भद्रयोरूर्ध्वं स्याद्भद्रद्वयं षट्षट्पदं शुभम् ॥२११॥
संसृष्टानि पदान्येव शृंखलार्थे नियोजत् । तस्योपरि परिधिस्तत्र बाणांते परिकल्पयेत् ॥२१२॥
उभयोरन्तरे वापी त्रयोदशपदात्मिका ॥२१३॥
भद्रद्वयं षट्षट्पदं शेषं सर्वं यथोदितम् । अन्तिमेऽन्तः पञ्चपञ्चपदैः पद्मं समुद्धरेत् ॥२१४॥
रक्तं वा चित्रवर्णं च श्वेतश्चन्द्रोऽसिता मता । शृंखला हरिता वल्ली पीतं तच्छृङ्खलाद्वयम् ॥२१५॥
रक्तं भद्रं सिता वापी लिंगं कृष्णं प्रकल्पितम् । लिङ्गस्कन्धगताः कोष्ठाः शोभाकोष्ठाः प्रकल्पयेत् २१६॥

हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें प्रकारान्तर बतला रहा हूँ, सुनो ॥ १९८ ॥ सीधी और टेढ़ी छियासी-छियासी रेखायें खींचे । ऐसा करनेपर उसमें चारों ओर पचासी-पचासी पादकी एक-एक पंक्तियाँ तैयार होंगी ॥ १९९ ॥ उसमें छ-छः पादके बाद पीले रंगकी परिधि रहेगी । इस रीतिसे क्रमशः चार परिधियाँ बनेंगी उनकी पंक्ति तथा कोष्ठकमें अपनी बुद्धिके अनुसार लिंग आदिकी रचना करे । प्रत्येक जोड़ोंमें तीन-तीन पादका इन्दु बनावे और उसके आदिमें शृङ्खलाकी रचना करे ॥ २०० ॥ २०१ ॥ फिर उसके बाद वल्ली, फिर छः पादकी शृङ्खला, एक पादका भद्र और अट्ठारह कोष्ठकी वापीका निर्माण करे ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ उतनी ही संख्याके शिव बनावे । इस प्रकार दस वापियें और दो भद्र बनेंगे ॥ २०४ ॥ दूसरी पंक्तिमें तेरह पादकी वापी बनेगी । सोलह पादका भद्र बनेगा । बाकी सब चीजें पहली पंक्तिके समान रहेंगी ॥ २०५ ॥ तीसरी पंक्तिमें आठ लिंग, नौ वापियें और चार पादका एक भद्र रहेगा । बाकी सब चीजें पूर्ववत् रहेंगी ॥ २०६ ॥ आठ वापी, सात शिव एवं अन्तमें तीन पादकी दो वापी बनेगी ॥ २०७ ॥ चौथी पंक्तिमें चार वापी, तीन शंकर, बारह भद्र बनेंगे । बाकी सब पहली पंक्तिके समान रहेगा ॥ २०८ ॥ चौथी परिधिके ऊपर पाँचवीं परिधिके बाद भी परिधि रहेगी । इस पंक्तिमें पूर्व पंक्तिकी अपेक्षा एक कम शृंखला रहेगी और एक पादकी वल्लरी बनायी जायगी ॥ २०९ ॥ तदनन्तर पहलेकी तरह दो पादोंका चन्द्रमा बनावे । छ-छ पादके दो भद्र बनावे । बाकी दो भद्र नौ नौ पादके रहेंगे ॥ २१० ॥ अपने-अपने स्थानपर तेरह-तेरह पादकी वापी बनाये । दोनों भद्रोंके ऊपर छ छ पादके दो भद्र बनावे ॥ २११ ॥ शृंखलाके लिये बने पादोंको नियुक्त करे । उसके ऊपर पाँच पादके अनन्तर परिधिकी रचना करे ॥ २१२ ॥ उन दोनोंके बीच तेरह पादकी एक वापी बनायी जायगी ॥ २१३ ॥ छः छः पादके बाद दो भद्र बनावे । बाकी सब पूर्ववत् रक्खे । अन्तिम पंक्तिमें पाँच-पाँच पादोंके कमल बनावे । उसका वर्ण लाल अथवा बहुरंगा रहे । चन्द्रमा सफेद और शृङ्खला काले वर्णकी रहेगी । इसी प्रकार वल्लरी हरी, उसकी दोनों शृङ्खलायें पीली, लाल भद्र; सफेद वापी और काला लिंग रहेगा । लिंगके स्कन्धवाले कोष्ठक शोभाके लिये रहेंगे ॥ २१४–२१६ ॥

पदानि शेषभूतानि यत्र क्व च भवन्ति हि । तानि तत्र यथायोग्यं धिया सम्यङ्नियोजयेत्॥२१७॥
यद्वा तुर्यपरिध्यूर्ध्वमेकादशपदात्परम् । परिधिः स्यात्तयोर्मध्ये कोणे चन्द्रो यथोदितः॥२१८॥
शृङ्खला दशपादा स्याद्वल्ली स्यादेकविंशतिः । शृङ्खलाऽन्या रुद्रपदा भद्रं त्रिंशत्पदात्मकम् ॥२१९॥
एकषष्टिपदैर्वापी सम्यग्बुद्ध्या प्रकल्पयेत् । अथवा द्वे पदे चान्ये संयोज्य गिरिहस्तिषु ॥२२०॥
पदेषु रचयेद्बुद्ध्या लिंगानां पङ्क्तयः क्रमात् । नवाष्टरसत्रीण्येका शेषं पूर्वं यथोदितम् ॥२२१॥
विशेषस्तत्र भद्रेषु षड्लिंगे षोडशात्मकम् । एकलिंगे विंशपदं द्वाभ्यामन्यत्र चाधिकम् ॥२२२॥
पूर्ववत्सर्वतोभद्रं पद्मवर्णास्तु पूर्ववत् । पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिः परिधयः स्मृताः ॥२२३॥
एतदष्टोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् । प्रकारान्तरमन्यत्ते शृणु शिष्य ब्रवीमि यत् ॥२२४॥
तिर्यगूर्ध्वं गता रेखा नवाष्टलोहिताः स्मृताः । तत्कोष्ठेष्वब्धिनेत्राग्निकोष्ठके रचयेद्धिया ॥२२५॥
सर्वतोभद्रकं रम्यं परितः परिधिर्मतः । ततो रसरसांते स्युश्चतुःपरिधयः शुभाः ॥२२६॥
तत्र चतुर्षु पार्श्वेषु कोणेंदुस्त्रिपदः स्मृतः । शृंखला पञ्चभिर्वल्ली त्वेकादशपदा मता ॥२२७॥
लिंगं चतुर्विंशपदं वापी त्वष्टादशा भवेत् । नव सप्त तथा पंचयुगनेत्रमिताः शिवाः ॥२२८॥
पञ्चपंक्तय एव स्युर्वापिकैकाधिका ततः । तुर्यलिंगानि द्वे वाप्यौ त्रयोदशपदात्मिके ॥२२९॥
षडंकार्करसरसभद्रसंख्या क्रमाद्भवेत् । सर्वतोभद्रके वापी युगनेत्रमिता तथा ॥२३०॥
नवकोष्ठमितं भद्रं शेषं सर्वं तु पूर्ववत् । ततोऽन्तःपरिधिः कार्यस्तत्र पद्मं समुद्धरेत् ॥२३१॥
श्वेतोऽब्जः शृंखला कृष्णा नीला वल्लरिकाऽरुणा । भद्रं वापी सिता कृष्णं लिंगं परिधयोऽन्तिमाः २३२॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा ज्ञेयाः पीताश्च मध्यमाः । एतदष्टोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् ॥२३३॥

इनमें जहाँ कोई कोष्ठक बाकी बच जाय, उसे अपनी इच्छासे जिस रंगसे चाहे रंग दे ॥ २१७ ॥ अथवा चौथी परिधिके ऊपर ग्यारहवें पादके आगे एक परिधि बनावे । उसके बीचवाले कोणमें उक्त प्रकारसे चंद्रमा बनावे ॥ २१८ ॥ इसमें पहली शृङ्खला दस तथा दूसरी ग्यारह पादकी बनेगी और भद्र तीस पादका रहेगा ॥ २१९ ॥ एकसठ पादकी वापी बनेगी । उन सबको अच्छी तरह मन लगाकर बनावे । अथवा और दो पादोंकी योजना करके सातवें और दसवें पादमें अपनी बुद्धिसे लिंगोंकी रचना करे । नौ, आठ, छः, तीन और एक यह उनकी संख्या रहेगी । बाकी सब पूर्ववत् रहेगा ॥ २२० ॥ २२१ ॥ इन भद्रोंमेंसे छः लिंगवाले भद्रमें एक सोलह पादका और दूसरा बीस पादका लिंग रहेगा । दोसे अधिक लिंगवाले भद्रमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना होगी । इसके बाहरकी परिधियाँ पीत, रक्त तथा कृष्ण वर्णकी रहेंगी ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ यह मैंने तुम्हें अष्टोत्तरशत लिंगतोभद्रका प्रकार बतलाया । अब दूसरा प्रकार बतलाता हूँ, सुनो ॥ २२४ ॥ खड़ी और बेंड़ी कुल नवासी रेखायें खींचे । उसके कोनेवाले चार, दो, तीन कोष्ठकोंसे सुन्दर सर्वतोभद्र बनावे । उसके चारों ओर परिधि रक्खे । इसके अनन्तर छः छः पादोंके बाद परिधियोंकी रचना करे ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ उसके चारों तरफके कोनोंमें तीन-तीन पादके चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे शृङ्खला और ग्यारह पादकी वल्ली बनावे ॥२२७॥ चौबीस पादका लिंग और अट्ठारह पादकी वापी बनानी होगी । इसमें नौ, सात, पाँच, चार, दो क्रमशः शिव बनाये जायँगे ॥ २२८ ॥ इसमें कुल पाँच पंक्तियाँ रहेंगी और वापियोंकी संख्या एक-एक करके बढ़ती जायगी । इसमें चार लिंग और तेरह-तेरह पादकी दो वापियाँ रहेंगी ॥ २२९ ॥ छ, नौ, बारह, छः, छः, इस क्रमसे भद्रकी संख्या रहेगी । सर्वतोभद्रमें चार और दो वापी बनेगी ॥ २३० ॥ इनमें नौ कोष्ठकका भद्र बनेगा । बाकी सब बातें पहलेके समान रहेंगी । इस प्रकार भद्रकी रचना कर लेनेके बाद उसके भीतर परिधि बनाकर कमलकी रचना करे ॥ २३१ ॥ कमलका रंग सफेद रहेगा और उसकी शृंखला काली रहेगी । बल्लरियाँ नीली तथा भद्र लाल रहेगा । वापी सफेद, लिंग काला और अन्तिम परिधियाँ नीली, सफेद, लाल तथा कृष्ण वर्णकी रहेंगी । यह भी एक प्रकारका अष्टोत्तरशत लिंगतोभद्र बतलाया ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ अथवा

तिर्यगूर्ध्वं पञ्च पञ्च रेखाः कार्या सुलोहिताः । तत्कोष्ठेषु परिधयः षट् षडंते त्रयः स्मृताः ॥२३४॥
त्रिद्व्यङ्गलिंगरचना चतुर्विंशतिपादिका । वापी त्वष्टादशपदा षट्त्रिंशद्द्विदशाङ्ककम् ॥२३५॥
भद्रं भद्रं पीतमन्यद्भद्रपार्श्वे प्रकल्पयेत् । प्रथमं नवपादं स्याद्द्वितीयं षट्पदात्मकम् ॥२३६॥
वापीपार्श्वे च त्रिपदा शृंखला लोहिता भवेत् । प्रतिपार्श्वे भवेदेतच्छृंखला पञ्चपादिका ॥२३७॥
एकादशपदा वल्ली त्रिपदश्चन्द्र ईरितः । चतुर्विंशपदैर्ज्ञेयं लिंगं परमसुन्दरम् ॥२३८॥
मध्ये चन्द्रः शृंखला च त्रिपदा षट्पदा लता ।
भद्रमर्कपदं लिंगमष्टाविंशत्पदात्मकम् । लिंगमस्तकपार्श्वस्थे पदानि पीतकानि तु ॥२३९॥
लिंगं कृष्णं सिता वापी भद्रं रक्तं सितः शशी । शृंखला कृष्णहरिता वल्ली वर्णास्त्वितीरिताः॥२४०॥
परिधिः पीतवर्णः स्यात्पदान्युर्वरितानि तु । यथेष्टं रञ्जयेदेतद्भाणाक्षिलिंगसाधनम् ॥२४१॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा बाह्याः परिधयः क्रमात् । प्रकारांतरमन्यद्वा शृणु शिष्य ब्रवीम्यहम् ॥२४२॥
चन्द्राब्धिपदसंख्यासु सर्वतस्तत्त्वसंमितम् । लिंगपीठं विरचयेत्षडते परिधी मतौ ॥२४३॥
तयोरर्वाग्लिंगपंक्तिद्वयं सम्यक् प्रकल्पयेत् । अष्टादशपदं लिंगं वापी त्रिदशपादिका ॥२४४॥
त्रिपदोऽब्जः शृंखला च पञ्चपादेशवल्लरी । प्रथमा युगलिंगाऽन्या पंक्तिर्लिङ्गद्वयान्विता ॥२४५॥
आद्यौ भद्रं नवपदं परं भद्रं तु षट्पदम् । परिध्यंते त्रयस्त्रिंशत्कोष्ठैर्लिङ्गं प्रकल्पयेत् ॥२४६॥
मूलस्कंधौ सप्तसप्तपदजौ षट्पदैः शिरः । पंचपंचपदैः पार्श्वौ कटिः शंभोस्त्रिपादजः ॥२४७॥
चतुर्दिक्षु हरस्यास्य चतुर्भद्रं नवांघ्रिकम् । चंद्रोऽत्र त्रिपदो ज्ञेयः शृंखला द्विपदा स्मृता ॥२४८॥
वल्लरी पंचपादा स्याच्छृङ्खलाऽन्या त्रिपादजा । लिंगस्कंधगताः कोष्ठाः पीताःकार्याः शुभावहाः२४९॥

सीधी और तीखी लाल वर्णकी पाँच-पाँच रेखायें खींचे। उसके कोष्ठकोंमें छः परिधियाँ और छः परिधिके आगे फिर तीन परिधि बनावे ॥ २३४ ॥ चौबीस पादसे तीन, दो अथवा नौ लिंग बनाना होगा। अट्ठारह पादकी वापी बनेगी। छत्तीस, बीस, नौ इन संख्यकोंके भद्र बनावे ॥ २३५ ॥ उन भद्रोंके पास ही दूसरे पीत वर्णके दो भद्रोंकी रचना करे। जिसमें पहला नौ पादका और दूसरा छः पादका रहेगा ॥ २३६ ॥ वापीके पास तीन पादकी लाल शृंखला रहेगी। इस प्रकार हर बगलमें पाँच-पाँच पादकी शृंखलायें रहेंगी ॥ २३७ ॥ इसमें ग्यारह पादकी वल्लरी और तीन पादकी लता रहेगी। बारह पादका लिंग बनेगा ॥ २३८ ॥ मध्यमें एक चन्द्रमा, तीन पादकी शृंखला और छः पादकी लता रहेगी। बारह पादका भद्र और अट्ठाइस पादका लिंग बनेगा। लिंगके मस्तकपर तथा बगलमें पीले वर्णके कुछ खाली कोष्ठक भी रहेंगे ॥ २३९ ॥ इसमें लिंग कृष्ण, वापी उज्ज्वल, लाल भद्र, उज्ज्वल चन्द्रमा, काली शृंखला, हरित वर्णकी वल्लरी ये वर्ण रहेंगे ॥ २४० ॥ इसकी परिधि पीले वर्णकी रहेगी। बाकी जितने कोष्ठक बचें, उनको अपने इच्छानुसार जैसा चाहे वैसा रङ्ग दे। पच्चीस लिंग इस भद्रके प्रधान साधन माने गये हैं ॥ २४१ ॥ बाहरकी परिधियाँ पीली, सफेद, लाल तथा काली रहेंगी। हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें इसी भद्रका प्रकारान्तर बतला रहा हूँ ॥ २४२ ॥ एकतालिस पादोंमें पच्चीस लिङ्ग और छः लिंगके बाद दो परिधि बनावे ॥ २४३ ॥ उन दोनों परिधियोंके पहले दो पंक्तियोंमें लिङ्गोंकी रचना करे। इसमें अट्ठारह पादका लिंग बनेगा और तेरह पादकी वापी बनायी जायगी ॥ २४४ ॥ तीन पादका कमल और पाँच-पाँच पादके शिव तथा वल्लरीकी रचना की जायगी। पहिली पंक्तिमें चार और अन्य पंक्तियोंमें दो लिंग रहा करेंगे ॥ २४५ ॥ पहला भद्र नौ पादका रहेगा। बाकी सब भद्र छः छः पादके रहेंगे। परिधिके बाद तैंतीस पादका लिंग बनावे ॥ २४६ ॥ इसके मूल स्कन्ध सात-सात पादके रहेंगे। छः पादका मस्तक, पाँच-पाँच पादोंका पार्श्वभाग और तीन पादकी कटि बनेगी ॥ २४७ ॥ शिवके चारों ओर नौ-नौ पादके चार भद्र बनाये जायँगे। इसमें चन्द्रमा तीन पादका, शृंखला दो पादकी, वल्लरी पाँच पादकी और दूसरी शृंखला तीन पादकी रहेगी। लिंगके स्कन्धवाले खाली कोष्ठक पीले रङ्गसे रङ्ग दिये

अन्यानि शेषभूतानि पदानि पूरयेद्धिया । यथेच्छं वै परिधयः कार्या वेदमिता बहिः ॥२५०॥
पञ्चविंशच्छिवैरेतौ प्रकारौ द्वौ मयोदितौ । अतिप्रियौ शंकराय ज्ञातव्यौ द्विजसत्तम ॥२५१॥
नमस्कृत्य महद्ब्रह्म गुरुपादसरोरुहम् । संसारतारकं वक्ष्ये कथामध्यात्मसंग्रहाम् ॥२५२॥
पंचविंशतिसंख्याकं लिंगतोभद्रमीप्सितम् । केनचित् कल्पितं तत्किं तत्त्वं तत्कथ्यते स्फुटम् २५३॥
लिंगतोभद्रमित्येतन्निरुक्तमर्थवद्भवेत् । लिंगं गमकमित्याहुर्ज्ञानं ज्ञापकमित्यपि ॥२५४॥
पीयूषवापनाद्वापी भद्रं भद्रसमीक्षणात् । साध्यशब्दाः प्रसिद्धा हि वर्तन्ते साधनेष्वपि ॥२५५॥
तस्मिन् शुक्लमुत नीलमित्यादिश्रुतिशासनात् । वर्णा अपि परस्मिंस्तूपासनार्थं भवन्ति हि ॥२५६॥
तद्ब्रह्म परमं लिङ्गं मङ्गलं भद्रवाचकम् । मङ्गलं मङ्गलानां च शिवं शांतमिति स्फुटम् ॥२५७॥
लीयंते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिंगं परं व्योम निष्कलः परमः शिवः ॥२५८॥
सत्त्वं रजस्तमोवर्णत्रयं मायासु वेष्टितम् । मनश्चन्द्रो महामोहः शृङ्खला स्नेहवल्लिका ॥ ५९॥
तैरिदं सर्वतस्तत्त्वं वेष्टितं घटव्योमवत् । तिर्यगूर्ध्वमहङ्कारः प्रसृतः पटतन्तुवत् ॥२६०॥
तेन स्थानानि जातानि लक्षाणां चतुरष्ट हि । गुणास्तेषु प्रपूर्यन्ते यथा चित्रपटो भवेत् ॥२६१॥
आसीदेकं पुरा तत्त्वं तस्मिन्मायानियोगतः । कामो बहुधा भवति भवेयमिति सादरम् ॥२६२॥
एकः सन्निति चात्मानं स्वयमकुरुतेति च । इन्द्रो मायाभिरिति च एकधा बहुधेति हि ॥२६३॥
ऊचुश्च श्रुतयः साध्यो ब्रह्मणो भवनं प्रति । तज्जलानिति च श्रुत्वा न ततोऽस्ति हि किंचन ॥२६४॥
यद्यप्येवं तथाप्यस्मिन्न स्थितिर्मोहितो भवेत् । यावदहंकृतो भावस्तावत्संसार आयतः ॥२६५॥
भिन्नोऽहमिति हृद्ग्रन्थौ न संसारस्तदाश्रयः । गते तेजस्यंबु याति स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥२६६॥

जायँगे ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ बाकी जितने कोष्ठक खाली बचें, उन्हें अपने इच्छानुसार रङ्ग दे । बाहरकी ओर स्वेच्छासे चार परिधियाँ बनाये ॥ २५० ॥ ये दोनों प्रकार मैंने पच्चीस शिवके बतलाये हैं । हे द्विजसत्तम ! ये दोनों भद्र शिवजीको परम प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ २५१ ॥ अब मैं अपने गुरुके महद्ब्रह्मस्वरूप चरणकमलको प्रणाम करके संसारतारक एक आध्यात्मिक कथा सुनाऊँगा ॥ २५२ ॥ किसीने पञ्चविंशति लिङ्गतोभद्र-की रचना क्यों की ? अब उसका स्पष्ट तत्त्व बतलाता हूँ ॥ २५३ ॥ पहले 'लिङ्गतोभद्र' इस शब्दका अर्थ बताते हुए कहते हैं कि लिंगको गमक, ज्ञान अथवा ज्ञापक नामसे पुकारा जाता है ॥ २५४ ॥ पीयूष (अमृत) का वपन करनेसे वापीका 'वापी' यह नाम पड़ा है । भद्र यानी कल्याणका समीक्षण करनेसे 'भद्र' का भद्र नाम रक्खा गया है । प्रत्येक साधनोंमें उसके साध्य शब्द बतलाये जाते हैं ॥ २५५ ॥ "तस्मिन् शुक्लमुत नीलम्" आदि श्रुतियोंके कथनानुसार उपासनाके लिए वर्णकी भी आवश्यकता पड़ती है ॥ २५६ ॥ वह परब्रह्म ही लिंग एवं मङ्गलवाचक भद्र शब्दसे अभिहित होता है । मङ्गलका भी मङ्गल करनेवाला शिव अर्थात् शान्त कहलाता है ॥ २५७ ॥ प्रलयके समय जिसमें सब प्राणी लीन हों और सृष्टिकालमें उसीमेंसे निकल आयें उसीको 'लिङ्ग' कहते हैं । ऐसा कौन है ? वह परम व्योम, कलारहित तथा परम मङ्गलकारी शिव है ॥ २५८ ॥ सत्त्व, रज और तम ये तीन वर्ण मायाके जालसे वेष्टित है । इसमें मन चन्द्रमा, महामोह शृंखला और स्नेह बल्लरियाँ हैं ॥ २५९ ॥ इन सबसे आत्मा उसी तरह वेष्टित है, जैसे व्योम (आकाश) से घट-पट आदि जगत्के पदार्थ वेष्टित रहते हैं । उसपर भी तन्तुके समान अहङ्कारने उसे चारों ओरसे घेर रक्खा है ॥ २६० ॥ इसीसे चौरासी लाख योनियोंकी उत्पत्ति हुई है । उनमें गुणोंका उसी तरह समावेश हो जाता है, जैसे एक कपड़ेपर कई रङ्ग चढ़ा दिये जायँ, जिससे उसका रङ्ग विचित्र प्रकारका हो जाय ॥ २६१ ॥ सृष्टिके पहले केवल एक तत्त्व यानी ब्रह्म था । मायाके योगसे उसमें बहुत प्रकारकी कामनायें उत्पन्न हुईं । तब उसे अकेले ब्रह्मने मायायोगसे अपने इच्छानुसार उस अकेले रूपसे बहुतेरे रूप बना लिये ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ इसके अनन्तर श्रुतियोंने ब्रह्मकी उत्पत्तिके लिए 'तज्जलान्' इस श्रुतिसे उस ब्रह्मकी प्रार्थना की । तब ब्रह्मकी उत्पत्ति हुई ॥ २६४ ॥ यद्यपि ये सब कार्य हुए हैं । तथापि मोहवश इसमें ब्रह्मकी स्थिति नहीं हो सकती । जबतक

एतदर्थं विरक्तः सन् जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । आश्रयेत्सद्गुरुं साक्षाद्ब्रह्मभूतं निरामयम् ॥२६७॥
तेन प्रबोधितः सिद्धमात्मानं संतमात्मनि । जानीयाद्ब्रह्मभावेन जगच्चित्तं स्थितं सदा ॥२६८॥
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे संस्थितोऽमलः । एकोऽद्वितीयः परमो नांतः प्रज्ञादिलक्षणः ॥२६९॥
अक्षरः सच्चिदानन्दोऽमरोऽजर उशत्तमः । निर्विकारो निराकारो निरामय उदीरितः ॥२७०॥
अलिंगोऽरूप एवासावेकत्वगणनात्परः । मायया लिंगरूपीव ह्येक इत्यभिधीयते ॥२७१॥
पुरुषश्च प्रकृतिश्च व्यक्तोऽहंकार एव च । चतुर्लिङ्गानि प्रोक्तानि लक्षणानि शिवस्य च । २७२॥
कार्यकारणभूतानामेकमेव हि पञ्चकम् । सत्त्वं रजस्तम इति वसुलिंगानि चात्मनः ॥२७३॥
दशेंद्रियाणि च मनो बुद्धिर्द्वादशकं स्मृतम् । लिंगानां परमेशस्य विवेकोऽत्र प्रतिष्ठितः ॥२७४॥
इति कारणलिंगानि कार्यलिंगान्यनेकशः । शतं सहस्रमयुतं कोटिशः संति संख्यया ॥२७५॥
सर्वाणि ज्ञापकान्येव शिवस्य परमात्मनः । वस्तुतस्तु परं तत्त्वं सजातीयादिहीनकम् ॥२७६॥
विचारे वर्तमाने तु तंत्वाद्येव पटादि न । एवं सर्वं शिवो भाति न सर्वं शिव एव हि ॥२७७॥
बिन्दुनादमकारादि मात्रत्रयमुदीरितम् । आत्मैव पञ्चधा साक्षात्तथा ब्रह्मेश्वरो हरिः ॥२७८॥
विधिरुद्रौ पञ्च पञ्च सद्योजातादिरूपकः । शुद्धः साक्षी तथा प्राज्ञस्तैजसो विश्व एव च ॥२७९॥
सच्चित्सुखत्रयं नामरूपे ब्रह्मैव केवलम् । जातं पञ्चात्मकं नान्यद्ब्रह्मैवेदमिति श्रुतिः ॥२८०॥
प्रधानं महदहं च पञ्चतन्मात्रकं च तत् । अष्टप्रकृतिरित्येतच्छास्त्रेषु परिगीयते ॥२८१॥

अहंभाव है, तभीतक इस संसारका विस्तार है ॥ २६५ ॥ "अहं" इस ग्रन्थिके भिन्न होते ही न संसार रहता है और न उसका आश्रय ही रह जाता है। तेजके विलीन होते ही जलका भी नाश हो जाता है। जैसे कि निद्राका नाश होनेके साथ ही स्वप्न भी नष्ट हो जाता है ॥ २६६ ॥ इसलिए जिज्ञासुको चाहिए कि वह विरक्त, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा रोग-शोकरहित किसी सद्गुरुकी शरण ले ॥ २६७ ॥ जब कि उसके उपदेशोंसे वह प्रबुद्ध हो जाय और अपनी आत्मामें ही सिद्ध हो जाय, तब अपने जगत्स्वरूप चित्तको ब्रह्मभावसे देखे ॥ २६८ ॥ सब प्राणियोंके हृदयमें वह अमल ईश्वर निवास करता है। वह एक, अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है। न उसका अन्त है और न प्रज्ञा आदि लक्षणोंसे ही वह जाना जा सकता है ॥ २६९ ॥ वह अक्षर (कभी नष्ट न होनेवाला), सच्चिदानन्द, अजर, अमर और सबसे श्रेष्ठ विद्वान् है। इसलिये वह निर्विकार, निराकार और निरामय कहलाता है ॥ २७० ॥ उसका न कोई रूप है, न लिङ्ग है। वह अकेला रहकर भी गणनासे परे है। वह अपनी मायाके साथ लिङ्गरूपमें दीखता है, किन्तु वास्तवमें रहता है अकेला ही ॥२७१॥ पुरुष, प्रकृति, व्यक्त, अहंकार, ये चिह्न उस लिङ्गरूप ब्रह्मको पहचाननेके लिए बताते हैं ॥ २७२ ॥ प्राणियोंका कार्य, कारण, सत्त्व, रज, तम इनको भी कुछ लोग आत्माका लक्षण बताते हैं ॥ २७३ ॥ कुछ लोग दस इन्द्रिय तथा मन और बुद्धि, इन बारहको भी उसके चिह्न बतलाते हैं। इस प्रकार यहाँ उस परमेश्वरके लिंगोंका विचार किया गया है ॥ २७४ ॥ ऊपर बतलाये हुए सब चिह्न कार्यके हैं। इनके अतिरिक्त कारणके भी बहुतसे लिंग हैं। इन लिंगोंकी संख्या सैकड़ा, हजार, दस हजार एवं करोड़ों पर्यन्त है ॥ २७५ ॥ उस मङ्गलमय परमात्माकी तो ससारकी समस्त वस्तुएँ ही ज्ञापक हैं। लेकिन वास्तवमें वही सर्वप्रधान तत्त्व है और उसका कोई सजातीय और विजातीय नहीं है ॥ २७६ ॥ अच्छी तरह विचार हो जानेपर यही निश्चित होता है कि वह केवल तन्तु ही है, पट आदि नहीं ॥ २७७ ॥ जिस तरह बिन्दुमात्रसे वह अकारादि मात्रात्रयात्मक कहा जाता है। उसी तरह वह ब्रह्म, ईश्वर या हरि अकेला रहता हुआ भी पाँच प्रकारका है ॥ ७८ ॥ सद्योजातादि रूपधारी विधि (ब्रह्मा) और शिव भी पाँच ही पाँच प्रकारका है। वह स्वयं शुद्ध, साक्षी, प्राज्ञ, तैजस तथा विश्वरूप है ॥ २७९ ॥ नाम और रूपके भेदसे वह सत्, चित् तथा आनन्द तीन प्रकारका है। किन्तु वह अकेला ही है। "ब्रह्मैवेदम्" इस श्रुतिसे भी यही सिद्ध होता है कि वह अकेला ब्रह्म ही पाँच प्रकारका हुआ था ॥ २८० ॥ प्रधान, महत्, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रायें और

अष्टमूर्तिस्वरूपं सद्भवशर्वादिनामभृत् । वस्वष्टकस्वरूपेण मायया भाति सर्वतः ॥२८२॥
ज्योतिर्लिङ्गद्विषट्कं च द्वादशादित्यनामकम् । दशेंद्रियमनोबुद्धिनामभिर्भाति सत् स्फुटम् ॥२८३॥
दशेंद्रियाणि च प्राणपंचकं भोग्यपंचकम् । चेतश्चतुष्कमात्मैव पंचविंशमतो बुधैः ॥२८४॥
लक्षाणां चतुरशीति भोगायतनविस्तरः । तस्यैव कल्प्यते भ्रांत्या कर्मभिर्गुणभेदतः ॥२८५॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिं च भोगस्थानानि चात्मनः । भोगो भोक्ता भोजयिता सर्वं ब्रह्मैव न पृथक् ॥२८६॥
अध्यात्ममधिदैवं च ह्यधिभूतमिति त्रिधा । स्थूलं सूक्ष्मं कारणं च सर्वं ब्रह्मैव न पृथक् ॥२८७॥
एतज्ज्ञानं च ध्यानं च विवेकश्च विरागिता । जीवेश्वरजगद्भानमात्मैवेति न तु पृथक् ॥२८८॥
सर्वं खल्विदमिति चेदं सर्वं यदयमात्मना । ब्रह्मैवेदं सर्वमिति श्रुतयः प्रवदंति हि ॥२८९॥
अयं सिद्धस्य विषयो यत्सर्वात्मनि दर्शनम् । आरुरुक्षुः शांतदांतस्तितिक्षुः सर्वतो भवेत् ॥२९०॥
स्वदेशे प्राप्तपुरुषं निबध्नंति वशीकृतम् । तेनामी विषयाः प्रोक्ता मुमुक्षुस्तान् विवर्जयेत् ।२९१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशीत्यादि भागवतं वचः । किं बहूक्तेन विधिना समाप्तं शास्त्रहृद्गतम् । २९२॥

दत्तं मे गुरुणा किमप्यजडमानंदात्मवस्त्वद्वयं
यत्सेवात इदं तदात्मकमहं त्वं चाशु नष्टं तमः ।
आपूर्णं सहसोदितं मह ऋतं गंभीरमव्याकृतं
येनाच्छादितमिन्दुसूर्यपवनं विश्वं विशेषात्मकम् ॥२९३॥

तिर्यगूर्ध्वगता रेखाश्चत्वारिंशत्समाः शुभाः । तासामंकत्रिकोष्ठेषु परिधी द्वौ प्रकल्पयेत् ॥२९४॥
सप्तांते प्रथमाऽन्यास्तु ततो बाणांतकोष्ठके । तन्मध्ये रुद्ररुद्रेषु पदेष्वष्टादशैः पदैः ॥२९५॥

आठ प्रकृतियाँ ये शास्त्रोंमें बतलायी गयी हैं ॥ २८१ ॥ उन आठों मूर्तियोंका स्वरूप सद्भव-शर्व आदि नामोंसे विख्यात है और मायावश वे आठ वस्तुओंके नामसे भी अभिहित होते हैं ॥ २८२ ॥ आठ ज्योतिर्लिंग, द्वादश आदित्य, दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन नामोंसे भी वह विश्वमें स्पष्ट दिखायी देता है ॥ २८३ ॥ दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राणवायु, भोग्यपंचक और चार प्रकारका चित्त यह सब मिलाकर वह पच्चीस प्रकारका माना गया है ॥ २८४ ॥ चौरासी लाख योनियाँ ही उसके भोगरूपी घरका विस्तार है। भ्रान्तिवश या गुण-कर्मके भेदसे उसीमें इन सबकी कल्पना की जाती है ॥ २८५ ॥ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये आत्माके भोगस्थान हैं। भोग, भोक्ता, भोज्य ये सब वह ब्रह्म ही है और कोई नहीं ॥ २८६ ॥ अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत, स्थूल और सूक्ष्मका कारण एकमात्र ब्रह्म ही है ॥ २८७ ॥ यह ज्ञान, ध्यान, विवेक, विरागिता, जीव, ईश्वर, जगत्का भान यह सब वह आत्मा ही है और कोई नहीं ॥ २८८ ॥ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "यदयमात्मा" "ब्रह्मैवेदम्" ये श्रुतियाँ भी इसी बातको पुष्ट करती हैं ॥ २८९ ॥ संसारकी सब वस्तुओंको अपनी आत्मामें देखना, यह विषय सिद्धपुरुषोंका है । जो प्राणी सिद्धिके शिखरपर चढ़ना चाहता हो । उसे चाहिये कि वह शान्त, दान्त (इन्द्रियोंका दमन करनेवाला) और तितिक्षु बने ॥ २९० ॥ अपने देशमें आये हुए पुरुषको ये सांसारिक विषय बाँध लेते हैं। इसीसे इन्हें लोग विषय (विशेषेण सिन्वन्तीति विषयाः । अर्थात् भली-भाँति जकड़ लेनेवाले) कहते हैं। मुमुक्षु प्राणीको चाहिए कि इनका परित्याग कर दे ॥ २९१ ॥ "एकान्त स्थानमें रहे, थोड़ा खाय" इत्यादि बात भगवानने गीतामें स्वयं कही हैं। यहाँ विशेष विधि-विधान बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। हृदयमें ज्ञानका प्रकाश होते ही सारे शास्त्र समाप्त हो जाते हैं ॥ २९२ ॥ यदि किसी सद्गुरुने कृपा करके जड़तारहित आनन्दात्मक ज्ञानरूप वस्तु दे दी तो 'वह' 'हम' सब एक हैं। यह भाव उत्पन्न होनेसे हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया। एक अनिर्वचनीय प्रकाश और चन्द्रमा-सूर्य तथा पवनपर भी आधिपत्य जमानेवाली शक्तिसे सहसा यह विश्व आलोकित हो उठा, तब और किसी उपदेशकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥ २९३ ॥ सीधी और टेढ़ी चालीस रेखायें बराबर-बराबर खींचे । उनके उनतालीस कोष्ठकोंमें दो परिधियें बना दे ॥ २९४ ॥ सात

लिंगमेकं खंडवाप्यौ तुर्यतुर्यपदात्मिके । अष्टकोष्ठात्मकं भद्रं प्रोक्तं पार्श्वचतुष्टये ॥२९६॥
शृङ्खला द्विपदा चन्द्रं त्रिपदा वल्लरी तथा । पंचपादैः स्मृता वल्ल्यो त्रिपार्श्वेषु निमीलयेत्॥२९७॥
द्वितीये त्रिपदश्चंद्रः शृंखला वेदपादिका । वल्ली नवपदा भद्रत्रयं नवपदात्मकम् ॥२९८॥
त्रयोदशपदं वापीद्वयं पार्श्वे तु शृङ्खले । द्विपदे रक्तवर्णे च भद्रं तुर्यपदं हरित् ॥२९९॥
प्रतिपार्श्वे भवेदेतत्प्रथमाधःसु योजयेत् । प्रतिपार्श्वे चतुर्लिंग वापीनां पञ्चकं तथा ॥३००॥
अष्टादशपदं लिंगं वापी त्रयोदशात्मिका । भद्रं रसपदैर्ज्ञेयं वल्ली रुद्रपदात्मिका ॥३०१॥
शृङ्खला पञ्चभिः पादैस्त्रिपदश्चंद्र ईरितः । लिंगोपरितना वीथी नीलवल्ल्या नियोजयेत् ॥३०२॥
यद्वा रसांते परिधिं विधाय तदनन्तरम् ।त्रिलिंगान्येकलिंगं च द्वयोः पंक्त्योः प्रकारयेत् ॥३०३॥
आदौ चन्द्रकलं भद्र पदमर्कपदैः स्मृतम् । शृङ्खलापञ्चभिर्वल्ली रुद्रकोष्ठा समीरिता ॥३०४॥
वापीचतुष्टयं पूर्वं परं वापीद्वयं स्मृतम् । पूर्ववत्सकलं ज्ञेय बाह्याः परिधयः क्रमात् ॥३०५॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा ज्ञेयाः संख्याधिकाः शुभाः । एतत्सप्तेन्दुलिंगाख्यं पीठं सम्यगुदाहृतम् ॥३०६॥
अथवाऽस्मिंस्त्रिकोष्ठानि वर्द्धयित्वा क्रमेण तु । षष्ठांते परिधी कार्यौ तत्र लिङ्गानि योजयेत् ॥३०७॥
प्रथमे त्रीणि लिंगानि द्वितीये चैकमीरितम् । चतुर्विंशपदैर्लिङ्गं वाप्यष्टादशपादजा ॥३०८॥
आदौ वेदमिता वाप्यो द्वे वाप्यौ च द्वितीयके । आदौ नवपदं भद्र द्वितीयेऽर्कपदं स्मृतम् ॥३०९॥
चंद्रवल्ल्यादिपूर्वोक्तं मध्ये लिंगं प्रकारयेत् । अष्टविंशपदैर्ज्ञेय चतुःपादैः शिरः कटिः ॥३१०॥
अर्कद्व्यर्कपदे खंडवाप्यौ द्विपदशृङ्खलाः । पञ्चपादा स्मृता वल्ली त्रिपदा पीतशृङ्खला ॥३११॥
अर्कपदैश्चतुर्दिक्षु मध्ये भद्रचतुष्टयम् । चंद्रश्च त्रिपदः कोणे शिवमस्तकपार्श्वके ॥३१२॥

कोष्ठकोंके बाद पहिली परिधि बनाकर बाकी परिधियाँ पाँच-पाँच कोष्ठकोंके बाद बनावे। उनके बीचमें एक सौ इक्कीस पादोंमेंसे अट्ठारह-अट्ठारह पादका एक एक लिंग बनावे। फिर चार-चार पदकी दो खण्डवापियोंकी रचना करे। इसके चारों बगल अष्टकोष्ठात्मक भद्र बनावे ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ इसके बाद दो पादकी शृङ्खला, एकसे चन्द्रमा और तीन पादकी वल्लरी बनाकर इसके तीन बगलमें पाँच पाँच पादकी वल्लरियाँ बनावे ॥ २९७ ॥ दूसरी पंक्तिमें तीन पादका चन्द्रमा, चार पादकी शृङ्खला, नौ पादकी वल्लरी, नौ-नौ पादके तीन भद्र, तेरह पादकी दो वापियें, बगलमें दो लाल शृङ्खलायें और चार पादसे हरे भद्रकी रचना करे ॥ २९८ ॥ २९९ ॥ यह क्रम प्रत्येक पार्श्वभागमें रहेगा। प्रत्येक पार्श्वभागमें चार लिंग, पाँच वापी, अट्ठारह पादका लिंग, तेरह पादकी वापी, छः पादका भद्र, बारह पादकी वल्लरी, फिर पाँच पादकी वल्लरी और तीन पादका चन्द्रमा बनेगा। लिंगके ऊपरकी वीथी नीली रहेगी और उसके साथ-साथ वल्लरी भी नीली रहेगी ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥ अथवा छः कोष्ठकके बाद परिधि बनाकर तीन लिंग या एक लिंग दोनों पंक्तियोंमें बनावे ॥ ३०३ ॥ पहले सोलह पादका भद्र बनाकर बारह पादोंकी शृङ्खला और बारह कोष्ठकोंमेंसे पाँच पादकी वल्लरी बनावे ॥ ३०४ ॥ पहले चार वापी और फिर दो वापीकी रचना करे। बाकी सब पूर्ववत् रहेंगे और बाहरकी परिधियाँ क्रमशः पीली, सफेद, लाल और काली रहेंगी। यह सप्तेन्दुलिंगात्मक पीठ मैंने अच्छी तरह बतलाया ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥ अथवा इसी पीठमें दो कोष्ठक और बढ़ाकर छःके बाद दो परिधि बनावे और इस प्रकार लिंगोंकी योजना करे ॥ ३०७ ॥ प्रथम पंक्तिमें तीन और दूसरीमें एक लिंग बनावे। इसी पीठमें चौबीस पादका लिंग बनेगा और अट्ठारह पादकी वापी बनेगी ॥ ३०८ ॥ आदिमें चार वापियें और दूसरेमें दो वापी रहेगी। आदिमें नौ पादका भद्र बनेगा और दूसरेमें बारह पादका भद्र बनेगा। चन्द्रमा तथा वल्लरी आदि पूर्वोक्त नियमके अनुसार ही रहेंगे और मध्यमें लिंगकी रचना की जायगी। उसमें अट्ठाइस पाद रहेंगे और चार पादसे सिर तथा कमरकी रचना होगी। बारह-बारह पादसे दो खण्डवापियाँ बनायी जायँगी। दो पादकी शृङ्खलायें बनेंगी। पाँच पादकी वल्लरी बनायी जायगी। तीन पादसे पीतवर्णकी शृङ्खला बनेगी ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ बारह पादसे चारों ओरकी शृङ्खला बनेगी।

नेत्रार्थे द्वे पदे शुक्ले शेषाणि च पदानि हि । लिंगपार्श्वे पंच पंच यथेच्छं तानि पूरयेत् ॥३१३॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिःपरिधयो मताः । एतत्सप्तदशलिंगैर्लिङ्गतोभद्रमीरितम् ॥३१४॥
दशकं कारणानां च प्राणानां पञ्चकं मनः । षोडशेमाः कला आत्मा साक्षी सप्तदशः स्मृतः ॥३१५॥
अर्कलिंगात्मकं भद्रं शृणु शिष्य मयोच्यते । प्रागुदीच्या गता रेखाः षट्त्रिंशद्भि प्रकल्पयेत् ३१६॥
पदानि द्वादशशतं पञ्चविंशतिरेव च । खंडेंदुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला षट्पदात्मिका ॥३१७॥
त्रयोदशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । भद्रोर्ध्वं त्रिपदा ज्ञेया द्वितीया पीतशृङ्खला ॥३१८॥
त्रयोदशपदा वापी लिङ्गमष्टादशैः स्मृतम् । लिंगं नियम्य पंक्तौ तु शोभाकोष्ठाश्चतुर्दश । ३१९॥
तेषामुपरि पंक्तौ तु कोष्ठाः सप्तदशैव तु । पूजापंक्तिः सिता ज्ञेया परितः परिकल्पिता ॥३२०॥
पूजापंक्त्यंतरापंक्तौ कोष्ठा अशीतिसंख्यया । परिधिः स च विज्ञेयो मंडलांतरयोर्द्वयोः ॥३२१ ।
परिध्यंतरकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् । विशेषश्चात्र वज्ञेयो शृङ्खला षट्पदा भवेत् ॥३२२॥
त्रयोदशपदा वल्ली भद्रं तु द्वादशैः पदैः । पञ्चविंशत्पदा वापी परिधिः षोडशात्मकः ॥३२३॥
मध्ये नवपदैः पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम् । सत्त्वं रजस्तमोवर्णाः परितो मंडलस्य च ॥३२४॥
त्रयः परिधयः कार्यास्तत्र द्वाराणि कारयेत् । सितेंदुः शृङ्खला कृष्णा वल्ली नीला प्रपूरयेत् ॥३२५॥
भद्रं रक्तं शृंखलाऽन्या पीता वापी सिता स्मृता । लिंगानि कृष्णवर्णानि पार्श्वेषु द्वादशैव तु ॥३२६॥
परिधिः पीतवर्णः स्यात्कमलं पञ्चवर्णकम् । कर्णिका च केसराणि पीतवर्णानि कारयेत् ॥३२७॥
प्रकारांतरमन्यत्ते शृणु शिष्य मयोच्यते । पूर्वोत्तरगता रेखा सप्तविंशन्मिताः शुभाः ॥३२८॥
तत्षट्त्रिंशत्पदेष्वेव सर्वतोभद्रमुत्तमम् । अब्धिनेत्राग्निकोष्ठैश्च रचयेत्पूर्ववच्छुभम् ॥३२९॥

मध्यमें चार भद्र बनेंगे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनेगा । शिवजीके मस्तकके पास नेत्रके लिए दो पाद सादा ही छोड़ दे । जितने पाद हैं, उनमेंसे लिंगके आस-पासवाले पाँच-पाँच पादोंको अपने इच्छानुसार पूर्ण करे ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ बाहरकी सब परिधियाँ पीत, शुक्ल, रक्त तथा कृष्ण वर्णकी रहेंगी। यह सप्तदशलिंगात्मक भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया गया ॥ ३१४ ॥ दस इन्द्रियोंकी, पाँच प्राणोंकी, एक मनकी ये सोलह कलायें होती हैं और सत्रहवाँ आत्मा साक्षी माना जाता है ॥ ३१५ ॥ हे शिष्य ! अब मैं द्वादशलिंगात्मक लिंगतोभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाता हूँ, सुनो। पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणकी ओर छत्तीस-छत्तीस रेखायें खींचे ॥ ३१६ ॥ इसमें कुल बारह सौ पच्चीस पाद होंगे। तीन पादसे खण्डेन्दु बनेगा और कोणकी ओर छः पादकी शृङ्खला रहेगी ॥ ३१७ ॥ तेरह पादकी दो वल्लरी, नौ पादका भद्र, भद्रके ऊपर तीन पादकी पीली शृंखला, तेरह पादकी वापी और अट्ठारह पादका लिंग बनाकर पंक्तिमें चौदह कोष्ठक शोभाके लिये रहने दे। उनके ऊपरवाली पंक्तिमें सत्रह कोष्ठक रहेंगे और चारों ओरसे सफेद रङ्गकी एक पूजापंक्ति रहेगी ॥ ३१८–३२० ॥ पूजापंक्तिकी भीतरवाली पंक्तिमें अस्सी कोष्ठक रहेंगे। वे उन पंक्तियोंके बीचमें परिधिका काम देंगे ॥ ३२१ ॥ परिधिके भीतरवाले कोष्ठकोंसे सर्वतोभद्रकी रचना करे। इस भद्रमें जो विशेषता है, उसे समझ लो। इसकी शृङ्खला छः पादकी रहेगी ॥ ३२२ ॥ तेरह पादकी वल्लरी बनेगी। बारह पादका भद्र रहेगा। पच्चीस पादकी वापी रहेगी और सोलह पादकी परिधि बनेगी ॥ ३२३ ॥ बीचमें नौ पादका एक कमल बनेगा, जिसमें कर्णिका तथा केसर आदि भी रहेंगे। मण्डलके चारों ओर सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंकी रचना करनी होगी ॥ ३२४ ॥ इसमें तीन परिधियाँ रहेंगी और कई द्वार भी रहेंगे। इसमें उज्ज्वल चन्द्रमा, काली शृंखला, नील वल्लरी और लाल भद्र रहेगा। दूसरी शृंखला पीत वर्णकी और वापी सफेद रहेगी। आस-पास कृष्ण वर्णके बारह लिंग बनेंगे ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ परिधि पीले रङ्गकी और कमल पाँच रंगका बनेगा। उसकी कर्णिका तथा केसर पीतवर्णका रहेगा ॥ ३२७ ॥ हे शिष्य ! अब मैं इसका एक दूसरा प्रकार बतला रहा हूँ। पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण दोनों ओर सत्ताईस-सत्ताईस रेखायें खींचे ॥ ३२८ ॥ इसके छत्तीस पादोंसे सर्वतोभद्र तथा ३२४ पादसे अन्य वस्तुओंकी रचना करे

परिधिस्तत्समंताच्च प्रकल्प्यः पीतवर्णकः । अष्टोत्तरशतैर्लिंगतोभद्रं कथितं यथा ॥३३०॥
तस्य चतुर्षु पार्श्वेषु रचयेदर्कलिंगकम् । कोणे कोणे त्रिपदोऽब्जः शृंखला सप्तपादिका ॥३३१॥
वल्लीमनुपदा भद्रं षट्पदं त्रींदुवापिका । लिंगं षड्विंशपदजं भद्रं स्याद्वापिकोपरि ॥३३२॥
लिङ्गपार्श्वपदान्येव षट् पीतानि प्रकल्पयेत् । लिंगोपरितना वीथी नीला वल्ल्योर्नियोजयेत् ३३३॥
चतुष्पदैर्लिङ्गशिरस्तथा परिधयो बहिः । सर्वाणि तु यथापूर्वमुक्तवर्णैः सुरञ्जयेत् ॥३३४॥
चतुर्विंशतिरालेख्या रेखाः प्राग्दक्षिणायताः । कोणेषु शृङ्खला पंचपदा वल्ल्यश्च पार्श्वतः ॥३३५॥
पदैर्नवभिरालेख्याश्चतुर्भिर्लघुशृङ्खलाः । लघुवल्ल्यः पदैः षड्भिस्ततोऽष्टादशभिः पदैः ॥३३६॥
कृत्वा लिंगानि वाप्यस्तु त्रयोदशभिरन्तरा । ततो वीथीद्वयेनैव पीठं कुर्याद्विचक्षणः ॥३३७॥
तस्य पादाः पंचपदा द्वाराण्यपि तथैव च । एकाशीतिपदं मध्ये पद्मं स्वस्तिकमिष्यते ॥३३८॥
कोणेषु शृंखलाः कार्याः पदैस्त्रिभिरतः परम् । पदैश्चतुर्भिर्दिक्षु स्युर्भद्राण्येषां समंततः ॥३३९॥
एकादशपदे वल्ल्यौ मध्येऽष्टदलमालिखेत् । पद्मं नवपदं ह्येतल्लिंगतोभद्रमिष्यते ॥३४०॥
शृंखला कृष्णवर्णेन वल्ली नीलेन पूरयेत् । रक्तेन शृंखला लघ्वी वल्ली पीतेन पूरयेत् ॥३४१॥
लिंगानि कृष्णवर्णानि श्वेतेनाप्यथ वापिका । पीठं स्वपादं श्वेतेन पीतेन द्वारपूरणम् ॥३४२॥
मध्ये स्युः शृंखला रक्ता वल्लीर्नीलेन पूरयेत् । भद्राणि पीतवर्णानि पीता पंकजकर्णिजा ॥३४३॥
दलानि श्वेतवर्णानि यद्वा चित्राणि कल्पयेत् । तिस्रो रेखा बहिः कार्याः सितरक्तासिताः क्रमात्३४४॥
ऊर्ध्वलिंगोद्भवं ह्यष्टलिंगतोभद्रमुच्यते । अन्यन्मयातिरम्यं तच्छृणु शिष्यात्र कौतुकात् ३४५॥
अष्टाविंशतिरेखाश्च तिर्यगूर्ध्वं समंततः । सप्तविंशतिकोष्ठेषु षडन्ते परिधयः स्मृताः ॥३४६॥
कोणेषु त्रिपदैश्चन्द्रः शृङ्खला पञ्चपादिका । वाप्यर्कपादजा भद्रषट्कं षट्षट्पदात्मकम् ॥३४७॥

॥ ३२९ ॥ उसके चारों ओर पीतवर्णकी परिधि बनावे। पहले जो मैंने अष्टोत्तरशतात्मक लिंगतोभद्र बतलाया है, उसके चारों बगल द्वादश लिंगकी रचना करे। प्रत्येक कोणमें तीन पादका कमल बनाकर सात पादकी शृंखला बनावे ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ फिर चौदह पादकी बल्लरी, छ पादका भद्र, तीन तीन पादका चन्द्रमा और वापी तथा छब्बीस पादका लिंग वापिकाके ऊपर बनाया जायगा ॥ ३३२ ॥ लिंगके बगलवाले छः पाद पीले रङ्गसे रङ्ग दिये जायँ। लिंगके ऊपरवाली शृङ्खला नील बल्लरियोंके बीचमें नियुक्त कर दे ॥ ३३३ ॥ चौदह पादसे लिंग, मस्तक तथा परिधियाँ बनावे। बाकी सब जैसा ऊपर कह आये है, उसके अनुसार ही रहने दे ॥ ३३४ ॥ पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणकी ओर चौबीस-चौबीस रेखायें खींचे। कोणमें पाँच पादकी शृङ्खला तथा नौ पादोंकी बल्लरियाँ बनावे। चार पादकी छोटी शृङ्खला बनावे। छः पादकी लघु बल्लरी बनावे। अट्ठारह पादोंसे लिंग एवं तेरह पादकी वापियाँ बनावे। फिर दो वीथियोंसे पीठकी रचना करे ॥ ३३५–३३७ ॥ उस पीठका पैर पाँच पादसे तथा द्वार पाँच पादसे बनाकर मध्यमें इक्यासी पादका कमल बनेगा ॥ ३३८ ॥ तीन-तीन पादोंसे कोनोंमें शृङ्खलायें बनावे। चारों दिशाओंमें चार-चार पादके भद्र बनेंगे ॥ ३३९ ॥ ग्यारह पादकी दो बल्लरियाँ बनावे। नौ पादसे मध्यमें अष्टदल कमलकी रचना करे। यह भी एक प्रकारका लिङ्गतोभद्र है ॥ ३४० ॥ इसमें भी शृङ्खला कृष्ण वर्ण और बल्लरी नीले रङ्गसे पूर्णकी जायगी। रक्त वर्णसे लघु शृङ्खला एवं पीत वर्णसे शेष बल्लरीकी पूर्ति की जायगी ॥ ३४१ ॥ इसके लिंग कृष्ण वर्णके और वापी सफेद रङ्गकी रहेगी। इसकी पीठ और इसके पाद भी श्वेत रहेंगे और पीत वर्णसे इसके द्वार रंगे जायँगे ॥ ३४२ ॥ मध्यमें रक्त वर्णकी शृंखला और नील वर्णसे बल्लरी पूर्ण की जायगी। सब भद्र पीतवर्णके रहेंगे और कमलकी कर्णिका भी पीले रङ्गकी रहेगी ॥ ३४३ ॥ कमलके दलोंको सफेद या चित्र वर्णसे पूर्ण करे। बाहर तीन रेखायें रहेंगी और क्रमशः उनका वर्ण उज्ज्वल, रक्त तथा कृष्ण रहेगा ॥ ३४४ ॥ अब हम ऊर्ध्वलिंगात्मक अष्टलिङ्गतोभद्रकी रचनाका दूसरा प्रकार बतलाते हैं, उसे मन लगाकर सुनो ॥ ३४५ ॥ सीधी और तिरछी अट्ठाईस-अट्ठाईस रेखायें खींचे। सत्ताईस कोष्ठक पर्यन्त छः छः कोष्ठकके बाद परिधियाँ रहेंगी ॥ ३४६ ॥ कोणमें

ऊर्ध्वे भद्रे रविपदे पदैरष्टादशैः शिवाः । आत्मनोऽभिमुखाः सर्वे कार्या ह्यष्ट शुभावहाः ॥३४८॥
त्रयोदशांघ्रिजा वापी तत्त्रयं पश्चिमे स्मृतम् । पूर्वे त्वेका द्वे शकले शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥३४९॥
तिर्यग्भद्रे वेदपदे पदन्यूनोर्ध्ववल्लरी । दक्षिणोत्तरतश्चापि वापीनां शकलाष्टकम् ॥३५०॥
उभयोर्लिङ्गयोर्माला सा त्रिभिर्नयनैः स्मृता । सर्वत्र नेत्रे द्वे ज्ञेये दक्षिणोत्तरयोस्त्रिभिः ॥
पृथक् चत्वारि भद्राणि ह्यधोभद्रे चतुष्पदे ॥३५१॥
दक्षिणोत्तरदिग्भागे पूर्ववल्ल्यौ च संधयेत् । त्र्यन्ते मध्ये तु परिधिः पञ्चविंशैर्जलेरुहम् ॥३५२॥
शृंखला द्विपदा मध्ये वल्ली षट्पादजा स्मृता । वाप्यः पञ्चपदैर्ज्ञेया भद्रं वेदपदात्मकम् ॥३५३॥
सिता वापी शिवः कृष्णः पद्मभद्रे च लोहिते । तिर्यग्भद्रे लिंगमाले परिधी पीतवर्णकौ ॥३५४॥
नेत्रेन्दू धवलौ कृष्णा शृंखला हरिता लता । पदत्रयं हि वाप्यूर्ध्वं तद्यथारुचि पूरयेत् ॥३५५॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिः परिधयः स्मृताः । अष्टलिंगात्मकं ज्ञेयं लिंगतोभद्रमुत्तमम् ॥३५६॥
अथवाऽन्यौ द्वौ प्रकारौ प्रोच्येते शृणु तावपि । द्वात्रिंशच्चरणेष्वेवं चतुर्लिङ्गं तथाऽष्टकम् ॥३५७॥
युक्त्या विरचयेत्तत्र विशेषोऽथ निगद्यते । आद्य लिंगं चतुर्विंशपदमष्टेंदुवापिका ॥३५८॥
भद्रं विंशपदं चान्यल्लिंगमष्टादशात्मकम् । भद्रं नवपदं शेष यावदवधि योजयेत् ॥३५९॥
रेखास्त्वष्टादश प्रोक्ताश्चतुर्लिंगसमुद्भवे । कोणेन्दुस्त्रिपदः श्वेतस्त्रिपदैः कृष्णशृङ्खला ॥३६०॥
वल्ली सप्तपदा नीला भद्रं रक्तं चतुष्पदम् । भद्रपार्श्वे महालिंगं कृष्णमष्टादशैः पदैः ॥३६१॥
शिवपार्श्वे तु वापीं च कुर्यात्पञ्चपदां सिताम् । पदमेकं तथा पीतं भद्रं वाप्यस्तु मध्यतः ॥३६२॥
शिरसि शृंखला पार्श्वे कुर्यात्पीतं पदत्रयम् । लिंगानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशत्यो रक्तवर्णकाः ॥३६३॥

तीन पादका चन्द्रमा रहेगी और पाँच पादकी शृंखला बनायी जायगी। बारह पादकी वापी और छः-छः पादके छः भद्र बनेंगे ॥ ३४७ ॥ ऊपरके दोनों भद्र बारह पादके रहेंगे और अट्ठारह पादके भद्र बनाये जायँगे। इन सबको अपने अभिमुख बनावे ॥ ३४८ ॥ तेरह पादोंकी कुल वापियाँ रहेंगी। तिसमें पश्चिमकी ओर तीन वापी, पूर्वकी ओर एक वापी तथा दो खण्डवापी बनायी जायगी। शेष सब पूर्ववत् रहेंगे ॥ ३४९ ॥ इसमें बेड़ा भद्र चार पादका और तीन पादकी ऊर्ध्ववल्ली रहेगी। दक्षिण और उत्तरकी ओर खाण्डवापियें रहेंगी ॥ ३५० ॥ तीन नेत्रोंसे इन दोनों लिङ्गोंकी माला बनायी जायगी। दक्षिण और उत्तर दो-दो और तीन-तीन पादोंके दो नेत्र बनेंगे। चार भद्र पृथक् बनाये आयँगे और उनमें नीचेवाले दोनों भद्र चार पादके रहेंगे ॥ ३५१ ॥ दक्षिण और उत्तरकी ओर दो वल्लियोंकी योजना की जायगी। तीन पादसे मध्यमें परिधि बनेगी और पच्चीस पादका कमल बनेगा ॥ ३५२ ॥ इसमें शृंखला दो पादकी और मध्यमें छः पादसे वल्ली बनायी जायगी। पाँच पादकी वापियाँ बनेंगी और चार पादका भद्र बनेगा ॥ ३५३ ॥ इसकी वापियाँ सफेद, शिव कृष्ण, पद्म और भद्र रक्तवर्णके रहेंगे। तिरछा भद्र, लिङ्ग, माला तथा दोनों परिधियाँ पीत वर्णकी रहेंगी ॥ ३५४ ॥ नेत्र तथा इन्दु ये दोनों सफेद रहेंगे। शृंखला काली और लता हरी रहेगी। वापीके ऊपरवाले तीन पादोंको जैसी अपनी रुचि हो, उस प्रकार रङ्गकर बनावे ॥ ३५५ ॥ इसके बाहरकी परिधियाँ क्रमशः पीली, सफेद, लाल तथा काली रहेंगी। यह मैंने तुमको अष्टलिङ्गात्मक लिंगतोभद्र बतलाया ॥३५६॥ अब इसके अन्य दो प्रकार बतलाते है, उन्हें भी सुन लो। तेईस चरणोंसे चार या आठ लिंग युक्तिपूर्वक बनावे। अब उसमें जो विशेषतायें हैं, उन्हें बतलाते हैं। आदिवाली पंक्तिमें चौबीस पादकी अट्ठारह वापिएँ बनेंगी ॥ ३५७ ॥ ६५८ ॥ बीस पादका भद्र बनेगा। दूसरा लिंग अट्ठारह पादका बनेगा। नौ पादका भद्र बनेगा। बाकी सब पहलेके समान बनेंगे ॥ ३५९ ॥ चतुर्लिङ्गात्मक भद्रमें अट्ठारह रेखायें खींचे। इसमें भी कोणका चन्द्रमा तीन पादका और कृष्ण वर्णकी शृंखला रहेगी ॥ ३६० ॥ सात पादसे नीले रङ्गकी वल्लरी, चार पादसे रक्त वर्णका भद्र और भद्रके पास अट्ठारह पादसे कृष्ण वर्णका महालिंग बनावे ॥ ३६१ ॥ शिवके पास पाँच पादकी सफेद वापी बनावे।

परिधिः पीतवर्णस्तु पदैः षोडशभिः स्मृतः । पदैस्तु नवभिः पश्चात्पद्मं चित्रं सकर्णिकम् ॥३६४॥
तिर्यगूर्ध्वं गता रेखाः कार्याः स्निग्धास्त्रयोदश । कोणेंदुस्त्रिपदः कार्यः शृंखला त्रिपदा स्मृता ॥३६५॥
वल्ली च षट्पदा नीला रक्तं भद्रं प्रकल्पयेत् । पदैर्द्वादशभिः स्पष्टमुत्तरे पूर्वदक्षिणे ॥३६६॥
पश्चिमायां महारुद्रमष्टाविंशतिकोष्ठके । लिंगपार्श्वे तथा मूर्ध्नि अष्ट कोष्ठास्तु पीतकाः ॥३६७॥
लिंगमेकं तथा गौर्यास्तिलकं प्रोक्तमण्डले । पूजयेन्मण्डले चैव तस्य गौरी प्रसीदति ॥३६८॥
प्रागुदीच्यां गता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः । खण्डेंदुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिः पदैः ॥३६९॥
एकादशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । चतुर्विंशत्पदा वापी परिधिर्विंशकैः पदैः ॥३७०॥
मध्यं षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम् । श्वेतेंदुशृंखला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत् ॥३७१॥
भद्रारुणं सिता वापी पाते परिधिकर्णिके ।
रक्तं वा चित्रितं पद्मं बाह्याः सत्त्वरजस्तमाः । सर्वतोभद्रकं चेदं कर्त्तव्यं सर्वकर्मसु ॥३७२॥
एवं लिंगतोभद्राणां रचनाः कथिता मया । एताः शिवपरा ज्ञेया न योग्या विष्णुपूजने ॥३७३॥
रामलिंगात्मकं योग्यं श्रीविष्णोरर्हणस्य च । पूजने त्वेक एवात्र तद्विस्तारेण कथ्यते ॥३७४॥
शिवस्य पूजने लिंगमुपास्यं परिचिंतयेत् । उपासिका राममुद्रा ज्ञेया तद्वद्भवानपि ॥३७५॥
लिंगतोभद्रवच्चात्र समावाह्यातिबुद्धितः । रामतोभद्रकं यच्च ज्ञेयं विष्णुपरं हि तत् ॥३७६॥
रमा रामेति वर्णवच्चिह्नितं भद्रकं कृतम् । धिया देवीपरं तच्च ज्ञातव्यं सर्वकर्मसु ॥३७७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे रामदासविष्णुदास-संवादे रामलिंगतोभद्राणां तथा लिंगतोभद्राणां रचनाप्रकारकथनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

एक पादका एक पीला भद्र बनावे। मध्यमें वापी, मस्तकपर शृंखला, बगलमें पीले रङ्गके तीन पाद और लिंग, स्कन्धमें लाल वर्णके बीस कोष्ठक बनावे ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ सोलह पादोंसे पीत वर्णकी परिधि और उसके आगे नौ पादोंसे विविध वर्णकी कर्णिकायुक्त कमल बनावे ॥ ३६४ ॥ तीखी और सीधी तेरह रेखायें खींचे। कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे ॥ ३६५ ॥ पीले वर्णसे छः पादकी वल्ली और रक्त वर्णका भद्र बनावे। फिर उत्तर-पूर्व-दक्षिण तथा पश्चिम कोणमें बारह पादोंसे अट्ठाईस कोष्ठकोंमें महारुद्रका निर्माण करे। लिंगके बगलमें तथा मस्तकके आठ कोष्ठकोंको पीले रङ्गसे रङ्गे ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ इसके मण्डलमें गौरीका लिङ्ग बनावे। जो प्राणी इस मण्डलका पूजन करता है, उसपर गौरी प्रसन्न होती हैं ॥ ३६८ ॥ पूर्व और उत्तरकी ओर १९ रेखायें खींचे। कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे। पाँच पादकी शृंखला, ग्यारह पादकी वल्ली और नौ पादोंसे भद्रकी रचना करे। चौबीस पादकी वापी और बीस पादकी परिधि बनावे ॥ ३६९ ॥ ३७० ॥ मध्यमें सोलह पादका अष्टदल कमल बनावे। इस भद्रमें चन्द्रमा सफेद, शृंखला काली, वल्ली नीली, भद्र लाल, वापी सफेद, परिधि पीले वर्णकी, कर्णिका लाल और विविध वर्णका कमल बनावे। बाहर सत्त्व, रज और तम रहेगा। इस सर्वतोभद्रको सब कामोंमें बनाना चाहिए ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ यह सब लिङ्गतोभद्रकी रचनाका प्रकार मैंने बतलाया है। ये सब शिवकी पूजामें ही काम देंगे, विष्णुपूजनमें नहीं ॥ ३७३ ॥ विष्णुकी पूजामें श्रीरामलिंगतोभद्रका ही उपयोग करना चाहिए। प्रत्येक पूजनमें एक देवताकी ही प्रधानता रहती है। इसी बातको अब विस्तारपूर्वक बतला रहे हैं ॥ ३७४ ॥ शिवकी पूजामें लिङ्ग उपास्य रहता है। इसलिये उसीका ध्यान करना चाहिए। इसमें उपासिका राममुद्रा है और लिंगतोभद्रके समान ही इसमें भी आवाहन किया जाता है। रामतोभद्र विष्णुपरक है ॥३७५॥३७६॥ इसमें रमा राम ये वर्ण चिह्नित किये हुए रहते हैं। इसलिए कुछ लोग रामतोभद्रको देवीपरक भी कहते हैं। अस्तु, कहनेका भाव यह है कि यह भद्र सब कामोंमें प्रयुक्त किया जा सकता है ॥ ३७७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामतोभद्रमें देवताओंकी स्थापनाविधि तथा रामनवमीकी कथा)

अथ सर्वतोभद्रं तद्देवताश्च लिख्यन्ते । प्राणानायस्य देशकालौ स्मृत्वा रामतोभद्रदेवतास्थापनं वा रामलिंगतोभद्रदेवतास्थापनं वा रमानामतोभद्रदेवतास्थापनं वा रमानामतोभद्रदेवतास्थापनं करिष्य इति संकल्प्य । ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रस्य वामदेवऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मादेवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ 'ब्रह्मजज्ञानं०' सर्वतोभद्रमध्ये ब्रह्माणमावाहयामि ॥ १ ॥ उत्तरे वापीप्रांतभागे 'आप्यायस्वस०' सोमाय नमः सोममावाहयामि ॥२॥ ईशान्यां खंडेंदौ 'तमीशानंज०' ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि ॥ ३ ॥ पूर्वस्यां वाप्यां 'त्रातारमिंद्र०' इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ॥ ४ ॥ आग्नेय्यां खंडेंदौ 'अग्निदूतं०' अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ ५ ॥ दक्षिणस्यां वाप्यां 'यमायत्वांगिर०' यमाय नमः यममावाहयामि ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यां खंडेंदौ 'असुन्वंतं०' निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि ॥ ७ ॥ पश्चिमायां वाप्यां 'तत्त्वायामि०' वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि ॥ ८ ॥ वायव्ये खंडेंदौ 'आनोनियुद्भिः०' वायवे नमः वायुमावाहयामि ॥ ९ ॥ वायुसोममध्ये भद्रे 'निवेशनीसंगमनीवसूनां०' ध्रुवं अध्वरं सोम अपः अनिलं अनलं प्रत्यूषं प्रभासमित्यष्टवसूनावाहयामि ॥ १० ॥ सोमेशानमध्ये भद्रे 'नमस्ते रुद्र०' वीरभद्रं शंभु गिरिशं अजैकपादं अहिर्बुध्न्यं पिनाकिनं भुवनाधीश्वरं कपालिनं दिक्पतिं स्थाणुं रुद्रमित्येकादश रुद्रानावाहयामि ॥ ११ ॥ ईशानेंद्रमध्ये भद्रे 'आकृष्णेन०' भगं वरुण सूर्यं वेदांगं भानुं रविं गभस्तिं हिरण्यरेतसं दिवाकरं मित्रं आदित्यं विष्णुमिति द्वादशादित्यानावाहयामि ॥ १२ ॥ इन्द्राग्निमध्ये भद्रे 'अश्विना तेजसा चक्षु०' अश्विनीकुमाराभ्यां नमः अश्विनौ देवावावाहयामि ॥ १३ ॥ अग्नियममध्ये भद्रे 'समाश्वर्पणिर्धृतो०' सपैतृकान् देवानावाहयामि ॥ १४ ॥ यमनिर्ऋतिमध्ये भद्रे 'अभित्यं देवं०' यक्षेभ्यो नमः यक्षानावाहयामि ॥ १५ ॥ निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये भद्रे

अब सर्वतोभद्र और उसके देवताओंके आवाहन तथा स्थापनकी विधि बतलाते हैं। प्राणायामपूर्वक देश-काल आदिका उच्चारण करके "रामतोभद्रके देवताका स्थापन, लिंगतोभद्रके देवताका स्थापन, रामनामतोभद्रके देवताका स्थापन अथवा रमारामतोभद्रके देवताका स्थापन करूँगा।" ऐसा संकल्प करके "ब्रह्मजज्ञानम्" आदि मंत्रको पढ़ता हुआ विनियोग करे । "ब्रह्मजज्ञानम्" यह मंत्र पढ़कर ब्रह्माका आवाहन करे । उत्तर वापीके पास 'आप्यायस्व' यह मंत्र पढ़कर सोमका आवाहन करे ॥ १ ॥ २ ॥ ईशानके खण्डेन्दुमें 'तमीशानं' इस मंत्रसे ईशका आवाहन करे ॥ ३ ॥ पूर्वकी वापीमें 'त्रातारं' इस मंत्रसे इन्द्रका आवाहन करे ॥ ४ ॥ अग्निकोणके इन्दुमें 'अग्निदूतं' इस मंत्रसे अग्निका आवाहन करे ॥ ५ ॥ दक्षिण वापीमें 'यमायत्वा' इस मंत्रसे यमका आवाहन करे ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यके खण्डेन्दुमें 'असुन्वतं' इस मंत्रसे निर्ऋतिका आवाहन करे ॥ ७ ॥ पश्चिम वापीमें 'तत्त्वायामि' इस मंत्रसे वरुणका आवाहन करे ॥ ८ ॥ वायव्य कोणके खण्डेन्दुमें 'आनो नियुद्भिः' इस मंत्रसे वायुका आवाहन करे ॥ ९ ॥ वायु और सोमके मध्यवाले भद्रमें 'निवेशसीसंग' इस मंत्रसे ध्रुव, अध्वर, सोम आदि आठ वसुओंका आवाहन करे ॥ १० ॥ सोम और ईशानके मध्यवाले भद्रमें 'नमस्तेरुद्र' इस मंत्रसे वीरभद्र, शम्भु, गिरिश, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, भुवनाधीश्वर, कपाली, दिक्पति, स्थाणु और रुद्र इन एकादश रुद्रोंका आवाहन करे ॥ ११ ॥ ईशान और इन्द्रके मध्यवाले भद्रमें 'आकृष्णेन' इस मन्त्रसे भग, वरुण, सूर्य, वेदांग, भानु, रवि, गभस्ति, हिरण्यरेतस, दिवाकर, मित्र, आदित्य और विष्णु इन द्वादश सूर्योंका आवाहन करे ॥ १२ ॥ इन्द्र और अग्निके मध्यवाले भद्रमें 'अश्विना तेजसा' इस मन्त्रसे अश्विनीकुमारोंका आवाहन करे ॥ १३ ॥ अग्नि और यमके मध्यवाले भद्रमें 'समाश्वर्पणिः'

'आयंगौः०' भूतनागेभ्यो नमः भूतान्नागानावाहयामि ॥ १६ ॥ वरुणवायुमध्ये भद्रे 'नदीभ्यः पौञ्जिष्टं' गन्धर्वाप्सरोभ्यो नमः गन्धर्वाप्सरस आवाहयामि ॥ १७ ॥ ब्रह्मसोममध्ये वाप्यां 'यदक्रंदः प्रथमं०' स्कंदाय नमः स्कंदमावाहयामि ॥ १८ ॥ 'नमः शंभवे०' नंदीश्वराय नमः नंदीश्वरमावाहयामि ॥१९॥ 'भद्रं कर्णेभिः०' शूलाय नमः शूलमावाहयामि ॥ २० ॥ 'विश्वकर्माह्यज०' महाकालाय नमः महाकालमावाहयामि ॥ २१ ॥ ब्रह्मेशानमध्ये वल्लीषु 'आदितिर्द्यौरं०' ऋक्षादिभ्यो नमः ऋक्षादीनावाहयामि ॥२२॥ ब्रह्मेंद्रमध्ये वाप्यां 'श्रीश्चते०' दुर्गायै नमः दुर्गामावाहयामि ॥ २३ ॥ 'इदं विष्णु०' विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ॥२४॥ ब्रह्माग्निमध्ये वल्लीषु 'उदीरिता०' स्वधायै मनः स्वधामावाहयामि ॥ २५ ॥ ब्रह्मयममध्ये वाप्यां 'अरंमृत्यो०' मृत्यवे नमः मृत्युमावाहयामि ॥ २६ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्यां 'गणनांत्वा०' गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि ॥२७॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्यां 'शन्नोदेवी०' अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि ॥ २८ ॥ ब्रह्मवायुमध्ये वल्लीषु 'मरुतोयस्य०' मरुते नमः मरुतमावाहयामि ॥ २९ ॥ ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः 'स्योनापृथिवि०' पृथ्व्यै नमः पृथ्वीमावाहयामि ॥३०॥ तत्रैव 'पञ्च नद्यः सरस्वती०' गंगादिसर्वनदीरावाहयामि ॥ ३१ ॥ तत्रैव 'धाम्नोधाम्नोराजंस्ततोवरुण०' सप्तसागरेभ्यो नमः सप्तसागरानावाहयामि ॥३२॥ ततः कर्णिकोपरि नाममंत्रेण मेरवे नमः गदामावाहयामि ॥ ३३ ॥ ततः पीतपरिधौ सोमादिसन्निधौ क्रमेण आयुधानि । सोमसमीपे गदायै नमः गदामावाहयामि ॥ ३४ ॥ ईशानसमीपे शूलाय नमः शूलमावाहयामि ॥३५॥ इन्द्रसमीपे वज्राय नमः वज्रमावाहयामि ॥३६॥ अग्निसमीपे शक्तये नमः शक्तिमावाहयामि ॥३७॥ यमसमीपे दंडाय नमः दंडमावाहयामि । ३८॥ निर्ऋतिसमीपे खड्गाय नमः खड्गमावाहयामि ॥ ३९ ॥ वरुणसमीपे पाशाय नमः पाशमावाहयामि ॥४०॥ वायुसमीपे अंकुशाय नमः अंकुशमावाहयामि ॥४१॥ पुनः सोमस्योत्तरे सदा समीपे

इस मन्त्रसे सपैतृक विश्वेदेवका आवाहन करे ॥ १४ ॥ यम और निर्ऋतिके बीचवाले भद्रमें 'अभित्यं देवं' इस मन्त्रसे यक्षोंका आवाहन करे ॥ १५ ॥ निर्ऋति और वरुणके बीचवाले भद्रमें 'आयंगौः' इन मन्त्रसे भूतों और नागोंका आवाहन करे ॥ १६ ॥ वरुण और वायुके मध्यमें 'नदीभ्यः' इस मन्त्रसे गन्धर्वों और अप्सराओंका आवाहन करे ॥ १७ ॥ ब्रह्मा और सोमके मध्यवाली वापीमें 'यदक्रन्दः' इस मन्त्रसे स्कन्दका आवाहन करे ॥ १८ ॥ 'नमः शंभवे' में नन्दीश्वर, 'भद्रं कर्णेभिः' से शूल और 'विश्वकर्मा' इस मन्त्रसे महाकालका आवाहन करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मा और ईशानके मध्यवाली वल्लियोंमें 'आदितिर्द्यौः' इस मन्त्रसे नक्षत्र आदिका आवाहन करे ॥ २२ ॥ ब्रह्मा और इन्द्रके मध्यवाली वापीमें 'श्रीश्च ते' इस मन्त्रके दुर्गाका आवाहन करे ॥ २३ ॥ 'इदं विष्णुः' इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन करे ॥ २४ ॥ ब्रह्मा और अग्निके मध्यवाली वल्लीमें 'उदीरिता' इस मन्त्रसे स्वधाका आवाहन करे ॥ २५ ॥ ब्रह्मा और यमके मध्यवाली वापीमें 'अरं मृत्यो' इस मन्त्रसे मृत्युका आवाहन करे ॥ २६ ॥ ब्रह्मा और निर्ऋतिके मध्यवाली वल्लियोंमें 'गणानां त्वा' इस मन्त्रसे गणपतिका आवाहन करे ॥ २७ ॥ ब्रह्मा और वरुणके मध्यवाली वापीमें 'शन्नो देवी' इस मन्त्रसे जलका आवाहन करे ॥ २८ ॥ ब्रह्मा और वायुके मध्यवाली वल्लियोंमें 'मरुतो यस्य' इस मन्त्रसे मरुत्का आवाहन करे ॥ २९ ॥ ब्रह्माके पाँवके पासवाला कर्णिकाके नीचे 'स्योना पृथ्वि' इस मन्त्रसे पृथ्वीका आवाहन करे ॥ ३० ॥ वहाँ ही 'पञ्चनद्यः' इस मन्त्रसे गंगा आदि सब नदियोंका आवाहन करे ॥ ३१ ॥ वहाँ ही 'धाम्नो धाम्नो' इस मन्त्रसे सप्त सागरोंका आवाहन करे ॥ ३२ ॥ इसके बाद कर्णिकाके ऊपर नाममन्त्रसे मेरुका आवाहन करे ॥ ३३ ॥ पीत परिधिमें सोम आदिके पास क्रमशः आयुधोंका आवाहन करे । गदाके नाममन्त्रसे गदाका, ईशानके समीप शूलके नाममन्त्रसे शूलका, इन्द्रके समीप वज्रका, अग्निके पास शक्तिका, यमके समीप दण्डका, निर्ऋतिके पास खड्गका और वरुणके पास पाशका आवाहन करे ॥३४-४०॥ फिर वायुके

गौतमाय नमः गौतममावाहयामि ॥४२॥ ईशान्यां भरद्वाजाय नमः भरद्वाजमावाहयामि ॥४३॥ पूर्वे विश्वामित्राय नमः विश्वामित्रमावाहयामि ॥४४॥ आग्नेय्यां कश्यपाय नमः कश्यपमावाहयामि ॥४५॥ दक्षिणे जमदग्नयेनमः जमदग्निमावाहयामि ॥४६॥ नैर्ऋत्यां वसिष्ठाय नमः वसिष्ठमावाहयामि ॥४७॥ पश्चिमे अत्रये नमः अत्रिमावाहयामि ॥४८॥ वायव्यां अरुन्धत्यै नमः अरुंधतामावाहयामि ॥४९॥ पुनः पूर्वादिक्रमेण पूर्वे विश्वामित्रसमीपे ऐन्द्र्यै नमः ऐन्द्रीमावाहयामि ॥५०॥ आग्नेय्यां कौमार्यै नमः कौमारीमावाहयामि ॥५१॥ दक्षिणे ब्राह्म्यै नमः ब्राह्मीमावाहयामि ॥५२॥ नैर्ऋत्यां वाराह्यै नमः वाराहीमा० ॥५३॥ पश्चिमे चामुंडायै नमः चामुंडामा० ॥५४॥ वायव्ये वैष्णव्यै नमः वैष्णवीमा ॥५५॥ उत्तरे माहेश्वर्यै नमः माहेश्वरीमा० ॥ ५६ ॥ ईशान्यां वैनायक्यै नमः वैनायकीमा० ॥ ५७ ॥ अष्टदलमध्ये सूर्याय नमः सूर्यमा० ॥ ५८ ॥ बाह्यपूर्वाद्यष्टदिक्षु यथास्थानेषु पूर्वे सोमाय नमः सोममा० ॥५९॥ आग्नेय्यां भौमाय नमः भौममा० ॥६०॥ दक्षिणे बुधाय नमः बुधमा० ॥ ६१ ॥ नैर्ऋत्यां बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमा० ॥ ६२ ॥ पश्चिमे शुक्राय नमः शुक्रमा० ॥६३॥ वायव्यां शनैश्चराय नमः शनैश्चरमा० ॥६४॥ उत्तरे राहवे नमः राहुमा० ॥६५॥ ईशान्यां केतवे नमः केतुमा० ॥ ६६ ॥ एता देवताः सर्वतोभद्रे प्रतिष्ठाप्य ततः परिधिभूतपंक्तौ सुषेणाय नमः सुषेणमा० ॥ ६७ ॥ सर्वेषु लिंगेषु रुद्राय नमः रुद्रमा० ॥६८॥ सर्वासु वापीषु नलाय नमः नलमा० ॥६९॥ सर्वेषु भद्रेषु सुग्रीवाय नमः सुग्रीवमा० ॥७०॥ सर्वेषु तिर्यग्भद्रेषु गवयाय नमः गवयमा० ॥७१॥ सर्वासु पीतशृङ्खलासु अंगदाय नमः अंगदमावा० ॥ ७२ ॥ सर्वासु कृष्णशृङ्खलासु विभीषणाय नमः विभीषणमा० ॥७३॥ सर्वासु वल्लीषु जांबवते नमः जांबवंतमा० ॥७४॥ सर्वेषु खंडेषु मैंदाय नमः मैंदमा० ॥ ७५ ॥ सर्वासु परिधिषु द्विविदाय नमः द्विविदमा० ॥७६॥ मुद्रायां रामजानकीभ्यां नमः रामजानकीमा० ॥ ७७ ॥ मुद्रायाः पश्चिमे पीतपरिधौ लक्ष्मणाय नमः लक्ष्मणमा० ॥७८॥ मुद्राया उत्तरे भरताय नमः भरतमा० ॥७९॥ मुद्राया दक्षिणे शत्रुघ्नाय नमः शत्रुघ्नमा० ॥८०॥ मुद्रायाः पुरतः वायुपुत्राय नमः वायुपुत्रमा० ॥८१॥ बहिस्त्रिपरिधिषु श्वेतपरिधौ

समीप अंकुशका आवाहन करे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सोमके उत्तर और गदाके पास गौतमका आवाहन करे ॥ ४२ ॥ ईशान कोणमें भरद्वाजका, पूर्वमें विश्वामित्रका, आग्नेयमें कश्यपका, दक्षिणमें जमदग्निका, नैर्ऋत्यमें वसिष्ठका, पश्चिममें अत्रिका और वायव्यकोणमें अरुन्धतीका आवाहन करे ॥ ४३-४९ ॥ फिर पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे पूर्वमें विश्वामित्रके समीप ऐंद्रीका आवाहन करे ॥ ५० ॥ आग्नेय कोणमें कौमारीका, दक्षिणमें ब्राह्मीका, नैर्ऋत्यमें वाराहीका, पश्चिममें चामुण्डाका, वायव्यमें वैष्णवीका, उत्तरमें माहेश्वरीका और ईशान कोणमें वैनायकीका आवाहन करे ॥५१-५७॥ अष्टदलके मध्यमें सूर्यका आवाहन करे, बाहरके पूर्व आदि आठों दिशाओंमें यथास्थान निम्नलिखित देवताओंका आवाहन करे। पूर्वमें सोमका आग्नेय कोणमें भौमका, दक्षिणमें बुधका, नैर्ऋत्यमें बृहस्पतिका, पश्चिममें शुक्रका वायव्यमें शनैश्चरका, उत्तरमें राहुका और ईशान कोणमें केतुका आवाहन करे ॥ ५८-६६ ॥ सर्वतोभद्रमें इन देवताओंकी स्थापना करके परिधिभूत पंक्तियोंमें सुषेणका आवाहन करे ॥ ६७ ॥ सब लिंगोंमें रुद्रका सब वापियोंमें नलका, सब भद्रोंमें सुग्रीवका, सब तीखे भद्रोंमें गवयका, सब पीत शृंखलाओंमें अङ्गदका और सब कृष्ण शृंखलाओंमें विभीषणका आवाहन करना चाहिए ॥ ६९-७३ ॥ सब वल्लियोंमें नाममन्त्रसे जाम्बवान्‌का आवाहन करे ॥ ७४ ॥ उसी प्रकार सब खण्डोंमें मैंदका, सब परिधियोंमें द्विविदका, मुद्रामें राम और जानकीका आवाहन करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मुद्राकी पश्चिमवाली पीत परिधिमें लक्ष्मणका आवाहन करे ॥७८॥ मुद्राके उत्तर ओर भरतका आवाहन करे ॥ ७९ ॥ मुद्राके दक्षिण ओर शत्रुघ्नका आवाहन करे ॥ ८० ॥ मुद्राके आगे

भागीरथ्यै नमः भागीरथीमा० ॥ ८२ ॥ रक्तपरिधौ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीमा० ॥८३॥ कृष्णपरिधौ यमुनायै नमः यमुनामा० ॥ ८४ ॥ एवमेव रमारामभद्रेऽप्यावाहनं कार्यम् । रमारामभद्रे मुद्रायामेव विशेषः । आदौ रमामावाह्य राममावाहयेत् । एवमावाहनं कृत्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् । शेषान्नेन दिग्बलिः कार्यः ॥

इति आनन्दरामायणांतर्गतरामतोभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

अथ रामनवमीकथा

श्रीरामदास उवाच

शिष्य यद्यत्प्रियं तस्मै रामाय तद्वदाम्यहम् । मासेषु चैत्रमासस्तु राघवस्यातिवल्लभः ॥ १ ॥
पक्षयोः सितपक्षस्तु प्रियोऽस्ति राघवस्य हि । सर्वासु तिथिषु श्रेष्ठा नवमी राघवप्रिया ॥ २ ॥
सूर्यवंशसमुद्भूतस्तस्माच्च भानुवासरः । प्रियोऽतिराघवस्यैव नक्षत्रेषु पुनर्वसुः ॥ ३ ॥
चंपकः पुष्पजाती हि तुलसी वै तथैव च । अथवा नवकं चापि पुष्पाणां राघवप्रियम् ॥ ४ ॥
जातिश्चंपकमंदारौ तुलसी मुनिमालती । दमनः केतकी सिंही पुष्पाणां नवकं स्मृतम् ॥ ५ ॥
तथा नवविधं चान्नं राघवस्यातिवल्लभम् । मोदको लड्डुको मंडो पूर्णगर्भाथ फेणिका ॥ ६ ॥
वटकः पर्पटः खाद्यं घृतपक्वं नवं त्विति । एतानि नव भक्ष्याणि राघवस्य प्रियाणि हि ॥ ७ ॥
अथवाऽन्यन्प्रवक्ष्यामि दिव्यान्नवकं शुभम् । मोदको लड्डुको मंडो वटकः फेणिका तथा ॥ ८ ॥
वरान्नमोदनः शाकं पायसं नवकं शुभम् । अन्यच्छृणुष्व भो शिष्य नवान्नं राघवप्रियम् ॥ ९ ॥
एकाशीतिकुडवं च गोक्षीरं तण्डुलास्तथा । सपादद्विकुडवाश्च मुद्गाश्च वितुषास्तथा ॥१०॥
कुडवस्त्वेक एवाथ शर्करा कुडवा नव । त्रिकुडवं मधु प्रोक्तं घृतं च कुडवद्वयम् ॥११॥
मारीचं कुडवाष्टांशमितं नारीफलं तथा । कुडवस्त्वेक एवाथ जातीपत्रिस्तथैव च ॥१२॥

हनुमान्‌जीका आवाहन करे ॥ ८१ ॥ बाहरकी तीन परिधियोंमेंसे श्वेत परिधिमें भागीरथी गंगाजीका आवाहन करे ॥ ८२ ॥ रक्त परिधिमें सरस्वतीजीका आवाहन करे ॥ ८३ ॥ काली परिधिमें यमुनाका आवाहन करे ॥ ८४ ॥ रमा और रामके भद्रमें भी इसी तरह आवाहन करना चाहिए । रमानामक भद्रकी मुद्रामें ही विशेषता है । पहले रमाका आवाहन करके रामका आवाहन करना चाहिए । इस तरह आवाहन करके षोडशोपचारसे पूजन करे और बाकी बचे अन्नसे दिग्बलि दे ॥

इति रामतोभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! रामचन्द्रजीको जो-जो वस्तुयें प्रिय हैं, अब उन्हें बतलाता हूँ । सब महीनोंमें चैत्रका महीना रामको प्रिय है ॥ १ ॥ शुक्ल कृष्ण इन दोनों पक्षोंमें रामकी शुक्लपक्ष प्रिय है । सब तिथियोंमें नवमी तिथि प्रिय है ॥ २ ॥ सूर्यवंशमें रामका जन्म हुआ था । इसलिये उन्हें रविवार विशेष प्रिय है । सब नक्षत्रोंमें उन्हें पुनर्वसु नक्षत्र प्रिय है ॥ ३ ॥ फूलोंमें चम्पक तथा तुलसी प्रिय हैं । नौ पुष्प रामको विशेष प्रिय हैं ॥४॥ जैसे—जूही, चम्पा, मन्दार, तुलसी, वैजयन्ती, मालती, दमनक, केतकी और सिंही इन्हीं फूलोंको एकत्र करके रामचन्द्रको अर्पित करना चाहिये ॥५॥ उसी तरह नौ प्रकारका अन्न भी भगवान्‌को प्रिय है । वे नवों ये हैं-मोदक, लड्डुक, मण्ड, पूरनपूड़ी, बटक, बताशफेनी, पापड़, खाखड़ा घीमें बना हुआ पक्वान्न, ये नौ भी भक्ष्य पदार्थ रामचन्द्रजीको प्रिय हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ अब दूसरे नौ प्रकारके खाद्य पदार्थ बतलाते हैं—मोदक, लड्डुक, मंड, वटक, फेणिका, भात, शाक, पर्पट और पायस ये ही नौ अन्न हैं । हे शिष्य ! अब रामको दूसरे प्रिय अन्न बतलाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ एकयासी कुडव गौका दूध, उतना ही चावल, सवा दो कुडव छिलका उतारी हुई मूँग ॥ १० ॥ एक कुडव चीनी, तीन कुडव मधु, दो कुडव घी, एक कुडवका अष्टमांश काली मिर्च, एक कुडव नारियलकी गरी, एक कुडवका अष्टमांश जावित्री, इनको मिलाकर बनाया हुआ पाक रामचन्द्रजीको प्रिय है । इसलिये लोगोंको चाहिये कि ये पदार्थ बनाकर भगवान्‌को अर्पण करें ॥ ११ ॥ १२ ॥

ग्राह्या मरिचमानेन नवान्नं नवभिस्त्विदम् । तोषदं रामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं सदा नरैः ॥१३॥
लघुं नवान्नं वक्ष्यामि नैवेद्यार्थं निरंतरम् । कुडवा नव गोक्षीरं तंडुलाः कुडवस्य च ॥१४॥
चतुर्थांशमिता ग्राह्याः कुडवाष्टांशसंमिताः । ग्राह्या वितुषमुद्गाश्च कुडवार्धं सिता स्मृता ॥१५॥
घृतं मुद्गसमं ग्राह्यं तावन्मानं मधु स्मृतम् । तावन्मानं श्रीफलं च मरिचं टंकसंमितम् ॥१६॥
टंकार्धा जातिपत्रश्च नवान्नं लघु कीर्तितम् । कुडवोऽर्कटकमितष्टंको मापचतुष्टयम् ॥१७॥
लघु नवान्नमेतच्च राघवाय निवेदयेत् । निरंतरं हि पूजायां राघवस्यातिहर्षदम् ॥१८॥
चूतजम्बुकपित्थाश्च बीजपूरं च दाडिमम् । खर्जूरीं नारिकेलं च कदलीफलमेव च ॥१९॥
पनसं चेति रामाय फलानि नव सर्वदा । एतान्यतिप्रियाण्यत्र पूजायां तन्निवेदयेत् ॥२०॥
सीताफलं च जंबीरं नारंगं स्निग्धमञ्जकम् । जातीफलं मातुलुंगं तथा द्राक्षाफलं शुभम् ॥२१॥
उर्वारुकं तथा धात्रीफलं चैतानि वै नव । फलानि रामपूजायामुक्तानि मुनिभिः सदा ॥२२॥
नवोपचारस्तांबूलो राघवाय निवेदयेत् । नागवल्लीः क्रमुकं च खदिरः सौध एव च । २३॥
जातीपत्रो लवंगं च जातीफलवरांगके । एला चेति नवविधस्तांबूलः कीर्त्यते बुधैः ॥२४॥
नवराजोपचारांश्च राघवाय निवेदयेत् । छत्रं सिंहासनं यानं चामरं व्यजनं तथा ॥२५॥
पानतांबूलपत्रं च पात्रं निष्ठीवनस्य च । वस्त्रकोशश्चेति राज्ञामुपचारा नव स्मृताः ॥२६॥
नवाथ भोग्यवस्तूनि राघवाय निवेदयेत् । चंदनं पुष्पमालां च द्रव्यं परिमलं तथा ॥२७॥
अवतंसः फलं चापि सुगंधतैलमुत्तमम् । ताम्बूलं कस्तुरी चापि तथा रक्ताक्षताः शुभाः ॥२८॥
एतानि भोग्यवस्तूनि राघवाय निवेदयेत् । नवोपचाराः शय्याऽपि राघवाय समर्पयेत् ॥२९॥
पर्यङ्कतूलिका रम्या वितानं चोपबर्हणम् । आदर्शो दीपिका तोयपात्रं प्रावरणं शुभम् ॥३०॥
व्यजनञ्चेति शय्यायाश्चोपचारा नव स्मृताः । नव वस्त्राणि रामाय देयान्यतिमहांति च ॥३१॥
पीतांबरमुत्तरीयं चोष्णीषं कंचुकं तथा । उष्णीषोर्ध्वस्थितं दिव्यं तथा च कटिबंधनम् ॥३२॥

॥ १३ ॥ अब मैं अर्पण करने योग्य लघु नवान्न बतलाता हूँ— नौ कुडव गायका दूध, एक कुडवका चतुर्थांश चावल, कुडवका अष्टमांश बिना छिलकेकी धुली मूंग, आधा कुडव चीनी, मूंगके बराबर ही घी, उतना ही मधु, उतना ही श्रीफल, एक टंक काली मिर्च, आधा टंक जातिपत्र, ये लघु नवान्न कहलाते हैं । बारह टंकका एक कुडव होता है और चार मासेके बराबर एक टंक होता है। यह लघु नवान्न रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए। यदि निरन्तर यह नवान्न रामचन्द्रजीको अर्पण किया जाय तो भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं ॥ १४-१८ ॥ आम, जामुन, कैथा, बीजपूर, अनार, खजूर, नारियल, केला और कटहल ये नौ फल रामचन्द्रजीको अतिशय प्रिय हैं। पूजामें इन्हें भी अर्पण करना चाहिये। कुम्हड़ा, नीबू, नारङ्गी, कसेरू, जायफल, बिजौरा, अंगूर, ककड़ी तथा आँवला ये नौ फल रामकी पूजामें आना आवश्यक है ॥ १९-२२ ॥ उसी तरह नौ उपचारोंके साथ ताम्बूल भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिये। ताम्बूलके नौ उपचार ये हैं-पान, सुपारी, खैर, चूना, जावित्री, जायफल, कपूर, केसर और इलायची। नौ राजोपचार भी रामचन्द्रजीको अर्पण करने चाहिए। जैसे-छत्र, सिंहासन, रथ, चमर, पंखा, गिलास, पानदान, ओगालदान और कपड़ेकी पिटारी, ये ही राजाओंके नौ उपचार बतलाये गये हैं। उसी प्रकार नौ भोग्य वस्तु भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए। वे वस्तुयें इस प्रकार जाननी चाहिये-चन्दन, फूलोंकी मालाएँ, इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य, तरह-तरहके फल, उत्तम सुगन्धित तेल, ताम्बूल, कस्तूरी और लाल अक्षत, इन भोग्य वस्तुओंको रामचन्द्रजीको अर्पण करे। इसी तरह नौ उपचारयुक्त शय्या भी देनी चाहिये ॥ २३-२९ ॥ पलङ्ग, गद्दा, बढ़िया चाँदनी, तकिया, शीशा, दीपक, जलपात्र, चदरा और व्यजन, ये शय्याके नौ उपचार हैं। इसी तरह अत्यन्त सुन्दर नौ कपड़े भी रामचन्द्रजीको अर्पण करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जैसे-पीताम्बर, उपरना, पगड़ी, कंचुकी, पगड़ीके ऊपर बँधनेवाला

मुखशोधनवस्त्रं च त्रिमुखं ह्यंकयोग्यकम् । तथा प्रावरणं दिव्यं नव वस्त्राणि भो द्विज ॥३३॥
नव दिव्यान्यलंकारा देयाः श्रीराघवाय हि । कुंडले कंकणे माला केयूरे नूपुरे तथा ॥३४॥
पदकं कटिसूत्रं च शृङ्खला मुद्रिकेति च । एते नव त्वलंकारा देया रामाय भक्तितः ॥३५॥
एवं शिष्य मया रामप्रीतिदानि महांति च । नवकान्यतिरम्याणि तवाग्रे कीर्तितानि हि ॥३६॥
मुख्यास्त्वत्र पदार्था हि नवकेषु मया स्मृताः । एभ्यस्त्वन्ये पदार्थाश्च ये ये संति सहस्रशः ॥३७॥
ते सर्वे राघवायातिभक्त्या देयास्तु पूजने । प्रत्यहं रामचन्द्रस्य त्रिकालं पूजनं नरैः ॥३८॥
कार्यं विद्यानुसारेण न कदा शाठ्यमाचरेत् । प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्च नवमीतिथिः ॥३९॥
तावद्विशेषतः कार्यं प्रत्यहं रामपूजनम् । विविधैर्मण्डपाद्यैश्च संपूज्य रघुनन्दनम् ॥४०॥
पारायणं तदग्रे हि कर्तव्यं नवभिर्दिनैः । आनंदरामचरितं पठनीयं तु सर्वदा ॥४१॥
नवम्यां राघवं रामतीर्थे वाहनसंस्थितम् । नीत्वा मंगलतूर्याद्यैर्ध्वजाद्यैर्दुन्दुभिस्वनैः ॥४२॥
अभिषेकस्तत्र कार्यो रुद्रसूक्तैः सुपुण्यदैः । तथा पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ॥४३॥
विष्णुसूक्तादिभिः सूक्तैरभिषिच्य रघूत्तमम् । पूजनं विस्तरेणाथ कृत्वा गेहं समानयेत् ॥४४॥
ततो हरेः कीर्तनानि स्वयं कार्याणि वा परैः । गायकैः करणीयानि वेश्याभिर्नर्तनान्यपि ॥४५॥
ततः स्वयमुपोष्याथ भक्त्या विप्रप्रपूजनम् । कार्यं वै गायकानां च पूजनं विस्तरेण हि ॥४६॥
रात्रौ जागरणं कार्यं कथाभिर्गीतनृत्यकैः । दशम्यां प्रातरुत्थाय स्नात्वा संपूज्य राघवम् ॥४७॥
मध्याह्ने रामचन्द्रस्य पूजनं ब्राह्मणेषु हि । कार्यं तस्य विधानं ते वदाम्यद्य शृणुष्व तत् ॥४८॥
एकं युग्मं तु विप्रस्य विप्राष्टं च निमंत्रयेत् । भूमिं गृहे विलिख्याथ गोमयेनातिविस्तृताम् ॥४९॥
रंगवल्ल्याश्च पद्मानि नीलपीतादिवर्णकैः । तत्र समंततः कृत्वा मध्ये सिंहासनं शुभम् ॥५०॥
स्थाप्य तत्र महावस्त्रैरासनं परिकल्पयेत् । अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं शुभम् ॥५१॥

दिव्य वस्त्र, कमरबन्द, रुमाल, अलकी तथा दुपट्टा ये नौ दिव्य वस्त्र श्रीरामचन्द्रजीको देना चाहिए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इसी तरह नौ प्रकारके दिव्य अलङ्कार भी समर्पण करे। कुण्डल, कंकण, माला, केयूर, नूपुर, पदक, कटिसूत्र (करधन), सिकड़ी और मुँदरी, ये नौ अलङ्कार रामचन्द्रजीको भक्तिपूर्वक देने चाहिये ॥३४॥ ॥ ३५ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने रामको प्रसन्न करनेवाले अतिरम्य नवक (नौ वस्तुओंका संग्रह) बतलाया। इनमें मैंने मुख्य-मुख्य चीजोंका ही दिग्दर्शन कराया है। इनके अतिरिक्त भी हजारों पदार्थ हैं। पूजामें उन्हें भी भक्तिपूर्वक अर्पण करना चाहिए। भक्तको उचित है कि प्रतिदिन रामचन्द्रजीकी त्रिकाल पूजन करे ॥ ३६–३८ ॥ अपनी जैसी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार खर्च भी करे। रामचन्द्रजीकी पूजामें कभी कार्पण्य तो करना ही नहीं चाहिए। प्रतिपदासे लेकर नवमी पर्यन्त प्रतिदिन विशेष पूजन करनेका विधान है। वह इस प्रकार है-चित्र-विचित्र मंडप बनाकर उसमें रामचन्द्रजीकी पूजा करके उनके आगे नौ दिनोंमें इस आनन्दरामायणका पारायण करे ॥ ३९–४१ ॥ नवमीको भगवान्‌को सवारीपर बिठाकर मंगलमय तुड़ही-नगाड़े आदि बाजों तथा ध्वजा आदिके साथ परम पवित्र रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त तथा विष्णुसूक्त आदिसे रामतीर्थमें रामचन्द्रजीका अभिषेक करे। इसके अनन्तर विस्तारपूर्वक पूजन करके उन्हें घरपर ले जाय ॥ ४२–४४ ॥ रातको स्वयं हरिकीर्तन करे या और लोगोंसे करावे। तदनन्तर भक्तिपूर्वक विप्रों तथा गायकोंका पूजन करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कथा, गीत तथा नृत्य आदि करता हुआ रात्रिभर जागरण करे। दशमीको सवेरे उठकर स्नान करे और रामचन्द्रजीका पूजन करके मध्याह्नके समय ब्राह्मणोंके बीचमें उनका पूजन करे। हे शिष्य ! मैं उसका विधान बतलाता हूँ, सुनो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ एक ब्राह्मणदम्पती तथा आठ अन्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। घरकी भूमिको गोबरसे खूब फैलावमें लिपवावे। फिर नील-पीत आदि वर्णोंसे चारों ओर चौक पुरवाकर बीचमें शुभ सिंहासन रक्खे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर बड़े-बड़े वस्त्रोंसे सिंहासनको

अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं शुभम् । अष्टोत्तरसहस्रं वा रामतोभद्रमुत्तमम् ॥५२॥
अथवाऽष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् । सिंहासने निधायाथ रामस्यासनमुज्ज्वलम् ॥५३॥
भद्रोपरि सपत्नीकं तत्र विप्रं निवेशयेत् । पश्चिमाभिमुखे वामभागे तत्स्त्रीं निवेशयेत् ॥५४॥
सीतारामौ तु दम्पत्योरावाह्य तदनन्तरम् । तत्पृष्ठे लक्ष्मणं विप्रं चिंतयेच्च ततः परम् ॥५५॥
भरतं रामसव्ये तु आवाह्य भूसुरे तथा ॥५६॥
विप्रेऽञ्जनिसुतं चापि रामस्याग्रे विचिंतयेत् । रामस्य वायुदिग्भागात्सुग्रीवादीन् विचिंतयेत् ॥५७॥
चतुष्कोणेषु विप्रेषु ततः पूजनमाचरेत् । नवायतनपूजेयं ज्ञेया श्रीराघवस्य हि ॥५८॥
अथवा पञ्चायतनं पञ्चविप्रेषु चिंतयेत् । ससीत शक्तिहीनेन नरेण सर्वदा भुवि ॥५९॥
अथवा यतिनं रामस्थाने भक्त्या निवेशयेत् । पूगीफलमयीं सीतां यतिवामे निवेश्य च ॥६०॥
कार्यं सम्यक्पूजनं च ततो गेहे सुवासिनीम् । सीतां मत्वा पुनः पूज्य भोजनीया सविस्तरम् ॥६१॥
आदौ सीताराघवयोः कृत्वा पूजनमुत्तमम् । ततः पूजा तु सर्वेषां कार्या नानोपचारकैः ॥६२॥
क्रमेण लक्ष्मणादीनामुपचारैस्तु षोडशैः । अथवा सह तन्त्रेण रामपूजनमाचरेत् ॥६३॥
आदावावाह्य विप्रेषु देयमासनमुत्तमम् । ततः प्राक्षाल्य पादौ च सर्वेषां च पृथक् पृथक् ॥६४॥
यतिपादोदकं भिन्नं स्थापनीयं नरोत्तमैः । ततः पृथक् पृथगर्घ्यान् दत्त्वा सुचन्दनादिभिः ॥६५॥
ततश्चाचमनं दत्त्वा स्नानार्थं जलमुत्सृजेत् । ततो वस्त्रं समर्प्याथ देयान्याभरणानि हि ॥६६॥
समर्प्य ब्रह्मसूत्राणि गन्धं देयं मनोहरम् । ततो रक्ताक्षता देयाः पुष्पमालास्तथाऽपराः ॥६७॥
ततो मांगल्यवस्तूनि ततश्छत्रं च चामरम् । व्यजनं च ततो देयं देयस्तूणीरकस्तथा ॥६८॥
देया बाणाश्च चापानि देयानि हि पृथक् पृथक् । दत्त्वा परिमलादीनि भोग्यवस्तूनि विस्तरात् ॥६९॥
धूपो देयस्तथा दीपो नैवेद्यो दीयतां ततः । अथवाऽन्यच्छर्करादि नैवेद्यार्थं समर्पयेत् ॥७०॥

सँवारे। उसपर अष्टोत्तरशत अथवा अष्टोत्तरसहस्र लिंगात्मक भद्र अथवा रामतोभद्र बनाकर भद्रके ऊपर विप्रदम्पतीको बिठाये। विप्रके वामभागमें पश्चिमाभिमुख उसकी स्त्री बैठे॥ ५१–५४॥ तदनन्तर उसी विप्रदम्पतीमें सीतारामका आवाहन करके ब्राह्मणके पीछे लक्ष्मणका आवाहन करे॥ ५५॥ ब्राह्मणके दाहिनी ओर भरतका ध्यान करे। रामचन्द्रजीके आगे उस ब्राह्मणमें ही अञ्जनीपुत्रका ध्यान करे। रामके वायव्य कोणमें सुग्रीव आदिका ध्यान करे॥ ५६॥ ५७॥ फिर चारों कोनोंमें ब्राह्मणोंका पूजन करे। यह श्रीरामचन्द्रजीका नवायतन पूजन है॥ ५८॥ अथवा पाँच ब्राह्मणोंमें रामका पञ्चायतन पूजन करे। लेकिन यह विधान उसीके लिए है कि जो सामर्थ्यविहीन हो॥ ५९॥ अथवा रामचन्द्रजीके स्थानमें यतिकी स्थापना करे। सुपारीमें सीताकी कल्पना करके उसे यतिके वामभागमें रख दे॥ ६०॥ तदनन्तर अच्छी तरह रामका पूजन करे। इसके बाद सोहागिन विप्रपत्नीको सीता मानकर विस्तारपूर्वक पूजन करे और भोजन कराये॥ ६१॥ पहले सीता और रामचन्द्रजीका पूजन करके अन्य लोगोंका भी नाना प्रकारके उपचारोंसे पूजन करे। क्रमशः लक्ष्मण आदिका षोडश उपचारोंसे पूजन करे। अथवा शास्त्रानुसार रामका पूजन करे॥ ६२॥ ६३॥ पहले विप्रोंका आवाहन करके उत्तम आसन दे। फिर अलग-अलग उन लोगोंके पैर धोकर यतिका पादोदक अलग रख दे। तदनन्तर अच्छे चन्दन आदिसे पृथक्-पृथक् अर्घ्य आदि दे॥ ६४॥ ६५॥ तदनन्तर आचमनके लिए जल देकर स्नानके लिए जल छोड़े। तत्पश्चात् वस्त्र प्रदान करके आभूषण समर्पित करे॥ ६६॥ फिर यज्ञोपवीत देकर मनोहर गन्धदान दे। इसके बाद लाल अक्षत एवं पुष्प-माला दे॥ ६७॥ इसके पश्चात् मांगल्य वस्तुयें, फिर छत्र, चमर, व्यजन तथा तूणीर दे। तदनन्तर धनुष-बाण आदि देकर इत्र आदि भोग्य वस्तुओंको विस्तारपूर्वक प्रदान करे॥ ६८॥ ६९॥ तदनन्तर धूप, दीप, नैवेद्य दे। यदि नैवेद्यके लिए कोई पकवान आदि न बना सके तो उसके निमित्त शर्करा आदि प्रदान करे॥ ७०॥

नानाफलानि देयानि देयस्तांबूल उत्तमः । दक्षिणां च ततो दत्त्वा देयो मुकुर उज्ज्वलः ॥७१॥
नीराजनं ततः कृत्वा मंत्रपुष्पाणि दीयताम् । प्रदक्षिणानमस्कारान्नव कृत्वा ततः परम् ॥७२॥
नृत्यगीतादिकं कृत्वा प्रार्थयेद्रघुनायकम् । विनिमील्य करौ पादौ रामाग्रे संस्थितैर्नरैः ॥७३॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वायव्यकोणादिषु ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥७४॥
रामो हत्वा दशास्यं द्विजवचनगुरुत्वेन यात्राऽस्त्रयज्ञान्
कृत्वा भुक्त्वातिभोगानवनितलविशंतीं गृहीत्वाऽथ सीताम् ।
लब्ध्वा नानास्तुपास्तास्त्ववनितलगतान्पार्थिवादींश्च जित्वा
कृत्वा नानोपदेशान् गजपुरनिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥७५॥

नवकाण्डमयः श्लोकः पठित्वाऽयं हरेः पुरः । ततः क्षमाप्य श्रीरामं पूजां तस्मै समर्पयेत् ॥७६॥
मया मासव्रते रामनवम्यां यत्प्रपूजनम् । पारायणादिकं सर्वं नवरात्रेऽपि यत्कृतम् ॥७७॥
सत्सर्वं तेऽर्पितं त्वद्य प्रसन्नो भव मे प्रभो । नवायतनपूजेयं या कृता नवमीदिने ॥७८॥
नवविप्रेषु साऽप्यद्य तेऽर्पिता राम वै मया । त्वं गृहाण यथाशक्त्या कृतां तां त्वं प्रसीद मे ॥७९॥
एवं समर्प्य रामाय सकलं पूजनादिकम् । ततो भोजनरीत्या तान् सन्निवेश्याथ भोजयेत् ॥८०॥
पुनर्दत्त्वा तु तांबूलं दक्षिणां तु विसर्जयेत् । ततः स्वयं विप्रतीर्थं गृहीत्वा वै ततः परम् ॥८१॥
यतिपादोदकं प्राश्य देवतीर्थं ततः परम् । गृहीत्वा भोजनं कार्यं सुहृन्मित्रजनैः सह ॥८२॥
समर्पितं यद्यतये ततश्च ब्राह्मणाय हि । देयं स्वगुरवे सर्वं ब्रह्मसूत्रादिकं शुभम् ॥८३॥
एवं व्रतं राघवस्य पक्षे पक्षे प्रकारयेत् । अथवा शुक्लपक्षे हि कार्यं व्रतमिदं शुभम् ॥८४॥

इसके बाद नाना प्रकारके फल, ताम्बूल, दक्षिणा, सुन्दर दर्पण, नीराजन, मन्त्रपुष्प, प्रदक्षिणा, नमस्कार आदि क्रमशः समर्पण करे । तदनन्तर नृत्य-गीत आदि करके सब लोग सामने खड़े होकर रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करें ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वामभागमें सीता, सामने हनुमान्‌जी, पीछे लक्ष्मणजी, दोनों बगल भरत और शत्रुघ्न, वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव, विभीषण, युवराज अङ्गद, जाम्बवान् आदि खड़े हैं और उनके बीचमें बैठे हुए नील कमलके समान कोमल दीप्तिसम्पन्न श्याम स्वरूपधारी रामका मैं भजन करता हूँ ॥ ७४ ॥ रामने रावणको मारकर ब्राह्मणके वाक्यरूपी गौरवसे प्रेरित हो यात्रा तथा अस्त्रयज्ञ आदि किये और विविध प्रकारके भोग भोगे । फिर पाताललोक जाती हुई सीताको उन्होंने पृथ्वीसे वापस लिया । इसके बाद पृथ्वी-मण्डलके बड़े-बड़े राजाओंको परास्त करके हस्तिनापुरके आस-पासवाले बहुतसे देशोंको जीता । उन राजाओं-की कुमारियोंके साथ अपने पुत्रोंके ब्याह किये और अन्तमें अपने परम धामको चले गये ॥ ७५ ॥ इस नौ काण्डात्मक श्लोकको रामके सामने पढ़कर क्षमा माँगे और की हुई पूजा भगवान्‌को अर्पण करे ॥ ७६ ॥ साथ ही यह कहता जाय कि हे प्रभो ! मैंने इस मासव्रतमें रामनवमी तथा नवरात्रमें जो पूजन-पारायण आदि किया है, वह सब आपको अर्पण है । हे प्रभो ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों । रामनवमीको जो नौ विप्रोंमें मैंने आपकी नवायतन पूजा की है, वह भी आपको अर्पित है । यथाशक्ति की हुई इस पूजा-को स्वीकार करके आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ७७–७९ ॥ इस तरह रामको सब पूजन आदि समर्पण करके विधिवत् उन विप्रोंको आसनपर बिठलाकर भोजन कराये ॥ ८० ॥ फिर ताम्बूल और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करे । तदनन्तर स्वयं ब्राह्मणोंके चरणोदक, यतियोंके पादोदक एवं देवताओंके चरणोंके पुनीत चरणजलसे आचमन करके नातेदारों, मित्रों तथा बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर

मासे मासे सर्वदैव रामोपासकमानवैः । एवं मासव्रतं प्रोक्तं राघवस्यातितोषदम् ॥८५॥
संति व्रतान्यनेकानि जगत्यां पुण्यदानि हि । तथाप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥८६॥
व्रतानामुत्तमं चैतद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । अवश्यमेव कर्तव्यं रामोपासकमानवैः ॥८७॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । सविस्तारं तवाग्रे हि राघवस्यातितोषदम् ॥८८॥

विष्णुदास उवाच

श्रीरामनवमीमासव्रतस्योद्यापनं वद । कदा कार्यं कथं कार्यं गुरो कृत्वा कृपां मयि ॥८९॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । नवसंवत्सरं मासनवमीव्रतमुत्तमम् ॥९०॥
कृत्वा चोत्थापनं कार्यं चैत्रे श्रीरामजन्मनि । नवम्यां समुपोष्याथ कर्तव्यमधिवासनम् ॥९१॥
गृहे वृन्दावने वाथ गोष्ठे देवगृहादिषु । संमार्जनं गोमयेन कार्यं वा चन्दनादिभिः ॥९२॥
ततः पाषाणचूर्णैश्च नानापद्मादिकानि हि । भुवि संलेखनीयानि नीलपीतादिवर्णकैः ॥९३॥
रञ्जनीयानि रम्याणि ततः पत्रादिसंस्थले । पूर्वोक्तरामभद्राणां मध्ये त्वेकं वरासनम् ॥९४॥
लिखित्वा चित्रवर्णैश्च प्रोक्तैरेवं सुरञ्जयेत् । तस्योपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च मंडपः ॥९५॥
देयो द्वाराणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च । कदलीस्तंभयुक्तानि चेक्षुदण्डयुतानि च ॥९६॥
नानाघंटाकिंकिणीभिर्ध्वनितान्युज्ज्वलानि च । रम्यादर्शमंडितानि विचित्राणि शुभानि च ॥९७॥
चित्रध्वजैर्वितानैश्च मुक्ताहारैर्युतान्यपि । अथ तद्रामभद्ररथे कलशे वारिपूरिते ॥९८॥
ताम्रपात्रे रामचन्द्रं नवायतनचिह्नितम् । सीतया पूजयेद्रात्रौ महोत्साहपुरःसरम् ॥९९॥
नवपलमितां मूर्तिं हैमीं कृत्वा प्रपूजयेत् । सीता हैमी प्रकर्तव्या शुभाऽष्टपलसंमिता ॥१००॥
राजसास्ते लक्ष्मणाद्याः पृथक् पञ्चपलैः स्मृताः । अशक्तौ च तदर्धेन तदर्धार्धेन वै पुनः ॥१०१॥

यतियों तथा ब्राह्मणोंको जो कुछ दिया हो, वही अपने गुरुको भी दे ॥ ८३ ॥ इस तरह हर पक्षमें रामचन्द्र-जीका व्रत करे। अथवा दोनों पक्षोंमें न कर सके तो केवल शुक्लपक्षमें यह रामव्रत करे ॥ ८४ ॥ रामकी उपासना करनेवालेके लिए रामको प्रसन्न करनेवाला यह मासव्रत मैंने बतलाया ॥ ८५ ॥ यद्यपि संसारमें बहुतसे पुण्यदायक व्रत हैं। फिर भी इस व्रतके बराबर न कोई व्रत हुआ है और न होगा ॥ ८६ ॥ यह सब व्रतोंमें उत्तम और भुक्ति-मुक्ति देनेवाला व्रत है। रामके उपासकोंको यह व्रत अवश्य करना चाहिए ॥ ८७ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार रामको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सब व्रतोंमें उत्तम व्रत मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें कह सुनाया ॥ ८८ ॥ विष्णुदासने कहा—अब आप मुझपर कृपा करके यह बताइए कि श्रीरामनवमीके व्रतका उद्यापन कब और कैसे करना चाहिए ॥ ८९ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी है। इसे सावधान मन होकर सुनो। दो वर्ष पर्यन्त रामका मासनवमी व्रत करना चाहिए। इसके बाद चैत्र मासमें श्रीरामनवमीके दिन इसका उद्यापन करना चाहिए ! यह कार्य नवमीको उपवास करके किया जाना चाहिए ॥ ९० ॥ ९१ ॥ घरमें, वृन्दावन (तुलसीकी बगीची) में, गोशालामें अथवा किसी मन्दिरमें चन्दन या गोबरसे चौका दिलाकर पाषाणके चूर्ण आदिसे अनेक प्रकारके नील-पीत कमल आदि बनावे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इसके बाद पत्र आदिपर पूर्वोक्त रामभद्रोंमेंसे किसी एक भद्रको बनावे। उसके बीचमें एक सुन्दर आसन रक्खे ॥ ९४ ॥ आसन भी अनेक प्रकारके रङ्ग-बिरङ्गे रङ्गोंसे रङ्गे और उसके ऊपर अतिशय सुन्दर और चित्रवर्णका मण्डप बनावे ॥ ९५ ॥ उसमें चार द्वार बनाकर केलेके खंभे तथा इक्षुदण्डके साथ-साथ तोरण लगावे ॥ ९६ ॥ उसमें अनेक प्रकारके घंटा किंकिणी आदि बाजे बाँधकर उसका शृंगार करे। उसे चित्र-विचित्र ध्वजा, वितान, मोतियोंके हार आदिसे सुसज्जित करे। इसके अनन्तर रामतोभद्रके बीचमें जलपूर्ण कलशपर ताम्रका पात्र रखकर नवायतनके चिह्नसे चिह्नित सीता समेत रामका पूजन करे ॥ ९७-९९ ॥ नौ पलकी सुवर्णमयी राममूर्ति बनवानी चाहिए। आठ पलकी सीतामूर्ति बनेगी ॥ १०० ॥ लक्ष्मण आदि-

तस्याप्यर्धं तदर्धार्धं वित्तशाठ्यं न कारयेत् । षोडशैरुपचारैश्च पूजोक्ता निशि जागरः ॥१०२॥
दशम्यां प्रातरुत्थाय स्नात्वा संपूज्य राघवम् । राममंत्रेण हवनं कार्यं नवसहस्रकम् ॥१०३॥
तिलाद्यैः पायसाद्यैश्च नवान्नेनाथ तत्स्मृतम् । तद्दशांशेन क्षीरेण तर्पणं हि प्रकारयेत् ॥१०४॥
तस्यापि च दशांशेन मार्जनं द्विजभोजनम् । कर्ममुद्रां हस्तमुद्रां वसने ब्रह्मसूत्रकम् ॥१०५॥
चित्रासनमुत्तरीयं मुकुटं झर्झरीं तथा । कांस्यपात्रं भोजनस्य नवान्नेन प्रपूरितम् ॥१०६॥
घृतपात्रं कांस्यमयं नवान्नोपरि संस्थितम् । पादुके पुस्तकं दिव्यं यत्किंचिद्राघवस्य च ॥१०७॥
तांबूलं दक्षिणां चापि प्रत्येकं भूसुराय हि । अर्पयेत्सकलं चेत्थमेवं सर्वान् समर्पयेत् ।१०८॥
ततो गुरुं समभ्यर्च्य प्रणम्य च पुनः पुनः । तामर्चामर्पयेत्सर्वां गुरवे दक्षिणान्विताम् ॥१०९॥
ततो गुरुं प्रार्थयेत्तं प्रणम्य च पुनः पुनः । मासे मासे नवम्यां तु सोद्यापनव्रतं मया ॥११०॥
यत्कृतं नव वर्षाणि तेन तुष्यतु राघवः । अग्रेऽपि यावज्जीवामि तावत्कालं करोम्यहम् ॥१११॥
व्रतानामुत्तमं चेदं तुष्ट्यर्थं राघवस्य च । गुरो त्वत्कृपया रामो मां प्रसीदतु सीतया ॥११२॥
एवं संप्रार्थ्य स्वीयं तं गुरुं नत्वा विसर्जयेत् । ततः स्वयं हि भुंजीत सुहृन्मित्रसुतादिभिः ॥११३॥
एवमुद्यापनं कृत्वा कार्यमग्रे व्रतं पुनः । मासे मासे राघवस्य न त्याज्यं सर्वथा नरैः ॥११४॥
एकादशीव्रतं नित्यं यथा तत्क्रियते नरैः । तथा मासव्रतं चेदं नित्यमेव स्मृतं बुधैः ॥११५॥
अशक्तेन यथाशक्त्या कार्यमुद्यापनं व्रतम् । उपोष्या नवमी शुक्ला सर्वदैव नरैर्भुवि ॥११६॥
नवम्यां शुक्लपक्षे यो भुंक्तेऽन्नं मूढधीर्नरः । रौरवे कल्पपर्यंतं तस्य वासः स्मृतो बुधैः ॥११७॥
एवं शिष्य त्वया यच्च पृष्टं तत्ते निवेदितम् । का तेऽन्या श्रोतुमिच्छास्ति तां वदस्व वदामि ते११८॥

की मूर्तियाँ पाँच-पाँच पल चाँदीकी बनेंगी। यदि ऐसा करनेकी सामर्थ्य न हो तो उससे आधे वजनकी मूर्ति बनवाये और यदि वह भी न कर सके तो आधेके आधे वजनकी मूर्तियाँ बनवानी चाहिए। वह भी न हो सके तो उसके भी आधे वजनकी बनवाये, किन्तु कंजूसी न करे। षोडश उपचारोंसे पूजन तथा रात्रिको जागरण अवश्य करना चाहिए ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ दशमीको सबेरे उठकर स्नान और रामका पूजन करके नौ हजार हवन करे ॥ १०३ ॥ हवन तिलसे, खीरसे अथवा नवान्नसे करना उचित है। तदनन्तर हवनके दशांश दूधसे तर्पण करे। उसका भी दशांश मार्जन करे और मार्जनका भी दशांश ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसके अनन्तर हस्तमुद्रा तथा कर्ममुद्राके साथ वस्त्र, यज्ञोपवीत, चित्रासन, उत्तरीय वस्त्र, मुकुट, झारी, भोजनके लिए नवान्नसे पूर्ण कांस्यपात्र, घृतपात्र, इन सबके साथ कांस्यमय पात्रोंमें नवान्नपर रखकर चरणपादुका, दिव्य आनन्दरामायणकी पुस्तक, ताम्बूल, दक्षिणा, ये सब वस्तुयें प्रत्येक ब्राह्मणको दे ॥ १०४–१०७ ॥ तदनन्तर गुरुका पूजन करके उसे एक गौ दे और दक्षिणा समेत वह पूजनसामग्री गुरुको अर्पण करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इसके बाद गुरुको बारम्बार प्रणाम करके कहे—हे गुरो! महीने महीने उद्यापनके साथ मैंने जो नौ वर्षपर्यन्त रामव्रत किया है। उससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हों। आगे भी जब तक जीवित रहूँगा, बराबर यह उत्तम व्रत भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए करता रहूँगा। हे गुरो! आपकी कृपासे मुझपर सीता और राम प्रसन्न हों ॥ ११०–११२ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद अपने गुरुजीको प्रणाम करके उनको विदा करे। इसके बाद सम्बन्धियों, मित्रों और पुत्रादिकोंके साथ स्वयं भी भोजन करे ॥ ११३ ॥ इस तरह उद्यापन करके महीने-महीने यह व्रत करता रहे, त्यागे नहीं ॥ ११४ ॥ जिस तरह लोग एकादशीका व्रत करते हैं। उसी तरह यह मासव्रत भी सदा करते रहना चाहिए ॥ ११५ ॥ यदि विशेष सामर्थ्य न हो तो अपनी शक्तिके अनुसार ही इसका उद्यापन करे। संसारके लोगोंको चाहिए कि सर्वदा शुक्लपक्षकी नवमीको अवश्य उपवास किया करें ॥ ११६ ॥ जो मूर्ख मनुष्य शुक्लपक्षकी नवमीको अन्न खाता है, उसे एक कल्पतक रौरव नरकमें निवास करना पड़ता है। यह बात कितने ही विद्वानोंकी कही हुई है ॥ ११७ ॥ रामदासने कहा—हे शिष्य! तुमने जो पूछा, वह मैंने तुमसे कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो, वह बतलाओ तो मैं कहूँ ॥ ११८ ॥

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया राघवस्य श्रीरामनवमीव्रतम् । मासे मासे प्रकर्तव्यमिति प्रोक्तं ममाग्रतः ॥११९॥
तत्केनाचरितं पूर्वं सिद्धिर्लब्धाऽत्र केन हि । तत्सर्वं विस्तरेणैव वद कृत्वा कृपां मयि ॥१२०॥
अन्यत्ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । अशक्तेन नरेणेदं व्रतं कार्यं कथं महत् ॥१२१॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । आसीत्पुरा द्विजः कश्चित्केरले रामतत्परः ॥१२२॥
नाभूत्तस्य विवाहोऽत्र निर्धनस्य जनस्य च । नासीत्तस्मै गेहमपि न माता न पिताऽपि च ॥१२३॥
तस्यैको नियमश्चासीद्दरिद्रस्य च तं शृणु । नित्यं प्रातः समुत्थाय कृतमालानदीजले ॥१२४॥
स्नात्वा नदीसिकतायां सिकतावेदिका नव । कृत्वा तत्र जनकजासहितं रघुनन्दनम् ॥१२५॥
पत्रनिर्मितश्रीरामलिंगात्मकवरासने । मध्यमायां वेदिकायां संस्थाप्य धातुनिर्मितम् ॥१२६॥
अष्टदिक्षु वेदिकासु तरुपत्रासने पृथक् । समंततो राघवस्य लक्ष्मणादीन्न्यवेशयत् ॥१२७॥
ततः स राघवं प्राह रामं राजीवलोचनम् । कर्तुमावश्यकं कर्म गन्तुमर्हसि सत्वरम् ॥१२८॥
इत्युक्त्वा तं स्वयं पृष्ठे निवेश्य रघुनन्दनम् । कियद्दूरं रहो वृक्षखंडे गत्वा द्विजोत्तमः ॥१२९॥
रामं तृणभुवि स्थाप्य तदग्रे पात्रमुत्तमम् । सजलमृत्तिकां चापि संस्थाप्य च जवेन हि ॥१३०॥
किंचिद्दूरं स्वयं गत्वा स्थितवान् स कियत्क्षणम् । रामांतिकं पुनर्गत्वा पादप्रक्षालनादिकम् ॥१३१॥
अकरोन्मृत्तिकाशौचं च तस्य स्वकरेण हि । दत्त्वाऽन्यपात्रतोयेन रामायाचमनं ततः ॥१३२॥
दंतकाष्ठेन तद्दंतान्संशोध्य भक्तिपूर्वकम् । गंडूषार्थं जलं दत्त्वा कवोष्णं शीतलं पुनः ॥१३३॥
समर्प्याचमनार्थं स वस्त्रेणास्यं प्रमार्जयत् । संमार्ज्य हस्तौ पादौ च रामस्य वाससा द्विजः ॥१३४॥
तं विगृह्य पुनः पृष्ठे नम्रीभूतः शनैः शनैः । सिकतावेदिकायां च पूर्वस्थाने न्यवेशयत् ॥१३५॥
एवं सीतां लक्ष्मणं च भरतं लवणांतकम् । सुग्रीवादीन् पृथक् नीत्वावश्यकादीन्यकारयत् ॥१३६॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अभी आपने हमसे कहा है कि महीने-महीने श्रीरामनवमी व्रत करना चाहिए ॥११९॥ इस व्रतको किसने किया था और इसके प्रभावसे किसको सिद्धि प्राप्त हुई थी ? कृपा करके यह विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये ॥ १२० ॥ हाँ, एक बात मैं आपसे और पूछना चाहता हूँ। वह यह कि जो प्राणी असमर्थ है, वह यह व्रत कैसे करे ? ॥ १२१ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान मनसे सुनो । एक समय रत्न (केरल) देशमें रामकी भक्तिमें तत्पर एक ब्राह्मण रहा करता था ॥ १२२ ॥ दीनताके कारण न उसका ब्याह हुआ था, न घर-द्वार था और न माता-पिता ही थे ॥ १२३ ॥ किन्तु उस दरिद्रका एक नियम था, उसे सुनो। वह प्रतिदिन सवेरे उठता तो एक सुन्दर माला बनाता। फिर नदीमें स्नान करके बालूमें नौ वेदियाँ बनाकर उनपर पत्र निर्माण करके श्रीरामलिंगके आसनपर मध्यवेदीमें धातु-निर्मित रामकी प्रतिमा बैठाकर तरुपत्रके आसनोंपर चारों ओर राम-लक्ष्मण आदिको बिठालता था ॥१२४॥१२५॥ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ इसके बाद राजीवलोचन रामसे कहता-हे राम ! मैं आपका पूजन करूँगा। इसलिए कृपा करके पधारिए ॥ १२८ ॥ ऐसा कहकर रामको अपनी पीठपर लादता और कुछ दूर एकान्तकी झाड़ियों-में ले जाकर किसी घास उगी हुई जगहपर बिठलाता। उनके आगे जलसे भरा हुआ उत्तम पात्र और मृत्तिका रखकर स्वयं वहाँसे कुछ दूरीपर जाकर बैठता और थोड़ी देर बाद लौटकर आता तो अपने हाथोंसे उनका पादप्रक्षालन और मृत्तिकाशुद्धि आदि कराता। फिर एक दूसरे पात्रके द्वारा जल देकर रामको कुल्ले कराता था ॥ १२९-१३२ ॥ तदनन्तर काष्ठकी दातौनसे उनके दाँत माँजकर पहले कुछ गरम और बादमें शीतल जलसे कुल्ले करवाता था। इसके बाद तौलियेसे उनके मुँह आदि पोंछकर हाथ पैर आदि पोंछता और फिर अपनी पीठपर लेकर धीरे-धीरे सिकताकी बनी हुई वेदिकापर बिठाल दिया करता था ॥ १३३-१३५ ॥ इसी तरह सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सुग्रीव आदिको पृथक्-पृथक्

ततः पृथक्कवोष्णेन तैलाभ्यगान्विधाय सः । नीरेणास्नापयत् सर्वान् कृत्वा चोद्वर्तनान्यपि ॥१३७॥
ततो भूर्जादिपत्राणि वस्त्रार्थं स पृथग्ददौ । ततः पत्रैः फलैः पुष्पैर्लब्धैस्तानचर्यत्क्रमात् ॥१३८॥
ततः स स्थूलव्रीहीणां कृत्वौदनमनुत्तमम् । स्नात्वा माध्याह्निकं कृत्वा पुनःसंपूज्य राघवम् ॥१३९॥
दत्त्वौदनस्य नैवेद्यं वैश्वदेवं विधाय च । किंचिद्भिक्षामतिथये मत्स्यान्गामण्डजादिकान्॥१४०॥
दत्त्वा पृथक् पृथक् विप्रश्चक्रे रामाज्ञयाऽशनम् । ततो रामं पुनः पृष्ठे समारोह्यदादरात् ॥१४१॥
ततः सीतां ततः सर्वान् लक्ष्मणादीन्क्रमेण हि । पूजोपकरणं सर्वं पेटिकायां निधाय सः ॥१४२॥
कृत्वा तां पेटिकां कक्षे जगामाथ शनैर्द्विजः । स वनारामोपवनं गत्वा रामं वचोऽब्रवीत् ॥१४३॥
राम राजीवपत्राक्ष वनारामादिकौतुकम् । जानकीसहितः पश्य नानांडजमृगादिकान् ॥१४४॥
ततो ययौ ग्रामहट्टं दर्शयन्कौतुकं विभुम् । संमर्दे ताडयामास मार्गार्थं यान् स यष्टिना॥१४५॥
तेऽपि तत्कौतुकाविष्टा जनाः कोपं न मेनिरे । एवं नानाकौतुकानि दर्शयामास राघवम् ॥१४६॥
ततः शून्ये तृणगृहे राम तानवरुह्य च । काष्ठनिर्मितपर्यंके कारयामास निद्रितान् ॥१४७॥
ततो वेगाद्धट्टमध्ये गत्वा स ब्राह्मणोत्तमः । याञ्चया तंडुलान् तैलं घृतं शाकं फलानि च ॥१४८॥
नागवल्लीदलादीनि क्रमुकं कुंकुमादिकम् । लब्ध्वा ताम्रमयं किंचिद्द्रव्यं रामान्तिकं ययौ १४९॥
तद्ग्रामवासिनः सर्वे ये ये हट्टे स्थिता जनाः । स्वस्वनानाव्यवसायतत्परास्ते द्विजोत्तमम् ॥१५०॥
श्रीरामनिष्ठं त दृष्ट्वा ददुस्तद्याचितं मुदा । विप्रः शून्यगृहे रामं रामाग्रे दीपमुत्तमम् ॥१५१॥
प्रज्वाल्यारार्तिकं कृत्वा गन्धाद्यैः परिपूज्य च । वीजयामास रामादीन् पल्लवेन मुदान्वितः ॥१५२।
ततः स्तुत्वा मुहुर्जप्त्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणाः । चकार कीर्तनं वक्ष्यमाणैः सन्मनुभिर्द्विजः ॥१५३॥

ले जाकर शौचविधि पूर्ण किया करता था ॥ १३६ ॥ तदनन्तर राम-सीता आदिके शरीरमें तेल लगाकर थोड़े गरम जलसे स्नान कराता था। तदनन्तर भोजपत्र आदिके पत्ते कपड़ेके लिए प्रदान करता और पत्र, फल, पुष्प आदि जो कुछ मिल जाता, उससे क्रमशः उनका पूजन किया करता था ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ फिर मोटे चावलका उत्तम भात बनाता और स्नान तथा मध्याह्नकालकी संध्या आदि क्रियायें कर लेनेके बाद रघुनाथजीकी पूजा करता और बलिवैश्वदेव करके वह भातका भोग उनके सामने रखता था। तदनन्तर उसमेंसे कुछ अतिथियोंके भिक्षार्थ, कुछ मछलियों और पक्षियोंके लिए, कुछ गौओं तथा चींटी आदिके लिए निकालकर रामकी आज्ञा पा जानेपर स्वयं भोजन किया करता था। तदनन्तर फिर रामको आदरपूर्वक पीठपर लादकर क्रमशः सीता-लक्ष्मण आदिको तथा पूजनकी सामग्री पेटीमें भरकर पेटी बगलमें दबाता और सबको पीठपर बैठाकर वहाँसे चलता था। इसके बाद किसी सुन्दर बगीचेमें पहुँचकर रामसे कहता—हे राजीवलोचन राम ! सीताके साथ आप इस बगीचेका तथा बगीचेमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंका अवलोकन करिए ॥ १३९-१४४ ॥ इसके बाद वह गाँववाले बाजारमें जाता और अपने भगवान्‌को वहाँके कौतुक दिखाता था। उस समय भीड़में भगवानके लिए रास्ता बनाते समय वह किसीको डण्डेसे मार भी देता तो कोई बुरा नहीं मानता था। इस तरह वह नित्य रामचन्द्रजीको नाना प्रकारके कौतुक दिखाया करता था ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ इसके बाद वह सूनी तृणशालामें ले जाकर उन लोगोंको उतारता और काठकी खटोलीपर सुला दिया करता था ॥ १४७ ॥ तदनन्तर तुरन्त वह बाजारमें जाता और चावल, तेल, घी, साग, फल, फूल, पान, सुपारी, कुमकुम तथा कुछ पैसे माँगकर अपने रामके पास लौट आया करता था ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उस ग्राममें रहनेवाले अनेक प्रकारके व्यवसायोंमें लगे हुए लोग उसे अद्वितीय रामभक्त समझकर वह जो कुछ माँगता, सो दे दिया करते थे। विप्र सूने घरमें पहुँचकर रामके आगे उत्तम दीपक जलाता, फिर आरती उतारता और धूप, दीप, गन्ध आदिसे उनकी पूजा करके किसी पल्लव आदिसे पंखे झला करता था ॥ १५०-१५२ ॥ तत्पश्चात् वह रामकी स्तुति, जप तथा प्रदक्षिणा करके आगे कहे जानेवाले मंत्रों द्वारा हरिकीर्तन किया करता था।

ततस्तु याचितान्येव वस्तूनि मिश्रितानि हि । पृथक्कृत्वा तु सर्वेषां त्रीन् भागांश्च चकार सः॥१५४॥
द्वौ भागौ स स्वनिकटे स्थाप्यैकं भागमुत्तमम् । मित्रगेहे न्यासभूतं नवम्यर्थं चकार सः ॥१५५॥
ततः स्वयं द्वारमध्ये चकार शयनं द्विजः । पुनः प्रभाते चोत्थायाचम्य गीतादिभिः प्रभुम्।१५६॥
तालवाद्यैः प्रबोध्याथ तान्पृष्ठे स्थाप्य पूर्ववत् । नदीतीरं ययौ विप्रः पूजयामास पूर्ववत् ।१५७॥
एवं नित्यपूजनं च चकाराद्दतमानसः । नवम्यां च विशेषेण पूजयित्वाऽथ राघवम् ॥१५८।
स्वयञ्चोपोषणं कृत्वा स्वयं चक्रे सुकीर्तनम् । रात्रौ जागरणं चापि राघवं पूज्य वै पुनः ॥१५९॥
चकार कीर्तनैश्चाथ नर्तनाद्यैः स्वयं कृतैः । ततः प्रभाते श्रीरामं दशम्यां परिपूज्य च ॥१६०॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य नवरात्रेऽथ यत्कृतम् । आनंदरामचरितपरायणमनुत्तमम् ॥१६१॥
तत्समाप्य पूजयित्वा पुस्तकं ब्राह्मणाञ्च । निमंत्रितान् समाहूय तेष्वेवैकं सपत्निकम् ॥१६२॥
द्विजमाकारयामास ततः संचिततंदुलाः । मित्रगेहे न्यासभूतास्तेषां कृत्वौदनं शुभम् ॥१६३॥
यथा संचितशाकादि तथा लब्धानि यानि सः । तानि सर्वाणि संस्कृत्य वराब्रीदीनि चाकरोत् ॥१६४॥
वालुकावेदिकायां वै मध्ये पत्नीयुतं द्विजम् । अष्टकोणेषु विप्रांस्तानष्ट संवेश्य वै क्रमात् ॥१६५॥
षोडशैरुपचारैस्तान् पूजयामास भक्तितः । रंभादलेषु च ततो विस्तीर्णेषु द्विजोत्तमः ॥१६६।
चकार तैः कृतैरन्नैः स मुदा परिवेषणम् । ततस्ते भोजनं चक्रुस्तद्भक्त्याऽतिमुदान्विताः ॥१६७॥
ततो दत्त्वा सुतांबूलं दक्षिणां तान् प्रणम्य च । विसर्जयामास विप्रांस्ततश्चक्रेऽशनं द्विजः ॥१६८॥
एवं विप्रो मासि मासि नवायतनपूजनम् । नवम्याः पारणायाश्च दिवसे दशमीदिने ॥१६९॥
चकार नवविप्रेषु याश्चां कृत्वाऽपि भक्तितः । एवं गतानि वर्षाणि नव तस्य द्विजन्मनः ॥१७०।
एकदा श्रावणे मासि तद्ग्रामे सेनया नृपः । कश्चिद्ययौ तदा विप्रः स्वस्थले निशि निद्रितः॥१७१॥

था। कुछ देर बाद उन माँगकर लायी हुई वस्तुओंका तीन भाग करके दो भाग तो अपने पास रख लेता, बाकी एक भाग अपने निकटवर्ती मित्रके यहाँ नवमीके उत्सवके लिये धरोहरके तौरपर रख आया करता था ॥ १५३-१५५ ॥ इन सब नित्य-नियमोंसे निबटकर वह द्वारपर शयन करता और फिर सबेरे उठकर गीतापाठ आदिसे भगवान्‌जी स्तुति करता हुआ ताली बजाकर राम आदिको जगाता और नित्य-नियमके अनुसार फिर उनको अपनी पीठपर लादकर नदीके तटपर पहुँच जाया करता और पूर्वोक्त विधिसे पूजन करता था ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ इस तरह आदर भरे मनसे वह नित्य पूजन किया करता था । किन्तु नवमीको उपवास करके विशेष उपकरणोंके साथ पूजन करके भली प्रकार कीर्तन और रात्रिके समय जागरण करता था ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ फिर दशमीके दिन रामका पूजन करके प्रतिपदासे लेकर नवरात्र पर्यन्त आनन्दरामायणका पारायण करता था ॥ १६० ॥ उसे समाप्त करके नौ ब्राह्मणोंका पूजन करता था । तदनन्तर एक ब्राह्मणदम्पतीको बुलाकर मित्रके घरमें इकट्ठा किये हुए तण्डुलसे बढ़िया भात बनाकर जो कुछ शाक आदि एकत्र होता, उसे भी भली भाँति बना करके अच्छी तरह बालुकाकी बनी हुई वेदीपर बीचमें उस सपत्नीक ब्राह्मणको बिठाता और कोनोंमें उन आठ विप्रोंको बिठालकर षोडश उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता था। तदनन्तर केलेके पत्तोंको उनके आगे बिछाकर उन बने हुए अन्नोंको बड़ी प्रसन्नताके साथ परोसता था और वे ब्राह्मण उसकी भक्तिसे गद्गद होकर बड़े प्रेमसे भोजन करते थे ॥ १६१-१६७ ॥ इसके बाद बढ़िया पान तथा दक्षिणा देकर उन ब्राह्मणोंको विदा करता। तब स्वयं भी भोजन करता था ॥ १६८ ॥ इस तरह वह ब्राह्मण प्रतिमासकी नवमी तथा दूसरे पारणवाले दिन नौ ब्राह्मणोंमें नवायतनका पूजन किया करता था ॥ १६९ ॥ इस तरह उस ब्राह्मणके नौ वर्ष बीत गये ॥ १७० ॥ एक बार श्रावणके महीनेमें उसके यहाँ एक बड़ी सेना अपने साथ लिये एक राजा आ पहुँचा, किन्तु ब्राह्मण रात्रिके समय अपने घरमें पड़ा सो रहा था ॥ १७१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वृष्टिपीडिता नृपसेवकाः । ग्रामे गेहानि विविशुः शून्यगेहं ययुर्दश ॥१७२॥
अश्वारूढाः सशस्त्रास्ते द्वारमध्ये द्विजोत्तमम् । दृष्ट्वा विनिद्रितं प्रोचुर्द्विजोत्तिष्ठ जवेन हि ॥१७३॥
मार्गं देहि वयं वृष्ट्या पीडिताः स्मश्चिर बहिः । शून्यगेहेऽत्र स्थास्यामः सुखं साश्वाः ससेवकाः॥१७४॥
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा सभ्रमेण द्विजोऽब्रवीत् । रामचन्द्रः सीतयात्र निद्रितोऽस्ति स्वबंधुभिः॥१७५॥
न वर्ततेऽत्र युष्माकं स्थलं सत्यं वचो मम । गच्छध्वं नगरे नानास्थलान्यन्यानि सन्ति हि॥१७६॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा राजदूताः पुनर्द्विजम् ।प्रोचुस्ते ह्यस्ति श्रीरामः सोऽपि निर्यातु वै बहिः॥१७७॥
सीतया बंधुभिर्युक्तः स्थलं नो देहि भो द्विज । पुनराह द्विजस्तान् स कथं रामं विनिद्रितम् ॥१७८॥
प्रबुद्धं वै करोम्यद्य निशायां राजसेवकाः । युष्माकं प्रार्थना त्वद्य क्रियते वै मया मुहुः ॥१७९॥
प्रणम्य विधिवद्यूयं गच्छध्वं वै स्थलांतरम् । ततस्तन्निग्रह दृष्ट्वा तेऽतिवृष्ट्या प्रपीडिताः ॥१८०॥
तं विप्रं ताडयांचक्रुस्तदा प्राह द्विजोत्तमः । रामं बहिः करोम्यद्य तिष्ठध्वं राजसेवकाः ॥१८१॥
इत्युक्त्वाऽऽचम्य श्रीरामं भूसुरो वाक्यमब्रवीत् । रामोत्तिष्ठ बहिर्दुष्टाः स्थिताः संत्यश्वसंस्थिताः१८२॥
तेषां वस्तुं स्थलं देहि वयं यामो बहिर्निशि । इत्युक्त्वा निजपृष्ठे तानारोहयत्स पूर्ववत् ॥१८३॥
ततः कृत्वा महाकोशं वस्त्रादीनां द्विजोत्तमः । धृत्वा कक्षे तोयकुंभं धृत्वा वामकरेण सः ॥१८४॥
यष्टिं धृत्वा सव्यहस्ते शनैर्द्वाराद्बहिर्ययौ । ते द्विजं तादृश दृष्ट्वा भ्रांतं तं मेनिरे खलाः ॥१८५॥
ततो दृष्ट्वाऽतिवृष्टिं स गेहाग्राधो बहिर्द्विजः । नम्रीभूतस्तदा तस्थौ गेहे संविविशुः खलाः ॥१८६॥
ततोऽतिश्रमितो विप्रश्चिंतयामास चेतसि । पुराणे वायुपुत्रस्य मया सारं श्रुतं बहु ॥१८७॥
तत्सर्वं तु मृषा त्वद्य किमस्त्यत्र प्रयोजनम् । इति निश्चित्य विप्रः स क्रोधेन महता वृतः ॥१८८॥
शीघ्रं घटं भुवि स्थाप्य वामहस्तेन मारुतेः । पुच्छं धृत्वा प्राक्षिपत्तमाकाशे वेगवत्तरः ॥१८९॥

इसी समय बरसातसे सताये हुए कुछ राजसेवक ब्राह्मणके घरको खाली समझकर द्वारपर पहुँचे ॥ १७२ ॥ वे सशस्त्र सेवक घोड़ेपर सवार थे। द्वारपर पहुँचते ही ब्राह्मणको जगाते हुए उन्होंने कहा—हे ब्राह्मण ! जल्दी उठो, मुझे जगह दो। मैं बड़ी देरसे भीग रहा हूँ। इस सूने घरमें मैं अपने सेवकों और घोड़ोंके साथ ठहरूँगा ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ इस प्रकार उनकी बात सुनकर घबड़ाहटके साथ ब्राह्मणने कहा कि इस घरमें रामचन्द्रजी अपने बन्धुओंके साथ सो रहे हैं। यहाँ आप लोगोंके लिए जगह खाली नहीं है। मेरी इस बातको सच मानिएगा। नगरमें चले जाइए। वहाँ आप लोगोंको बहुत जगहें मिल जायँगी ॥ १७५ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणके वचन सुनकर सिपाहियोंने कहा कि यदि इस घरमें राम हैं तो उन्हें भी बाहर निकाल दो और हम लोगोंको ठहरनेके लिये जगह खाली कर दो। ब्राह्मणने कहा—हे राजसेवक ! जब कि राम सो रहे हैं तो उन्हें कैसे जगाऊँ। मैं आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूँ कि दूसरी जगह चले जाइए। इस प्रकार ब्राह्मणका हठ देखकर उन वृष्टिपीडित राजसेवकोंने उसे मारा। ब्राह्मणने कहा—अच्छा, हे राजसेवको ! ठहरिए, मैं अभी रामचन्द्रजीको बाहर किये देता हूँ ॥ १७६–१८१ ॥ ऐसा कहकर उसने आचमन किया और रामके पास जाकर कहा—हे राम ! उठिए। बाहर वे दुष्ट घुड़सवार खड़े हैं। आप उनको रहनेके लिए यह जगह खाली कर दीजिए, हमलोग रातो-रात कहीं दूसरे स्थानपर चले चलें। ऐसा कहकर ब्राह्मणने रोजकी तरह उनको अपनी पीठपर लादा ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ इसके बाद उसने वस्त्रोंकी एक बड़ी गठरी बनाकर काँखमें दबायी, पानीका घड़ा बायें हाथमें लिया और दाहिने हाथमें छड़ी लेकर धीरे-धीरे बाहर निकला। इस तरह तैयारी करके जाते हुए ब्राह्मणको देखकर उन सिपाहियोंने समझा कि यह कोई पागल है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ विप्र बाहर निकला तो देखा कि बड़े जोरोंमें वृष्टि हो रही है। ऐसी अवस्थामें वह ब्राह्मण झुककर बारजेके नीचे खड़ा हो गया और सिपाही भीतर घुस गये ॥ १८६ ॥ खड़े-खड़े जब थक गया तो मन ही मन सोचने लगा कि मैंने तो पुराणोंमें सुना था कि हनुमान्‌जीमें बड़ा बल है ॥ १८७ ॥ लेकिन वे सब बातें झूठी हैं। ऐसा सोचकर उसने छड़ी दीवारसे सँटाकर खड़ी कर दी, बायें हाथके घड़ेको

तदा सा मारुतेर्धातुमयी मूर्तिः शुभावहा । गत्वाऽऽकाशे गर्जनां वै चकारातिभयंकराम्॥१९०॥
तां गर्जनां महावीरा ग्रामस्थाश्च बहिः स्थिताः । श्रुत्वाऽतिभयसंत्रस्ता मृताः सर्वे क्षणेन हि ॥१९१॥
अश्वा नागा वृषाद्याश्च मृताः सर्वे तदा क्षणात् । तद्यद्ग्रामे बहिर्वाऽपि चरं पुरुषसंज्ञितम् ॥१९२॥
पुत्रगर्भाश्च नारीणां सर्वे प्रापुः क्षयं तदा । तदा स पुरुषस्त्वेको न मृतो ब्राह्मणोत्तमः ॥१९३॥
कृपया रामचन्द्रस्य मारुतेः कृपयाऽपि च । ततः प्रभाते ता नार्यः सर्वान्स्वपुरुषान्मृतान् ॥१९४॥
दृष्ट्वाऽतिविस्मयं प्रापुस्ताभिर्नैव श्रुतो ध्वनिः । तदा विप्रं जीवितं तं दृष्ट्वा पङ्केऽपि मारुतिम् ॥१९५॥
पतितं विस्मयाविष्टाः पप्रच्छुस्तं द्विजोत्तमम् । ततः स सकलं वृत्तं नारीः संश्रावयत्तदा ॥१९६॥
ततस्ताः प्रार्थयित्वा तं चक्रुः स्वीयपुराधिपम् । सोऽपि रामाज्ञया राज्यं चकार तत्पुरस्य च ॥१९७॥
पुरस्थितानां नारीणां स एवासीत्पतिस्तदा । तन्मारुतेर्गर्जितं हि काले काले तु पूर्ववत् ॥१९८॥
अद्यापि श्रूयते तस्मिन्नगरे घनशब्दवत् । तच्छ्रुत्वा पुत्रगर्भाश्च प्रस्खलंति हि योषिताम्॥१९९॥
स्त्रियः सहस्रशश्चासन् पुरुषस्त्वेक एव सः । तदारभ्य तत्स्त्रीराज्यं कथ्यते मानवोत्तमैः ॥२००॥
ततः कालान्तरेणैव स विप्रश्च मृतो यदा । तदा स्वपूर्वपुण्येन विष्णुसायुज्यमाप सः ॥२०१॥
ततस्ताभिस्तु नारीभिः कश्चित्पांथः समागतः । स एव क्रियते भर्ता न तं ता मोचयंति हि ॥२०२॥
ज्ञात्वा तं गर्जनाकालं पुरुषान्विवरेषु हि । गोपयित्वा दुंदुभीनां शंखानां निःस्वनादिभिः॥२०३॥
न श्रावयंति तेषां तं ध्वनिं मारुतसंभवाम् । अतिक्रांतेऽथ तत्काले तान्पुनर्जीवितानिति ॥२०४॥
मत्वा नानोत्सवैः पूज्य तैर्भोगं ता भजंति हि । नार्या तच्छास्यते राज्यं सदैव द्विजसत्तम ॥२०५॥
स्त्रीणामेव मदोत्पत्तिर्जायते पुरुषस्य न । तद्राज्यनिकटस्था ये देशास्तेष्वपि भो द्विज ॥२०६॥

जमीनमें रख दिया और बायें हाथसे हनुमान्‌जीकी पूँछ पकड़कर बड़े क्रोध और वेगके साथ आकाशमें उछालकर फेंका ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ हनुमान्‌जीकी वह धातुमयी मूर्ति आकाशमें पहुँचकर बड़े जोरसे गरजी ॥ १९० ॥ वह भीषण गर्जना उन सिपाहियों, गाँववालों तथा बाहरवालोंको भी सुनायी दी। उसे सुनते ही सब घबड़ा-घबड़ाकर मर गये । उस गर्जनासे घोड़े, हाथी और बैल आदि पुरुषनामधारी जितने जीव थे, उनमेंसे उस ब्राह्मणके सिवाय और कोई नहीं बचा। यहाँ तक कि स्त्रियोंके गर्भमें जो बच्चे थे, वे भी मर गये। किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा और हनुमान्‌जीकी दयासे वह ब्राह्मण ज्योंका त्यों खड़ा रह गया। सबेरा हुआ तो उन नारियोंने, जिनके पति रातको मर गये थे, अपने स्वामीको मृत देखा तो बड़ी चकरायीं। तदनन्तर जब उन्होंने उस ब्राह्मणको जीवित तथा हनुमान्‌जीको मूर्ति कीचड़में पड़ी देखी तो उस ब्राह्मणसे वे सब पूछने लगीं। ब्राह्मणने उन स्त्रियोंको रात्रिका सारा हाल कह सुनाया ॥ १९१–१९६ ॥ इसके अनन्तर उन स्त्रियोंने प्रार्थना करके ब्राह्मणको उस नगरीका राजा बना दिया। रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वह विप्र वहाँका राज करने लगा ॥ १९७ ॥ उस समय उस नगरीकी सब स्त्रियोंका वही पति था। हनुमान्‌जीकी वह गर्जना कभी-कभी विकराल मेघगर्जनके समान अब भी सुनायी पड़ जाया करती है। उसे सुनकर जिन स्त्रियोंके उदरमें पुत्र रहता है, उनका गर्भ गिर जाया करता है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ उस विप्रके पास हजारों स्त्रियाँ थीं और उनके बीचमें वह अकेला पुरुष था। तभीसे लोगोंने उसे स्त्रीराज्य कहना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों बाद जब उस विप्रकी मृत्यु हुई तो अपने पूर्वार्जित पुण्यके प्रभावसे उसे विष्णुकी सायुज्य मुक्ति मिली ॥२००॥ ॥ २०१ ॥ इसके बाद जो कोई राही पुरुष मिल जाता, उसे ही वे स्त्रियाँ अपना पति-बना लिया करती थीं और उसे किसी तरह नहीं छोड़ती थीं ॥ २०२ ॥ यदि कभी हनुमान्‌जीकी गर्जनाका समय आ जाता तो वे स्त्रियाँ उस पुरुषको बिलमें छिपा दिया करतीं। जिससे उसे वह गर्जना न सुन पड़े, इसलिए नगाड़े-शंख आदि बाजे बजाने लगती थीं । जब वह समय कुशलपूर्वक बीत जाता तो नारियाँ अपने पतियोंका पुनर्जीवन मानकर बड़ी खुशियाली मनातीं और उसीके साथ भोग करती हुई अपना समय बिताया करती थीं। हे द्विजोत्तम ! तबसे सदा वहाँपर स्त्रियोंका ही राज्य रहता है । स्त्रियाँ ही वहाँकी प्रजापर शासन करती हैं

मारुतेः शब्दसंस्पृष्टवायुना स्पर्शिता नराः । अशक्ता एव जायंते न तेष्वासीत्सुपौरुषम् ॥२०७॥
अतस्तेषामशक्तानां वीर्यक्षीणतया द्विज । भवन्ति दुहितर एवं क्वचित्पुत्रः प्रजायते ॥२०८॥
आधिक्ये रजसः कन्या शुक्राधिक्ये सुतो भवेत् । नपुंसकः समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी ॥२०९॥
अन्यत्ते कारणं वच्मि न भवन्ति सुता यतः । कारणं शृणु तस्येदं विष्णुदास द्विजोत्तम ॥२१०॥
तेषु देशेषु नार्यश्च निजराज्यमदेन हि । रतिकालेऽधः पुरुषं कृत्वा क्रीडां भजंति ताः॥२११॥
न स्वीयां रतिकाले ताः पृष्ठं भूमिं स्पृशंति हि । अतएव रतिकाले शुक्रं तु स्रवते बहिः ॥२१२॥
सूक्ष्मछिद्रे तथा गर्भस्थाने तन्नैव गच्छति । नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रंध्रे प्रकीर्तिते ॥२१३॥
मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते । दशमं मस्तके प्रोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥२१४॥
स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः । सूचिकाग्रसमान्येव तानि छिद्राणि संति हि ॥२१५॥
गर्भछिद्रं रतिकाले किंचिद्विकसितं द्विज । भूत्वा मार्गं तु वीर्यस्य ददाति पुरुषस्य च ॥२१६॥
तन्मार्गेण गत वीर्यं चेत् सम्यक् पुरुषस्य च । गर्भस्थाने तदा पुत्रो जायते नात्र संशयः ॥२१७॥
स्वल्पं प्रविष्टं वीर्यं च तदा कन्या प्रजायते । रजसश्चाधिकत्वेन जानीह्येवं विनिश्चयम् ॥२१८॥
तस्माद्यदाऽधः शेते वै तद्देशेषु नरोत्तमः । रतिकाले तस्य वीर्यमूर्ध्वं गच्छति नैव तत् ॥२१९॥
यदि दैववशात्किंचिद्गतं स्त्रीरंध्रमार्गतः । तदा दैववशात्पुत्रो जायते सोऽपि षंढवत्॥२२०॥
अतएव हि तद्देशे बहुकन्या भवन्ति हि । एवं ते कारणं प्रोक्तं कन्योत्पत्तेर्द्विजोत्तम ॥२२१॥
एवं सर्वेषु देशेषु चेन्नार्या अधिकं बलम् । अस्ति तर्हि भवेत्कन्या पुत्रः पुरुषसारतः ॥२२२॥

॥ २०३–२०५ ॥ वहाँपर विशेष करके कन्याओंकी ही उत्पत्ति होती है, पुरुष तो बहुत ही कम होते हैं। हनुमान्‌जीकी गर्जनासे मिली वायुके संस्पर्शसे उस राज्यके आस-पासवाले राज्यके लोग भी प्रायः अशक्त (नपुंसक) होते हैं। इसलिए वहाँके पुरुषोंका वीर्य कमजोर होता है और अधिकांश कन्यायें ही उत्पन्न होती हैं, पुत्र तो शायद ही कभी कहीं हो जाता हो ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ जब कि स्त्रीके रजकी अधिकता होती है तो कन्या और पुरुषके वीर्यकी अधिकता होती है, तब पुत्र होता है। यदि पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज ये दोनों बराबर हो जाते हैं, तब नपुंसक उत्पन्न होता है। इन बातोंके सिवाय सबसे मुख्य बात तो यह है कि परमेश्वरकी जैसी इच्छा होती है, वही होता है ॥ २०९ ॥ हे द्विजोत्तम विष्णुदास ! वहाँ विशेष करके कन्याओंके उत्पन्न होनेका एक कारण और भी है, उसे सुनो ॥ २१० ॥ उस देशकी स्त्रियाँ अपने राज्यमदसे मतवाली हो पुरुषको नीचे सुला तथा स्वयं ऊपर लेटकर रति करती हैं। रतिकालके समय वे अपनी पीठको जमीनमें नहीं लगने देतीं। इसीलिए पुरुषका वीर्य बाहर ही रह जाता है। गर्भके सूक्ष्म छिद्रतक वह नहीं पहुँच पाता। पुरुषके नाक, नेत्र और कान इनमें दो-दो छिद रहते हैं ॥ २११–२१३ ॥ लिंग, गुदा तथा मुखमें एक-एक छिद्र रहता है। ये सब मिलाकर नौ हुए और दसवाँ छिद्र ब्रह्मांडमें होता है। ऐसा लोगोंने बतलाया है ॥ २१४ ॥ किन्तु स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक होते हैं। दो छिद्र दोनों स्तनोंमें और एक गर्भके रास्तेमें। गर्भके मार्गवाला छिद्र सुईकी नोकके समान बारीक होता है ॥ २१५ ॥ किन्तु रतिकालमें गर्भवाला छिद्र कुछ चौड़ा होकर पुरुषके वीर्यको भीतर जानेके लिये रास्ता दे देता है ॥ २१६ ॥ उस मार्गसे गया हुआ वीर्य यदि अच्छी तरह अपने स्थान तक पहुँच जाता है, तब पुत्रकी उत्पत्ति होती है। इसमें कोई संशय नहीं है। यदि उस समय गर्भाशयमें कम वीर्य जाता है तो कन्याकी उत्पत्ति हुआ करती है। क्योंकि ऐसी दशामें स्त्रीका रज अधिक और पुरुषका वीर्य कम पड़ जाता है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ इसीसे जब वहांवाले पुरुष नीचे लेटते हैं, तब उनका वीर्य गर्भाशयके छिद्र तक नहीं पहुँच पाता। यदि दैववश कभी थोड़ा-सा वीर्य उछलकर ऊपर स्त्रीके गर्भाशय तक पहुँच भी जाता है, तब नपुंसक उत्पन्न होता है ॥ २१९ ॥ २२० ॥ इसी कारण उस देशमें अधिकांश कन्यायें ही होती हैं। हे द्विजोत्तम ! मैंने इस प्रकार तुम्हें वहाँ विशेष कन्याओंके उत्पन्न होनेका कारण बतलाया ॥ २२१ ॥ यह प्रायः सब देशोंमें देखा जाता है कि जिस जगह स्त्री बलवती होती है तो कन्या

तस्मात्पुत्रार्थिना नारी पोषणीया कदापि न । पोषयेच्च सदाऽऽत्मानं नानाखाद्यरसायनैः ॥२२३॥
अतएव हि वैद्याश्च पालनीयाः सदा नरैः । बलाबलप्रवेत्तारस्तैर्ज्ञेयं स्वबलाबलम् ॥२२४॥
पुष्टदेहं निरीक्ष्याथ न ज्ञेयं त्वधिकं बलम् । वातेनापि पुमान्पुष्टो जायतेऽत्र सदैव हि ॥२२५॥
अतो वैद्यं विना तच्च न ज्ञास्यसि बलाबलम् । अतो वैद्यास्ते प्रष्टव्याः सदा भक्तिपुरःसराः ॥२२६॥
मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे वैद्येऽथ गणके गुरौ । यादृशी भावना स्वीया सिद्धिर्भवति तादृशी ॥२२७॥
अतो वैद्योक्तमार्गेण सदा गच्छेन्नरोत्तमः । बलाबलविचारेण पुत्रा एव भवंति हि ॥२२८॥
एक एव वरः पुत्रः किं जाता दश कन्यकाः । पुन्नाम्नो नरकात्पुत्रस्तारयेत्स्वकुलं क्षणात् ॥२२९॥
कन्या स्वीयदुराचारात्क्षणान्निजपितुः कुलम् । तथा भर्तुः कुलं चापि नरके पातयेच्च सा ॥२३०॥
तस्मान्नरैश्च पुत्रार्थं यत्नः कार्यस्त्वहर्निशम् । एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥
यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥२३१॥
जीवतो वाक्यकरणात्प्रत्यब्दं भूरि भोजनात् । गयायां पिंडदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥२३२॥
एवं शिष्य त्वया पृष्टमसक्तेन कथं व्रतम् । कार्यं तच्च मया सर्वं भूसुरस्य कथानकम् ॥२३३॥
तवाग्रे कथितं रम्यं रम्यं त्वत्तोषार्थमनुत्तमम् । तस्य व्रतस्य सामर्थ्यात्स दरिद्रो द्विजोत्तमः ॥२३४॥
लब्ध्वा तद्विपुलं राज्यं भुक्त्वा भोगान् मनोरमान् ।
सायुज्यं प्राप विष्णोश्च स्वायुषश्च क्षये द्विजः ॥२३५॥
एवं तद्रामचन्द्रस्य व्रतं कोऽत्र तु नाचरेत् । सुखेन भुक्तिदं चात्र परलोके विमुक्तिदम् ॥२३६॥
मुनिभिश्च सुरैर्नागैर्गंधर्वैः किन्नरैर्नृपैः । सदाऽनुभावितं चेदं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥२३७॥

ही जनमती हैं और पुरुष बली हो तो पुत्रकी उत्पत्ति अधिक होती है ॥ २२२ ॥ इसलिए जिन लोगोंको पुत्रकी अभिलाषा हो, उन्हें चाहिए कि स्त्रियोंको ज्यादा माल खिलाकर तगड़ी न करें। बल्कि स्वयं बढ़िया चीजें तथा रसायन खाकर बलवान् बनें ॥ २२३ ॥ लोगोंको यह भी उचित है कि बलाबल जाननेवाले अच्छे वैद्योंको अपने नगरमें रक्खें और समय-समयपर उनसे परीक्षा करा लिया करें ॥ २२४ ॥ शरीर-को मोटा देखकर ही यह न समझ ले कि इसमें अधिक बल है। सदा ऐसा देखा गया है कि लोग वायुसे भी मोटे हो जाया करते हैं ॥ २२५ ॥ इसीसे वैद्यके बिना बलाबल ठीक तौरसे नहीं जाना जा सकता। अतएव लोगोंको चाहिए कि सदा वैद्योंसे आदरपूर्वक अपने स्वास्थ्यके विषयमें पूछताछ करते रहें ॥ २२६ ॥ मंत्रमें, तीर्थमें, ब्राह्मणमें, वैद्यमें, देवता और ज्योतिषीमें, जैसी जिसकी भावना रहती है, वैसा ही उसे फल मिलता है ॥ २२७ ॥ अतएव वैद्य जिस तरह बतलाये, उसी तरह लोग चलें। यदि अच्छी तरह बलाबलका विचार करके पुरुष स्त्रीके साथ रति करे तो पुत्र ही होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २२८ ॥ केवल एक पुत्रका होना अच्छा, किन्तु दस कन्याओंका होना ठीक नहीं है। यदि पुत्र होता है तो वह क्षणमात्रमें अपने कुलको 'पुं'नामक नरकसे तार देता है ॥ २२९ ॥ इसके विपरीत कन्या दुराचार करके अपने पिता तथा पति दोनों कुलोंको क्षणभरमें नरकमें गिरा देती है ॥ २३० ॥ इसीलिए लोगोंको चाहिए कि सदा पुत्रके लिये यत्न करें। एक ही पुत्रसे सन्तोष न कर ले, बल्कि कइयोंकी इच्छा रक्खे। न मालूम उनमेंसे कौन गयामें जाकर पिण्डदान कर आये या अश्वमेध यज्ञ करे अथवा नील वृषभ (काला साँड़) छोड़े ॥ २३१ ॥ जबतक पिता रहे, तबतक उसका कहना माने। मर जानेपर प्रतिवर्ष बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराये और गयामें जाकर पिंडदान करे। इन्हीं तीन कामोंसे पुत्रकी पुत्रता सार्थक होती है ॥ २३२ ॥ इस प्रकार हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो पूछा था कि अशक्त प्राणी किस प्रकार व्रत करे। सो मैंने एक ब्राह्मणकी कथा सुनाकर समझा दिया। इस व्रतकी सामर्थ्यसे वह दरिद्र ब्राह्मण विपुल राजलक्ष्मी तथा तरह-तरहके मनोरम भोगोंको भोगकर आयु समाप्त होने-पर विष्णुभगवान्‌की सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ २३३-२३५ ॥ इस प्रकार उन रामचंद्रजीके व्रतको कौन नहीं करेगा, जो इस लोकमें आनन्दके साथ भुक्ति और परलोकमें मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥ २३६ ॥ अनेक

स्त्रीपुत्रधनदं चैतत्सर्वसौख्यप्रदं नृणाम् । इहलोके परे चापि विष्णोः सायुज्यदायकम् ॥२३८॥
संति व्रतान्यनेकानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले । तथापि मासनवमीसमानं व्रतमुत्तमम् ॥२३९॥
विष्णुदास द्विजश्रेष्ठ न भूतं न भविष्यति । तस्मात्सदा नरैः कार्यं व्रतं चेदं महत्तमम् ॥२४०॥
एवं त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छास्ति तद्वदस्व वदामि ते ॥२४१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे
आदिकाव्ये नवमीकथावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

समप्तः सर्गः

(लक्षरामनामोद्यापनविधि)

विष्णुदास उवाच

अन्यद्गुरो राघवस्य तुष्टिदं किं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

शृणुष्व विष्णुदास त्वं यत्तेऽहं प्रवदामि च । तुष्ट्यर्थं रामचन्द्रस्य नित्यं पत्रे तु मानवैः ॥ १ ॥
लेखनीयं रामनामशतानि नव प्रत्यहम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं पूजनीयं सविस्तरम् ॥ २ ॥
एवं कोटिमितं लेख्यं लक्षं वा तु ततः परम् । हवनं हि दशांशेन कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥
इदं विष्णुरिति ऋचा तिलाज्यैः पायसेन वा । नवान्नेनाथवा कार्यं राघवं परिपूज्य च ॥ ४ ॥
हवनांगे राघवादिदेवानां पूजने नरैः । आसनार्थं तु भद्रं च स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं शुभम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं शुभम् ॥ ६ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा रामतोभद्रमुत्तमम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् ॥ ७ ॥
एवं होमं लेखनं च पूजनादि च यत्कृतम् । अर्पयेद्रघुनाथाय तत्सर्वं त्वतिभक्तितः ॥ ८ ॥

मुनियों, देवताओं, नागों, गन्धर्वों, किन्नरों और राजाओंने कितने ही बार इस व्रतका अनुष्ठान किया है ॥ २३७ ॥ यह व्रत इस लोकमें स्त्री-पुत्र-धन तथा सब सुख देनेवाला है और परलोकमें विष्णुभगवान्‌की सायुज्य-मुक्ति प्रदान करता है ॥ २३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास ! वैसे तो स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें बहुतसे व्रत हैं। किन्तु उनमेंसे रामनवमी व्रतके बराबर न कोई व्रत है और न होगा। इसी कारण लोगोंको चाहिए कि सदा इस रामनवमीके महान् व्रतको करें ॥ २३९ ॥ २४० ॥ इस तरह तुमने जो कुछ हमसे पूछा, सो कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते, हो सो कहो ॥ २४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाली कोई और युक्ति बतलाइए। रामदास कहने लगे—हे विष्णुदास ! मैं तुम्हें जो बतला रहा हूँ, उसे सुनो। रामकी प्रीतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको चाहिए कि कागजपर प्रतिदिन नौ सौ या एक सौ आठ रामनाम लिखकर विस्तारके साथ उनका पूजन करें ? ॥ १ ॥ २ ॥ इस तरह लिखते हुए जब एक करोड़ अथवा एक लाख नामोंको लिख ले तो उनका दशांश विधिवत् हवन करे ॥ ३ ॥ हवन 'इदं विष्णुः०' इन मन्त्रसे करे। तिल, घी और खीरसे हवन करना चाहिए। यदि ये वस्तुएँ न इकट्ठी हो सकें तो नवीन अन्नसे रामका पूजन करके हवन करना चाहिए ॥ ४ ॥ हवन-के अङ्गोंमें भद्रआदि बनाकर राघवआदि देवताओंका पूजन करके अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामलिंगतोभद्र अथवा अष्टोत्तरशत रामलिंगात्मक भद्र बनावे । अथवा अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्र या अष्टोत्तरशत रामतोभद्रकी रचना करे ॥ ५–७ ॥ इस तरह होम-लेखन-पूजन आदि जो कुछ करे, सब भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीको अर्पण कर दे ॥८॥

विष्णुदास उवाच

त्वया गुरो शुभं प्रोक्तं रामनामप्रलेखनम् । न तस्योद्यापनं प्रोक्तं तद्वदस्व ममाधुना ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य भविष्यंते कथां वक्ष्यामि भूतवत् । रामनामोद्यापनस्य विस्तरेण मनोरमाम् ॥१०॥
पाण्डुपुत्रो महावीरो बंधुभिश्च युधिष्ठिरः । स्त्रिया मात्रा भ्रष्टराज्यो वने वासं करिष्यति ॥११॥
तं द्रष्टुं द्वापरे कृष्णः कदा गच्छति वै वने । तं कृष्णं पूजयित्वा स तस्मै प्रश्नं करिष्यति ॥१२॥

युधिष्ठिर उवाच

देवदेव जगन्नाथ भक्तानां वरदायक ।किंचित्त्वां प्रष्टुमिच्छामि मयि तुष्टोऽसि चेत्प्रभो ॥१३॥
लक्ष्मीप्राप्तिकरं पुण्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् । व्रतमाख्याहि देवेश राज्यभ्रष्टस्य मेऽधुना ॥१४॥

श्रीकृष्ण उवाच

गुह्याद्गुह्यतमं श्रोतुं यदि वांछसि भूपते । तदा निगदतो मत्तः सकाशाच्छृणु सादरम् ॥१५॥
रामनाम्नः परं नास्ति मोक्षलक्ष्मीप्रदायकम् । तेजोरूपं यदव्यक्तं रामानामाभिधीयते ॥१६॥
तस्मात्तन्नाम जप्त्वा वै रामरूपो भवेन्नरः । एतदेव हि रामेण मारुतिं प्रति भाषितम् ॥१७॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन्काले हनुमते रामेणैवोपदेशितम् । एतद्विस्तरतो ब्रूहि सुमते रुक्मिणीपते ॥१८॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा रामावतारे च सीता नीता सुरारिणा । हनूमंतं समाहूय रामचन्द्रोऽब्रवीद्वचः ॥१९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वायुसूनो महावीर सीतान्वेषणहेतवे । समस्तां दक्षिणदिशं गत्वा शुद्धिं समानय ॥२०॥

श्रीहनुमान् उवाच

रघुनाथ जगन्नाथ दक्षिणस्यां हि सागरः । बहवो राक्षसाः संति तत्र शक्तिः कथं मम ॥२१॥

विष्णुदासने कहा–हे गुरो ! आपने रामनाम लिखनेकी जो युक्ति बतलायी, वह बहुत ही उत्तम है । लेकिन उसका उद्यापन नहीं बतलाया । उसे भी मुझे अभी बतला दीजिए ॥ ९ ॥ श्रीरामदास कहने लगे-हे शिष्य ! मैं तुम्हें भविष्यकी एक कथा भूतकालमें समन्वित करके बतला रहा हूँ ॥ १० ॥ पांडुके पुत्र युधिष्ठिर जब राज्यसे वञ्चित हो गये, तब अपनी माता तथा बन्धुओंको साथ लेकर वनोंमें निवास करने लगे ॥ ११ ॥ उनको देखनेके लिए कृष्णचन्द्रजी वनमें गये । तब उन लोगोंने बड़े आदरसे श्रीकृष्णकी पूजा की और युधिष्ठिरने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे भक्तोंको वर देनेवाले ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे देवेश ! यह तो आप जानते ही हैं कि इस समय मैं राज्यसे भ्रष्ट हो चुका हूँ । अतएव आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलाइए । जो लक्ष्मीको देनेवाला, पवित्र और पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाला हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—हे भूपते ! यदि आप हमसे गुप्त व्रत सुनना चाहते हैं तो मैं कहता हूँ, आप सुनिये ॥ १५ ॥ रामनामके जपसे बढ़कर मोक्ष और लक्ष्मीको देनेवाला और कोई उपाय नहीं है । यह तेजोरूप और अव्यक्त है ॥ १६ ॥ इसी कारण रामनामका जप करके लोग रामरूप हो जाते हैं । यही बात स्वयं रामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीसे कही थी ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने कहा–हे रुक्मिणीपते ! रामचन्द्रने हनुमान्‌जीसे कब इस बातकी चर्चा की थी ? श्रीकृष्णजीने कहा–रामावतारमें जब कि रावण सीताको हर ले गया, तब रामने हनुमान्‌जीको बुलाकर कहा–॥ १८ ॥ १९ ॥ हे महावीर ! हे वायुसुनो ! तुम सीताजीको खोजनेके लिए सारी दक्षिण दिशामें भ्रमण करो और शीघ्र उनका समाचार लाओ ॥ २० ॥ श्रीहनुमान् बोले-हे जगन्नाथ !

श्रीरामचन्द्र उवाच

मारुते रावणादीनां राक्षसानां निवारकम् । मंत्रं ददामि सुगमं येन सर्वजयी भवेत् ॥२२॥

श्रीहनुमानुवाच

महाराज कृपासिंधो दीनानां त्वं सुतारकः । उपदेशोऽधुना कार्यस्तस्य मंत्रस्य तत्त्वतः ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं रहस्याहूय सत्वरम् । मारुतेर्दक्षिणे कर्णे श्रीरामेत्युपदेशितः ॥२४॥
तस्य मंत्रस्य सकलं पुरश्चरणमुत्तमम् । लक्षसख्यं विधायाशु प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ॥२५॥
तन्मंत्रस्य प्रभावेण नानाजलचराचरम् । दुर्गमं सागरं तीर्त्वा लंकामध्ये समाययौ ॥२६॥
न स लेभे तत्र शुद्धिमशोकाख्यवनं गतः । वृक्षमूले स्थितां सीतां दूरतोऽग्रे ददर्श सः ॥२७॥
तां दृष्ट्वा शीघ्रमागत्य हर्षनिर्भरमानसः । सीतायाश्चरणौ नत्वा दंडवत्पतितो भुवि ॥२८॥
अत्यंतं सूक्ष्मवपुषं बालकाकारसंयुतम् । तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ।२९॥
आगतोऽसि कुतो बाल कुत्रत्यः कस्य बालकः ।

श्रीहनुमानुवाच

सीता माता पिता रामो रामचन्द्रसमीपतः ॥३०॥
समागतोऽस्मि हनुमान् ग्राह्यैका मुद्रिका त्वया । रामनामांकितां मुद्रां शुद्धकांचननिर्मिताम् ॥३१॥
ज्ञात्वा रामस्य सा सीता परमं तोषमाययौ । तां ज्ञात्वा तोषसहितामांजनेयोऽब्रवीद्वचः ॥३२॥
मातः क्षुधाऽस्त्यति मम त्वद्व्यातिक्लेशकारिणी । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलसघोऽतिदुर्लभः ॥३३॥
तवाज्ञयाऽहं सीतेऽद्य करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् ।

सीतोवाच

भो बालक महावीर रावणोऽस्ति वनाधिपः ॥३४॥

हे रघुनाथ ! दक्षिण दिशामें तो विशाल सागर है और बहुतसे राक्षस हैं, फिर वहाँपर मेरी शक्ति कैसे काम देगी ? ॥ २१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मारुते ! रावण आदि राक्षसोंका निवारण करनेवाला मैं एक बहुत ही सरल मंत्र बताता हूँ । जिसकी सहायतासे सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी ॥ २२ ॥ हनुमान्‌जीने कहा—हे महाराज ! हे कृपासिन्धो ! आप दीनोंका उद्धार करते हैं । हे प्रभो ! हमें उस मन्त्रका अच्छी तरह उपदेश दीजिए ॥ २३ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हनुमान्‌जीके इस प्रकार विनय करनेपर रामने उन्हें एकान्तमें ले जाकर उनके कानमें 'श्रीराम' इस नामका उपदेश दिया ॥ २४ ॥ हनुमान्‌जीने उस मन्त्रका उत्तम रीतिसे एक लाख जप करके दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया ॥ २५ ॥ उसी मंत्रके प्रभावसे विविध प्रकारके जलजन्तुओंसे भरे दुर्गम सागरको पार करके वे लङ्का पहुँच गये ॥ २६ ॥ वहाँ बहुत खोज करनेपर भी सीताका पता न पाकर अशोक वनमें गये, तब वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठी हुई सीताको दूरसे देखा ॥ २७ ॥ सीताको देखकर उनका हृदय हर्षसे भर आया और तुरन्त उनके पास पहुँचकर प्रणाम किया । फिर दण्डकी तरह पृथ्वीमें लोट गये ॥ २८ ॥ उस समय हनुमान्‌जीने बच्चेके समान अपना एक छोटा-सा रूप धारण कर रक्खा था । उनको पृथ्वीमें पड़े देखकर सीताने कहा—॥ २९ ॥ बच्चे ! तुम कहाँसे आये हो ? कहाँ तुम्हारा घर है और तुम किसके बेटे हो ? हनुमान्‌जीने कहा कि सीता मेरी माता हैं और पिता श्रीरामचन्द्र हैं । इस समय मैं उन्हींके पाससे आ रहा हूँ ॥ ३० ॥ मेरा नाम हनुमान् है । आप इस अंगूठीको लीजिये । यह शुद्ध सुवर्णकी बनी हुई है और इसमें श्रीरामचन्द्रजीका नाम लिखा हुआ है ॥ ३१ ॥ जब सीताको यह ज्ञात हुआ कि यह मुद्रिका रामजीकी है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं । सीता माताको प्रसन्न देखकर हनुमान्‌जीने कहा—माँ ! मुझे बड़ी भूख लगी है । इससे बड़ा कष्ट हो रहा है । इस बगीचेमें मैं बहुत मीठे और दुर्लभ फल देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि

न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं भक्षयिष्यसि ।

हनुमानुवाच

श्रीरामेति परो मन्त्रः शस्त्रं मे हृदयांतरे ॥३५॥

तेन सर्वाणि रक्षांसि तृणरूपाणि सांप्रतम् । इत्युक्त्वाऽथ तदीयाज्ञां गृहीत्वा वनभूरुहान् ॥३६॥
उन्मूलनं चकाराथ श्रुत्वा रक्षांसि चाययुः । युद्धं च तुमुलं जातं पश्चान्मन्त्रप्रभावतः ॥३७॥
दलितं राक्षसबलं दग्धा लंका हनूमता । पुनर्गत्वाऽशोकवनं सीतां नत्वा च मारुतिः ॥३८॥
तदलंकारमादाय रामचन्द्रं समाययौ । रामायालंकृतिं दत्त्वा तस्थौ तत्पादसन्निधौ ॥३९॥
रामोऽलंकृतिमादाय तच्छ्रुत्वा मुदितोऽभवत् । रामनामप्रभावोऽयं महाराज युधिष्ठिर ॥४०॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र रामनामजपं कुरु ।

युधिष्ठिर उवाच

कथं जपो विधेयोऽस्य पुरश्चरणकं फलम् ॥४१॥
कथमुद्यापनं चैव सर्वमाख्याहि यत्नतः ॥४२॥

श्रीकृष्ण उवाच

अथवा पुस्तके लेख्यं स्मरणं हृदयेऽथवा । कोटिसंख्यापरिमितमथवा लक्षसंमितम् ॥४३॥
मंत्रा नानाविधाः सन्ति शतशो राघवस्य च । तेभ्यस्त्वेकं वदाम्यद्य तव मंत्रं युधिष्ठिर ॥४४॥

श्रीशब्दमाद्यं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो रघुनाथनामजपो निहन्याद्द्विजकोटिहत्याः ॥४५॥

अनेनैव च मन्त्रेण जपः कार्यः सुमेधसा । लक्षसंख्ये कृते तस्मिन्नुद्यापनविधिं चरेत् ॥४६॥

आप आज्ञा दें तो मैं थोड़ेसे फल तोड़कर खा लूँ। सीताने कहा—हे महावीर बालक! इस बगीचेका मालिक रावण है ॥ ३४ ॥ तुममें कुछ भी शक्ति नहीं मालूम पड़ रही है। तब तुम किस तरह फल खाओगे? हनुमान्‌जीने कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम'के नामका एक प्रबल शस्त्र है। उसके प्रभावसे लङ्काके सब राक्षस मेरे सामने तिनकेके बराबर हैं। ऐसा कह और सीताजीकी आज्ञा पाकर हनुमान्‌जी बगीचेमें घुस पड़े और पेड़ोंको उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे। यह समाचार सुनकर बहुतसे राक्षस आ गये और उनके साथ तुमुल युद्ध हुआ। किन्तु अन्तमें श्रीरामनाममन्त्रके प्रभावसे हनुमान्‌जीने उन सब राक्षसोंको मार डाला और लङ्का नगरीको भी जलाकर राख कर दिया। फिर लौटकर अशोकवनमें गये। वहाँ सीताको प्रणाम किया ॥ ३५–३८ ॥ फिर उनका अलंकार लेकर रामचन्द्रजीकी ओर लौट पड़े। रामके पास पहुँचकर उन्होंने वह अलंकार रामको दिया और उनके चरणोंके पास बैठ गये ॥ ३९ ॥ रामने वह अलंकार हाथमें ले लिया और सीताका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुए। हे युधिष्ठिर! यह सब रामनामका माहात्म्य है ॥ ४० ॥ इसलिए हे राजन्! तुम भी रामनामका जप करो। युधिष्ठिरने कहा—हे कृष्ण! इस रामनामके जप करनेका क्या विधान है? इसका पुरश्चरण कैसे किया जाता है और उद्यापनकी क्या विधि है? यह सब आप हमें अच्छी तरह समझाइए। श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—हे राजेन्द्र! साधकको चाहिए कि स्नान करके किसी पवित्र स्थानपर बैठे और तुलसीकी मालापर रामनामका जप करे। अथवा किसी पुस्तकपर लिखे या हृदयमें स्मरण करे। जपकी संख्या एक करोड़ अथवा एक लाख होनी चाहिए ॥ ४१–४३ ॥ वैसे तो रामचन्द्रजीके अनेक मन्त्र हैं, किन्तु उनमेंसे एक उत्तम मन्त्र मैं तुमको बतलाता हूँ ॥ ४४ ॥ पूर्वमें श्रीराम शब्द, मध्यमें जय शब्द और अन्तमें दो जय शब्दोंसे मिला हुआ (श्रीराम जय राम जय जय राम) राममन्त्र यदि इक्कीस बार जपा जाय तो वह करोड़ों ब्रह्महत्याओंके पापोंको नष्ट कर देता है ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि

जपाच्छतगुणं पुण्यं रामनामप्रलेखने । लक्षे लक्षे पृथक्कार्यमुद्यापनमनुत्तमम् ॥४७॥
उद्यापनविधानं च संक्षेपेण वदामि ते । पूर्वेद्युरुपवासी स्याद्रात्रौ मंडपिकांतरे ॥४८॥
रामलिंगात्मके भद्रे रामतोभद्रकेऽथवा । अष्टोत्तरसहस्राख्ये ह्यष्टोत्तरशतेऽथवा ॥४९॥
धान्यराशौ मध्यदेशे कलशं स्थापयेत्ततः । तन्मुखे स्वर्णपात्रे वै वरवस्त्रोपशोभिते ॥५०॥
सीतालक्ष्मणसंयुक्तां राघवप्रतिमां शुभाम् । आमाषात्पलपर्यन्तां सौवर्णीं प्रतिमां यजेत् ॥५१॥
राजती वा ताम्रमयी वित्तशाठ्यं न कारयेत् । उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्सुसमाहितः ॥५२॥
रामनामांकितं हेमपत्रं तत्पुरतोऽर्चयेत् । कथां श्रुत्वा च विधिवद्देवदेवं क्षमापयेत् ॥५३॥
सापराधं च शरणं त्वद्भक्तिनिरतं हि माम् । दीनानाथ कृपासिन्धो त्राहि संसारसागरात् ॥५४॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवाद्यैश्च मंगलैः । ततः प्रभातसमये स्नात्वा होमं समारभेत् ॥५५॥
दशांशेनैव होमः स्यात्तद्दशांशेन तर्पणम् । गव्येन पयसा कार्यं राममंत्रेण यत्नतः ॥५६॥
तस्यापि च दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । आचार्याय सवत्सां गां सालंकारां सवाससाम् ॥५७॥
भक्त्याऽर्पयेत्ससुवर्णां व्रतसंपूर्तिहेतवे । अन्यानपि द्विजांस्तोष्य राज्यं लक्ष्मीं समाप्नुयात् ५८॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । नानादानानि तीर्थानि प्रदक्षिणतपांसि च ॥५९॥
तानि सर्वाणि लक्षांशसमान्यस्य भवंति च । निष्कामो वा सकामो वा यः कुर्याद्भक्तिसंयुतः ॥६०॥
तस्य सर्वेऽपि लक्षांशसमान्यस्य भवंति च । लिखित्वा पुस्तकं वापि वरं रामायणस्य च ॥६१॥
एवमुद्यापनं कार्यं श्लोकसंख्यादशांशतः । पूर्ववद्धवनं कार्यं तद्दशांशाच्च तर्पणम् ॥६२॥

इसी मन्त्रका जप करे और जब जपकी संख्या एक लाख हो जाय, तब उद्यापन करे ॥ ४६ ॥ जपकी अपेक्षा सौगुना अधिक पुण्य रामनामके लिखनेमें है। साधकको चाहिये कि जब जब रामनामकी लेखसंख्या पूरी एक लाख हो जाय, तब तब उद्यापन करे ॥ ४७ ॥ अब संक्षेपमें उद्यापनकी भी विधि बतलाता हूँ। जिस दिन उद्यापन करना हो, उस दिनके एक दिन पहले उपवास करे और रात्रिके समय उद्यापनके लिये बनायी हुई मण्डपिकामें या रामलिङ्गात्मक भद्र तथा रामतोभद्र, अष्टोत्तरसहस्राख्य या अष्टोत्तरशताख्य भद्रमें धान्यराशि स्थापित करके उसके मध्यमें कलश रक्खे। कलशके मुखपर एक स्वर्णपात्र रखकर उसपर सुन्दर कपड़ा ओढ़ावे और सीता-लक्ष्मणके साथ-साथ रामकी शुभ प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमा कमसे कम एक मासे सोनेकी होनी चाहिये ॥ ४८-५१ ॥ यदि सुवर्णकी प्रतिमा न बन सके तो चाँदी या तामेकी बनवा ले। किन्तु कंजूसी करना ठीक नहीं है। प्रतिमा स्थापन करनेके अनन्तर षोडश उपचारोंसे उसकी पूजा करे ॥ ५२ ॥ रामनामसे अंकित सुवर्णपात्र प्रतिमाके सामने रखकर उसकी भी पूजा करे और भगवान्‌की कथा सुनकर क्षमा-प्रार्थना करे ॥ ५३ ॥ फिर कहे—हे दीनानाथ ! हे अनाथनाथ ! हे कृपासिन्धो ! मैं बड़ा अपराधी हूँ, किन्तु आपका भक्त हूँ। मुझे इस संसार-सागरसे उबारिए ॥ ५४ ॥ रातभर गाने और बाजे आदिके साथ जागरण करे और सबेरे उठे तो स्नान आदि नित्यकर्मोंसे निबटकर होम करे ॥ ५५ ॥ जितना जप करके पुरश्चरण किया गया हो, उसका दशांश हवन और हवनका दशांश तर्पण करना चाहिये। तर्पण गौके दूधसे करनेका विधान है ॥ ५६ ॥ तदनन्तर तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये और व्रत पूर्ण करनेके लिए आचार्यको वस्त्राभूषणसे अलंकृत एक सवत्सा गौ दे ॥ ५७ ॥ आचार्यके अतिरिक्त जो और-और ब्राह्मण आये हों, उन्हें भी प्रसन्न करे। ऐसा करनेसे प्राणीको राज्य एवं लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ५८ ॥ जो पुत्र चाहते हों, उन्हें पुत्र और जो धन चाहते हों, उन्हें धनकी प्राप्ति होती है। संसारमें जितने दान, तीर्थ, प्रदक्षिणा तथा तपस्यायें हैं, वे सब इस व्रतके लक्षांशके बराबर हैं। जो मनुष्य निष्काम या सकाम भावसे भक्तिपूर्वक यह व्रत करता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। यदि इस आनन्दरामायणकी पुस्तक लिखकर किसी विद्वान् ब्राह्मणको दी जाय तो उसके पुण्यका तो किसी तरह वर्णन ही नहीं किया जा सकता ॥ ५९-६१ ॥ इसके उद्यापनका विधान एक इस प्रकारका हुआ। दूसरा प्रकार यह है कि आनन्दरामायणकी जितनी श्लोकसंख्या है,

तस्यापि च दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । पूर्वश्लोकेन वाऽन्येन हवनादि प्रकीर्तितम् ॥६३॥
अथवा ग्रंथश्लोकानां दशांशैर्हवनं स्मृतम् । अथवाऽग्रे वक्ष्यमाणरीत्या वै शकुनस्य च ॥६४॥
श्लोकं निष्कास्य वै ग्रंथादाचरेद्धवनादिकम् । अथवा रामगायत्र्या राममंत्रैस्तु वाऽऽचरेत् ॥६५॥
हेमपत्रे त्वेक एव लेख्यः श्लोकः शुभावहः । अर्चयित्वा पूर्ववच्च हेमपत्रे सविस्तरम् ॥६६॥
राममूर्तेः पुरः स्थाप्य सर्वं तद्गुरवेऽर्पयेत् । श्रीरामकविता कृत्वा त्वेवमुद्यापनं नरैः ॥६७॥
अवश्यमेव कर्तव्यं कविताफलमीप्सुभिः । देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥६८॥
सर्वापणानां पण्यानां चिह्नार्थं योषितां नृणाम् । काव्यानां च कवीनां च पश्वादीनां च सर्वशः ॥६९॥
राजप्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते । विना कर्णोपदेशेन स्थावराणां विधानकम् ॥७०॥
कृत्वा नामकर्मणश्च कार्यमुद्यापनं ततः । लक्षपुष्पैः पूजनादि यद्यच्छ्रीराघवस्य च ॥७१॥
संतोषार्थं कृतं तस्य कार्यमुद्यापनं वरम् । एवं राजन् मया सर्वं तवाग्रे विनिवेदितम् ॥७२॥
रामनामप्रभावेण स्वीयं राज्यं लभिष्यसि ।

श्रीरामदास उवाच

युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा करिष्यति यथाविधि । ७३॥
मासत्रयेण तस्यैव राज्यप्राप्तिर्भविष्यति । अन्ते च परमं स्थानं गमिष्यति मनोर्बलात् ॥७४॥
एवं कथा भविष्या च तवाग्रे विनिवेदिता । रामनाममहिमानमिमं नरः शृणोति यः ॥७५॥
परमभक्तिसमेतः पुत्रपौत्रजवत्सुखम् । भुवि भुक्त्वा प्राप्नुयात्परमं मोक्षपदं तु सः ॥७६॥
नित्यं व्याख्या श्रीरामाग्रे कर्तव्या त्वतिभक्तितः । आनंदरामचरितस्याथवाऽन्यस्य विस्तरात् ॥७७॥
सर्गस्य वाऽर्धसर्गस्य पादसर्गस्य वा तथा । नवश्लोकमिता वापि श्लोकमात्रस्य वा तथा ॥७८॥

उसके दशांशसे हवन करे। हवनका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये। यह उद्यापनका दूसरा प्रकार हुआ। अब तीसरा प्रकार बतलाते हैं। आगे बतलाये जानेवाले क्रमके अनुसार इस ग्रंथमेंसे उतने श्लोक निकालकर हवन आदि करे। अथवा रामगायत्री या राममन्त्रसे हवन आदि करे॥ ६२-६५॥ सुवर्णके पत्रपर केवल एक श्लोक या पूर्वकथित विस्तृत रीतिसे कई श्लोक लिखकर उसकी पूजा करे और अन्तमें उसे गुरुको अर्पित कर दे। अथवा रामचन्द्रजीके विषयकी कोई एक कविता बनाकर उद्यापन करे॥ ६६॥ ६७॥ जिन लोगोंको कविताका फल पानेकी इच्छा हो, उन्हें तो उद्यापन अवश्य करना चाहिए। कोई देवालय, गजशाला तथा अश्वशाला बनवाते समय, वृक्ष लगाते समय, बावली या कुएँकी प्रतिष्ठाके समय, किसी पुरुष या स्त्रीके विवाहके समय यह उद्यापनविधि अवश्य करनी चाहिये। इनके अतिरिक्त कविता या काव्य बनानेके समय और राजप्रासादके निर्माणकालमें भी उद्यापन करना लाभदायक है। उद्यापनके अनन्तर रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये जैसा कि पीछे बतला आये हैं, उसके अनुसार एक लाख पुष्पोंसे रामकी पूजा करे। इसके सिवाय भी श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये जो-जो साधन बतलाये गये हैं, उन्हें उद्यापनके समय अवश्य करे। इस प्रकार हे राजन्! मैंने आपके समक्ष उद्यापनकी विधि बतलायी॥ ६८-७२॥ यदि ऐसा करेंगे तो इसमें कोई संशय नहीं है कि रामनामके प्रभावसे आप अपने खोये हुए राज्यको फिर वापस पा जायँगे। श्रीरामदास कहते हैं—श्रीकृष्णचन्द्रजीकी बतलायी हुई रीतिके अनुसार युधिष्ठिर तीन मास तक इस व्रतका विधान करनेसे अपना राज्य फिर पा जायँगे और उसी मंत्रके बलसे अन्तमें परमधामको प्रस्थान करेंगे॥ ७३॥ ॥ ७४॥ हे विष्णुदास! मैंने तुम्हें यह भविष्यकी कथा बतलायी है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस रामनामकी महिमाका श्रवण करता है, वह संसारमें जबतक रहता है, तबतक पुत्र-पौत्र आदि सांसारिक सुखोंको भोगता है और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त करता है॥ ७५॥ ७६॥ रामभक्तको चाहिये कि प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीके सामने इस आनन्दरामायण अथवा किसी दूसरे रामचरितकी भक्तिपूर्वक विस्तारसे व्याख्या किया करे॥ ७७॥ यह आवश्यक नहीं कि व्याख्या ग्रन्थके अधिक अंशकी हो। वह चाहे एक सर्गकी,

श्लोकार्धं श्लोकपादं वाऽऽनंदरामायणस्थितम् । ये पठंति नरा नित्यं ते नरा मुक्तिभागिनः ॥७९॥

येऽश्वत्थमूले मुनिवृक्षमूले तथा तुलस्याश्च समीपदेशे ।
पुण्यस्थले भास्करभूसुराग्रे श्रीरामचन्द्रस्य पुरः सदैव ॥८०॥
तथा सभायां द्विजवृन्दमध्ये नद्यास्तटे वा रघुनायकस्य ।
आनन्दरामायणमादरेण पठंति धन्या भुवि मानवास्ते ॥८१॥

रामायणं लिखित्वा तु दातव्यं भूसुराय हि । समग्रं वा कांडमेकं सर्गो वाऽतिसुपुण्यदः ॥८२॥
सर्गस्त्वेकः प्रत्यहं हि लिखित्वा भूसुराय हि । संपूज्य देयश्चानंदरामायणसमुद्भवः ॥८३॥
अशक्तेन नव श्लोकाः सदा देया विलेख्य च । प्रीत्यर्थं रामचन्द्रस्य विप्रेभ्यः परिपूज्य वै ॥८४॥
नित्यदानमेतदेव कर्तव्यं सर्वदा नरैः । नित्यं सुवर्णमुद्राया दानेन यत्फलं स्मृतम् ॥८५॥
तत्फलं प्रत्यहं सर्गदानेन लभ्यते नरैः । नानेन सदृशं दानं राघवस्यातितोषदम् ॥८६॥
तस्मादवश्यमेवैतद्दानं कार्यं निरंतरम् । श्रीरामचन्द्रतुष्ट्यर्थं नवपूगफलैस्तथा ॥८७॥
नागवल्लीनवदलैस्तांबूलः सोपचारकः । पृथङ्नवभूसुरेभ्यो देयो नित्यं सदक्षिणः ॥८८॥
अशक्तेनैक एवापि देयस्तांबूल उत्तमः । न तांबूलसमं दानं किंचिदस्ति जगत्त्रये ॥८९॥
ताम्बूलः शुद्धिदः प्रोक्तस्ताम्बूलो मंगलप्रदः । ताम्बूलः श्रीकरो ज्ञेयस्तांबूलो राघवप्रियः ॥९०॥
तस्मात्प्रयत्नतस्त्वया देयस्तांबूल उत्तमः । सदा रामं पूजयेच्च सदा रामं विचिंतयेत् ॥९१॥
श्रीरामस्मरणं नित्यं कार्यं भक्त्या मुहुर्मुहुः । यस्य वाण्यां रामनाम हस्तौ पूजनतत्परौ ॥९२॥
श्रीरामचरितान्येव श्रोतुकामा च यच्छ्रुतिः । रामतीर्थानि रामेशान् रामक्षेत्राणि यानि च ॥९३॥
यदंघ्री गंतुकामौ तु रामपूजोत्सवान् वरान् । संद्रष्टुकामौ यन्नेत्रौ स धन्यः पुरुषः स्मृतः ॥९४॥

आधे सर्गकी, सर्गके चतुर्थांशकी, नौ श्लोकोंकी, केवल एक श्लोककी, आधे श्लोककी, आधे या चौथाई श्लोककी, जैसे बने व्याख्या अवश्य करता जाय। जो लोग नित्य ऐसा करते हैं, वे मनुष्य अवश्य मुक्तिके भागी होते हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो लोग पीपलके नीचे, अगस्त्य वृक्षके नीचे, तुलसीके पास, किसी पवित्र स्थानमें, सूर्यदेव या ब्राह्मणके सामने अथवा रामचन्द्रजीके समक्ष, किसी सभामें, ब्राह्मणोंकी मण्डलीमें या नदीके तटपर जो लोग आनन्दरामायणमें लिखे हुए चरित्रका पाठ करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥ समग्र एक काण्ड अथवा एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर यदि किसी ब्राह्मणको दिया जाय तो भी बड़ा पुण्य होता है। रामके उपासकको चाहिये कि नित्य एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर उसकी पूजा करे और किसी ब्राह्मणको दान दे दे ॥८२॥८३॥ यदि पूरा सर्ग लिखनेमें असमर्थ हो तो रोज केवल नौ श्लोक ही लिखकर उसकी पूजा करे और रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये विप्रको दान दे दिया करे ॥८४॥ लोगोंको चाहिये कि और दानोंके चक्करमें न पड़कर सर्वदा इसीका दान दिया करें। नित्य सुवर्णकी मुद्रा दान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल केवल एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर दान देनेसे प्राप्त होता है। रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला इससे बढ़कर और कोई भी दान नहीं है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ अतएव निरन्तर अवश्यमेव इसका दान करना चाहिए। अथवा रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिए नौ सुपाड़ी अथवा अन्य वस्तुओं और दक्षिणाके साथ नौ पानके पत्ते नौ ब्राह्मणोंको दान दिया करे। यदि ऐसा न कर सके तो केवल एक ताम्बूलदान दिया करे। क्योंकि तीनों लोकोंमें ताम्बूलदानके बराबर और कोई भी दान नहीं है। ताम्बूल शुद्धि देनेवाला, मङ्गलप्रद, लक्ष्मीको बढ़ानेवाला और रामचन्द्रको प्रिय है ॥ ८७-९० ॥ इसीलिये लोगोंको चाहिये कि प्रयत्न करके उत्तम ताम्बूलका दान करें, सदा सब लोग रामकी पूजा करें, रामका ध्यान धरें और रामका स्मरण करें। जिनकी वाणीमें रामनाम विराजमान है, जिनके हाथ रामकी पूजामें लगे हुए हैं, जिनके कान रामका गुणानुवाद सुननेमें लगे हैं, जिनके पाँव रामेश्वर, रामतीर्थ और रामक्षेत्रमें जाते रहते हैं और जिनके नेत्र रामपूजनोत्सव देखनेमें लगे

राम रामेति रामेति ये वदंति जना भुवि । महापातकिनस्तेऽत्र मुक्तिं यांति न संशयः ॥९५॥
रामचन्द्रेति मंत्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी । तथापि निरये घोरे पतंतीत्यद्भुतं महत् ॥९६॥
श्रीरामनामामृतमंत्रबीजसंजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा ।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः ॥९७॥
आसने च तथा निद्राकाले भोजनकर्मणि । क्रीडने गमने नित्यं राममेव विचिंतयेत् ॥९८॥
श्रवणीयः कीर्त्तनीयश्चिंतनीयः सदा नरैः । गेयश्च रामो ह्युपदेश्यो राम एवावनीतले ॥९९॥
स्वर्गे सुराणाममृतं यथाऽस्ति परमं शुभम् । रामनामामृतं भूम्यां क्षयं नाप्नोति वै कदा ॥१००॥
गोपीचन्दनलिप्तांगो राममुद्रांकितो नरः । रामनामोच्चारकश्च तुलसीकाष्ठमालिकः ॥१०१॥
शंखचक्रगदापद्मधारको राममानसः । यस्त्वत्र स नरो धन्यो नेतरश्च कदाचन ॥१०२॥
स एव पुरुषोऽग्र्यो यो रामनाम सदा वदेत् । स एव पुरुषो निंद्यस्त्वत्र रामं स्मरेन्न यः ॥१०३॥
ये नराः शिवसद्भक्तिं कृत्वा निंदन्ति राघवम् । पूर्ववच्च खरास्तेऽपि नरा ज्ञेयाऽवनीतले ॥१०४॥
राम एव हरो ज्ञेयः शिव एव रघूत्तमः । उभयोर्नांतरं ज्ञेयं भेददृङ् नारकी नरः ॥१०५॥
रामशंकरयोरत्र भिन्नत्वं येन मानितम् । अजागलस्तनवच्च तस्य जन्म वृथा गतम् ॥१०६॥
शंभोश्च हृदयं रामो रामस्य हृदयं शिवः । नैवांतरं कल्पनीयं कुतर्कैर्विविधैर्नरैः ॥१०७॥
रामेति द्व्यक्षरं नाम ये वदन्ति त्वहर्निशम् । न कस्यापि भयं तेषां जीवन्मुक्ताश्च ते नराः ॥१०८॥
राममुद्रांकितं दृष्ट्वा नरं ते यमकिंकराः । पलायन्ते दश दिशः सिंहं दृष्ट्वा गजा यथा ॥१०९॥
ललाटे पृष्ठदेशे च कुक्ष्योर्द्वे जठरे तथा । हृदये भुजयोर्द्वे हि मस्तके त्विति वै नव ॥११०॥

रहते हैं, वे पुरुष धन्य हैं ॥ ९१–९४ ॥ जो लोग इस संसारमें 'राम-राम' यह नाम जपते हैं, वे महापातकी होते हुए भी मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ९५ ॥ जिनके पास 'रामचन्द्र' यह मन्त्र है और वाणी अपने वशमें है, फिर भी वे लोग घोर नरकमें पड़ते हैं, यह महान् आश्चर्यकी बात है ॥ ९६ ॥ श्रीरामनामरूपी अमृतमन्त्र-बीजकी सञ्जीवनी यदि मनमें बैठ गयी तो हलाहल विष, प्रलयानल और मृत्युके मुखमें भी घुस जानेसे कोई भय नहीं रह जाता ॥ ९७ ॥ लोगोंको तो चाहिए कि उठते, बैठते, सोते, खाते, पीते, खेलते, कूदते या कहीं आते-जाते समय एकमात्र रामका ध्यान करें ॥ ९८ ॥ सदा उन्हींके गुणानुवाद सुनें। उन्हींके चरित्रका कीर्तन करें और उन्हींका गुण गायें ॥ ९९ ॥ स्वर्गमें जिस प्रकार अमृत परम मङ्गलकारी है। उन्हींके सदृश भूमण्डलपर कभी भी न नष्ट होनेवाला रामनामरूपी अमृत है ॥ १०० ॥ जो मनुष्य गोपीचन्दन लगाते, राममुद्रासे अङ्कित रहते, रामनामका उच्चारण करते, तुलसी (काष्ठ) की माला पहनते, शंख, चक्र, गदा और पद्मका चिह्न धारण करते और मनमें सब समय रामका स्मरण करते हैं। ऐसे प्राणी जहाँपर रहते हैं, वह स्थान और वे मनुष्य धन्य हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वही पुरुष सब पुरुषोंका अगुआ बन सकता है, जो सदा रामनामका जप किया करता है और वही पुरुष निन्दाका भाजन है, जो कभी रामचन्द्रजीका स्मरण नहीं करता ॥ १०३ ॥ जो मनुष्य शिवजीकी भक्ति करके रामचन्द्रजीकी निन्दा करते हैं, उन्हें इस भूमण्डलमें गधा समझना चाहिये ॥ १०४ ॥ राम ही शिव हैं और शिव ही राम हैं। इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जो प्राणी इनमें कोई भेदभाव मानता है, वह नरकगामी होता है ॥ १०५ ॥ इस संसारमें जिसने राम और शिवमें कोई भेद माना तो बकरीके गलेके स्तनके समान उसका जीवन वृथा गया ॥ १०६ ॥ शिवजीके हृदय राम हैं और रामके हृदय शिवजी हैं । लोगोंको चाहिए कि विविध प्रकारके कुतर्कोंमें पड़कर इनमें कोई भेद न मानें ॥ १०७ ॥ जो लोग रात दिन 'राम' ये दो अक्षर कहा करते हैं, उन्हें किसीका भय नहीं रह जाता और वे प्राणी जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १०८ ॥ राममुद्रासे चिह्नित मनुष्यको देखकर यमके दूत उसी तरह दसों दिशाओंमें भाग जाते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी भाग खड़े होते हैं ॥ १०९ ॥ अतएव लोगोंका यह परम कर्तव्य है कि गोपीचन्दनसे अङ्कित राममुद्रा धारण करें। क्योंकि राममुद्रा महान् श्रेष्ठ वस्तु है और सब प्रकारके

राममुद्रा धारणीया गोपीचंदनचिह्निता । राममुद्रा महाश्रेष्ठा सर्वदोषनिकृंतनी ॥१११॥
सदा देहे नरैर्धार्या गोपीचन्दनचिह्निता । राममुद्राऽस्ति यद्देहे तं पापं स्पृशते न हि ॥११२॥
स्तुतिः सदैव रामस्य स्तोत्रैः कार्या त्वहर्निशम् । प्राचीनैश्च नवीनैश्च स्वबुद्ध्या रचितैरपि ॥११३॥

स वाग्विर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनंतस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥११४॥

कवित्वमत्यशुद्धं च रामनाम्नांकितं च यत् । तज्ज्ञेयमतिशुद्धं च श्रवणात्पातकापहम् ॥११५॥
यस्मिन् रामस्य कृष्णस्य चरित्राणि महांति च । कवित्वे तत्पुण्यतमं सदा गेयं महत्तमैः ॥११६॥
शृणु शिष्य तवाग्रेऽन्यद्गुह्यं किंचिद्ब्रवीम्यहम् । कवितविषयं यच्च सर्वसन्देहनाशकम् ॥११७॥
अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः । कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥११८॥
एवं यद्वचनं शिष्य प्रोच्यते सर्वदा बुधैः । तदग्रे सर्वदा सत्यं ज्ञेयं कलियुगेऽपि च ॥११९॥
येषु मंत्रबलं भूम्यां वर्ततेऽत्र नरेषु हि । अश्वत्थामांशभूतास्ते ज्ञेयाश्च पुरुषा बुधैः ॥१२०॥
न्यायोपार्जितद्रव्येण राज्यं कुर्वन्ति धर्मतः । बल्यंशभूतास्ते ज्ञेया मानवा जगतीतले ॥१२१॥
रामस्तुतिं कवित्वे ये चरित्रं वर्णयंति च । व्यासांशभूतास्ते ज्ञेया मानवा जगतीतले ॥१२२॥
ये ये वीरास्त्वत्र भूम्यां वायुपुत्रांशरूपिणः । ते ते ज्ञेया नरास्तस्य चिरजीवित्वसूचकाः ॥१२३॥
ये ये शांता रामभक्ताः संत्यत्र मानवा भुवि । विभीषणांशभूतास्ते ज्ञेयाश्च सकलैर्जनैः ॥१२४॥
ये धैर्यवंतो योद्धारः संत्यत्र मानवा भुवि । कृपाचार्यांशभूतास्ते ज्ञेयाः सर्वे बुधैः सदा ॥१२५॥
ये वीराः क्रोधयुक्तास्तेऽत्र सर्वेऽवनीतले । जामदग्न्यंशभूताश्च सदा ज्ञेया नरोत्तमैः ॥१२६॥

दोषोंको नष्ट करती है। अतएव ललाट, पृष्ठदेश, दोनों कुक्षि, उदर, हृदय, दोनों भुजाओं और मस्तक इन स्थानोंमें नौ राममुद्राओंको धारण करना चाहिए ॥ ११० ॥ १११ ॥ ये मुद्राएँ धारण करना परमावश्यक है। क्योंकि जिसके शरीरमें राममुद्रा विद्यमान रहती है, उसे किसी प्रकारका पातक नहीं लगता ॥ ११२ ॥ उपासकोंको यह भी उचित है कि विविध प्रकारके स्तोत्रों द्वारा रामचन्द्रजीकी स्तुति करें। वे स्तोत्र प्राचीन हों, नवीन हों या अपनी बुद्धिसे बनाये गये हों ॥ ११३ ॥ रामके यशसे अङ्कित भगवान्‌के गुणानुवादसम्बन्धी वचनोंका प्रवाह प्राणियोंके महान् पातकोंको भी बहा ले जाता है। अतः लोग इसे सुनें, गायें और मनन करें। रामके नामसे अङ्कित कविता चाहे अतिशय अशुद्ध हो, फिर भी उसे अतिशुद्ध मानना चाहिये। उसके सुननेसे सब तरहके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ जिस कवितामें राम और कृष्णके महान् चरित्रोंका वर्णन किया गया हो, वह अत्यन्त पवित्र होता है। बड़े लोगोंको चाहिए कि सदा ऐसी कविताका गान करें ॥ ११६ ॥ श्रीरामदासजी विष्णुदाससे कहते हैं—हे शिष्य ! अब मैं तुम्हारे आगे सब प्रकारके सन्देहोंको निवृत्त करनेवाला एक गुप्त कविताका विषय कह रहा हूँ ॥ ११७ ॥ अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम ये सात चिरञ्जीवी हैं ॥ ११८ ॥ प्रायः पण्डित लोग इस बातको कहा करते हैं। इसे इस कलियुगमें भी सत्य ही मानना चाहिए ॥ ११९ ॥ इस पृथ्वीपर जिन लोगोंके पास मन्त्रबल विद्यमान है, उनको अश्वत्थामाका अंशज मानना चाहिए ॥ १२० ॥ जो राजे न्यायोपार्जित द्रव्यसे धर्मपूर्वक राज्य करते हैं, उनको इस संसारमें बलिके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२१ ॥ जो लोग कविता करते हुए रामकी स्तुति करते या उनके चरित्रोंका वर्णन करते हैं, जगतीतलमें उन मनुष्योंको व्यासके अंशसे उत्पन्न मानना चाहिये ॥ १२२ ॥ इस भूमण्डलमें जो जो वीर हैं, वे सब हनुमान्‌जीके अंशज हैं। ऊपर बतलाये हुए गुण ही उक्त प्रकारके मनुष्योंके चिरञ्जीवित्वकी सूचना देते रहते हैं ॥ १२३ ॥ इस पृथ्वीमें जितने शान्त रामभक्त हैं, उन्हें सब लोग विभीषणके अंशसे उत्पन्न समझें ॥ १२४ ॥ इस संसारमें जो धैर्यके साथ युद्ध करनेवाले लोग हैं, उन्हें कृपाचार्यके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२५ ॥ इस पृथ्वीमण्डलमें जितने क्रोधी वीर हैं, उन सब लोगोंको

चिरंजीवीति व्यासः कः कथं ज्ञेयो जनैर्भुवि । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ॥१२७॥
ये गीर्वाण्या कवित्वानि करिष्यंत्यवनीतले । व्यासांशभूतास्ते ज्ञेयाः पंडिता मानवास्त्विह १२८॥
ये रामचंद्रं कृष्णं च शिवं स्तुत्या स्तुवंति हि । वर्णयंति चरित्राणि ते ज्ञेया व्यासमूर्तयः ॥१२९॥
ये राजानं च गणिकां नारीं राज्ञः सभां तथा । नरं स्तुवंति स्तुत्या ते न ज्ञेयाव्यासमूर्तयः ॥१३०॥
यावद्भूम्यां तु रामस्य चरित्राणि स्तुवीत हि । तावदत्र स्मृतो व्यासस्ततो मुक्तिं गमिष्यति ॥१३१॥
किं फलं कस्य पाठाच्च तद्ब्रवीमि तवाधुना । शृणु स्वस्थमनाः शिष्य विस्तरेणोच्यते च यत् ॥१३२॥

इति श्रीमदानंदरामायणे मनोहरकांडे रामनामलक्षोच्चापनादिवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(वेदादिकोंको फलश्रुति)

श्रीरामदास उवाच

शिरोव्याहृतिसंयुक्ता गायत्री परिकीर्तिता । वेदाक्षराणां तुल्या सा शतेन मुनिभिः स्मृता ॥ १ ॥
चतुःशतेन गायत्र्याः संमितं परिकीर्तितम् । पावमानं महासूक्तं षट्शतश्च सुपुण्यदम् ॥ २ ॥
तथोपनिषदः पुण्या गायत्र्यक्षरसंख्यया । प्रोच्यते पुण्यदा लोके पुण्यसूक्तानि यान्यपि ॥ ३ ॥
संहितापाठतः प्रोक्तं द्विगुणं पदपाठतः । त्रिगुणं क्रमपाठे स्याज्जटापाठे तु षड्गुणम् ॥ ४ ॥
महाभारतपाठस्तु वेदतुल्यः प्रकीर्तितः । पुराणानां तदर्धेन स्मृतीनां च तथोच्यते । ५ ॥
भारते भगवद्गीता तथा नामसहस्रकम् । गायत्र्याश्च समं प्रोक्तं पुण्ये पापक्षयेऽपि च ॥ ६ ॥
पाठेन यत्फलं प्रोक्तमर्थज्ञानाच्चतुर्गुणम् । सद्भक्तेभ्यः श्रवणाच्च पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ ७ ॥

परशुरामके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२६ ॥ चिरञ्जीवी व्यासको इस संसारमें कैसे पहचानना चाहिए। इसके लिए उसका स्वरूप बतलाते हैं। तुम सावधान होकर सुनो ॥ १२७ ॥ जो-जो लोग संस्कृत वाणीमें कविता करेंगे, वे पण्डित पुरुष व्यासके अंशके उत्पन्न माने जायँगे ॥ १२८ ॥ जो लोग रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र तथा शिवजीकी स्तुतियाँ करें या उनके चरित्रका वर्णन करें, उनको व्यासकी साक्षात् मूर्ति समझना चाहिये ॥ १२९ ॥ जो लोग राजा, गणिका, स्त्री, राज-सभा तथा किसी व्यक्ति-विशेषकी स्तुति करते हैं, वे व्यासकी मूर्ति नहीं माने जा सकते ॥ १३० ॥ इस पृथ्वीपर प्राणी जबतक रामजी स्तुति करता है, तबतक वह व्यास रहता है और अन्तमें मुक्तिपद प्राप्त करता है ॥ १३१ ॥ किसी ग्रन्थका पाठ करनेसे क्या फल होता है, अब मैं इस बातको बतलाऊँगा। हे शिष्य! तुम स्वस्थ मन होकर सुनो, मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ १३२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे-वेदकी शिरोव्याहृतिसे युक्त सौ अक्षरोंवाली गायत्री कही गयी है ॥ १ ॥ चार सौ गायत्रीके बराबर पावमान नामक महासूक्त है, जिसमें छः सौ ऋचाओंका समावेश किया गया है ॥ २ ॥ गायत्रीकी अक्षरसंख्याके अनुसार उपनिषदोंके पाठसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ संहितापाठकी अपेक्षा दुगुना पुण्य पदपाठ करनेमें है। क्रमके पाठ करनेमें तिगुना पुण्य है और जटाके पाठसे छगुना पुण्य होता है ॥ ४ ॥ महाभारतका पाठ वेदपाठ सदृश होता है। पुराणोंका पाठ आधे वेदपाठका पुण्य देनेवाला है और उससे भी आधा पुण्य स्मृतियोंके पाठसे होता है ॥ ५ ॥ महाभारतके अन्तर्गत भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम, ये दोनों गायत्रीके समान पुण्यदायक एवं पापक्षयकारी माने गये हैं ॥ ६ ॥ पाठसे जितना पुण्य होता है, उससे चौगुना पुण्य उसका अर्थ समझनेसे होता है और अच्छे-अच्छे भक्तोंको सुनानेसे दसगुना पुण्य प्राप्त होता

भूमिदानं यथा लोके महादानमितीरितम् । विद्यादानं दशगुणं ततोऽपि स्यात्फलप्रदम् ॥ ८ ॥

विष्णुदास उवाच

कस्मै दानं प्रकर्तव्यं सुवर्णस्येतरस्य वा । कथं वा पात्रतामेति ब्राह्मणश्चेतरोऽथवा ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

वसन् गुरुकुले यस्तु भिक्षान्नाशी श्रुतिं पठन् । अधीत्य शाखां पूर्णां स यथोक्तं लभते फलम् ॥१०॥
शिष्यस्याध्यापकस्यापि संहितां पठतः फलम् । प्रत्यक्षरं तु गायत्रीसङ्ख्यापाठफलं लभेत् ॥११॥
पदपाठे तदर्द्धं स्यात्तदर्द्धं क्रमपाठतः । संहितापाठतो द्विघ्नं गाथापाठफलं स्मृतम् ॥१२॥
ततोऽप्युपनिषत्पाठैर्द्विगुणं फलमीरितम् । पाठे च पाठने तुल्यं फलं वै गुरुशिष्ययोः ॥१३॥
अधीतात्त्रिगुणं तु स्यात्फलं वै कण्ठपाठतः । तदर्द्धं लेख्यपाठात्तु फलमुक्तं मनीषिभिः ॥१४॥
अधीत्यापि न यस्य स्यात्कण्ठपाठसमं फलम् । कृते यत्नेऽपि दैवेन स लभेत्पाठमात्रजम् ॥१५॥
प्रज्ञायामपि सत्यां तु विस्मरेत् पठितां श्रुतिम् । अनास्थया प्रमादेन मृतो गर्दभतां व्रजेत् ॥१६॥
यावद्वेदोत्थवर्णानां पठितानां च विस्मृतिः । तावद्वर्षाणि भुक्त्वा स खरयोनिं ततः परम् ॥१७॥
पाठपुण्यार्जितं लोकं लभते नात्र संशयः । स्वशाखां प्रथमं यस्तु पठन्नाऽन्यां पठेदपि ॥१८॥
प्रत्यक्षरं तु लभते गायत्र्या द्विगुणं फलम् । पठित्वापि स्वकां शाखां संशयं न वेत्ति यः ॥१९॥
रामपूजायुतस्यापि सोऽर्द्धं फलमवाप्नुयात् । वर्जितो रामभक्त्या यः केवलं पाठको भवेत् ॥२०॥
लभेत्फलस्य तुर्यांशं तद्द्वेषान्निष्फलं भवेत् । अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ॥२१॥
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश । आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वं चार्थशास्त्रकम् ॥२२॥

है ॥ ७ ॥ जिस तरह कि संसारमें भूमिदान एक महान् दान माना गया है, विद्यादान उससे भी दसगुना फल देनेवाला होता है ॥ ८ ॥ विष्णुदासने पूछा—हे गुरो ! सुवर्ण अथवा किसी अन्य वस्तुका दान किसको देना चाहिए । ब्राह्मण अथवा किसी इतर जातिका मनुष्य किस तरह पात्रताको प्राप्त होता है, सो हमें बतलाइए ॥ ९ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! जो ब्राह्मण गुरुकुलमें रहता, भिक्षान्न खाता और वेदका अध्ययन करता हुआ पूरी शाखाका अध्ययन कर लेता है, उसे ऊपर बतलायी रीतिके अनुसार फल प्राप्त होता है ॥१०॥ संहिताका अध्ययन करता हुआ ब्राह्मण संहिताके जितने अक्षरोंका पाठ करता है, उसे उतने ही गायत्रीमंत्रोंके जपका फल प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ पदपाठसे उसका आधा क्रमपाठसे उसका भी आधा और गाथाके पाठसे दुगुना फल मिलता है ॥ १२ ॥ गाथापाठसे उपनिषद्के पाठका दुगुना फल प्राप्त होता है । ऊपर बतलाये संहिता आदिके पढ़नेसे शिष्यको जो फल प्राप्त होता है, उतना ही फल पढ़नेवाले गुरुको भी मिलता है ॥ १३ ॥ पुस्तक सामने रखकर अध्ययन करनेकी अपेक्षा कण्ठस्थ पाठ करनेमें तिगुना फल प्राप्त होता है । इसका भी आधा फल उसे प्राप्त होता है, जो लिखी हुई पुस्तकसे पाठ करता है । ऐसा प्राचीन मुनियोंने कहा है ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण विद्याका अध्ययन करके भी उसको कण्ठस्थ करनेका यत्न नहीं करता, उसे केवल पाठ करनेका पुण्य प्राप्त होता है और कुछ नहीं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य बुद्धि रहते हुए भी पढ़ी हुई श्रुतियोंको अनास्थाके कारण भुला देता है वह मरनेके बाद गधेका जन्म पाता है ॥ १६ ॥ पढ़कर भी वेदोंके जितने अक्षर वह ब्राह्मण भुलाता है, उतने दिन तक वह गधेकी योनिमें रहकर पाठके पुण्यसे अर्जित लोकमें जाकर निवास करता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है । अपने वेदकी शाखाका अध्ययन करके जो ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणोंको पढ़ाता है, वह शाखाके प्रत्येक अक्षरसे अर्जित लोकमें जाकर निवास करता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है । अपनी शाखाका अध्ययन करके भी जो यह नहीं जानता कि रामका कितना महत्त्व है । वह रामका पूजन करता हुआ भी पूजनका केवल आधा फल पाता है । जो प्राणी रामकी भक्तिसे रहित केवल अध्यापकमात्र है, वह उस पाठनके चतुर्थांश फलका भागी होता है । जो अध्यापक रामसे द्वेष रखता है, उसका अध्यापन कार्य भी व्यर्थ हो जाता है । चारों वेद, वेदांग, मीमांसा, न्याय, पुराण तथा

उपविद्याश्चतस्रः स्युरेवमष्टादश स्मृताः । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छंदो ज्योतिषम् ॥२३॥
इत्यंगानि तु वेदस्य योऽधीते तत्फलं शृणु । संहितापाठतोऽप्यर्थं लभते पाठतः फलम् ॥२४॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य कल्पः पाणी प्रकीर्तितौ । मुखं व्याकरणं प्रोक्तं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥२५॥
ज्योतिषं नयनं प्राहुश्छन्दः पादाविति स्मृतौ । शिक्षाकल्पनिरुक्तानां छन्दसश्चार्थचिंतने ॥२६॥
सकृद्योगं प्रकुर्वंति फलं तेषां चतुर्गुणम् । भवेत्पाठाच्च तो ज्योतिःशास्त्रार्थज्ञानतः फलम् ॥२७॥
संहितापाठजं पुण्यं गणितज्ञो लभेत्फलम् । ज्योतिषां संहिताज्ञानादर्थं तु लभते फलम् ॥२८॥
जातकप्रश्नयोगेन न किंचित्पुण्यमीरितम् । वेदाध्ययनहीनो यो जातकप्रश्नपारगः ॥२९॥
न वेत्ति गणितं यस्तु ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः । दानं नार्हति विप्रस्तु सर्वकर्मसु गर्हितः ॥३०॥
स्वल्पामपि च स्वां शाखां योऽनधीत्य द्विजाधमः । अंगादिष्वन्यशास्त्रेषु सक्तः स तु विगर्हितः ॥३१॥
किंचिच्छास्त्रमधीत्यापि यश्चोपनिषदः पठेत् । ज्ञानाधिक्याय शास्त्राणां वेदज्ञानार्थमेव सः ॥३२॥
अधीते ज्ञानपात्रं स्यात्पुण्याधिक्येन पूज्यते । यतो विप्रेषु वृद्धत्वं पूज्यत्वं ज्ञानतः स्मृतम् ॥३३॥
ज्ञानाधिक्येषु तेषु स्यात्पात्रापात्रविचारणा । पुण्याधिक्येन वाऽन्येषां पाठकानां च पावित्र्यता ॥३४॥
ज्ञानिपाठकयोर्मध्ये ज्ञानी पुण्याधिको यतः । ततः पूज्यतमस्तस्य मन्ये ज्ञानिनमित्यहम् ॥३५॥
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थं रामः सोऽपि च तान्प्रियः ॥३६॥
परं वादिजये शक्तिर्यस्य स्यात्तद्गतिं पुनः । स एव श्रेष्ठतां याति पाठकानां शतादपि ॥३७॥
वेदादिसर्वविद्यानामर्थज्ञानाय यः पठेत् । शास्त्रं व्याकरणं नाम लभेद्वेदसमं फलम् ॥३८॥
ज्ञानाधिक्येन लभते वेदार्थज्ञानजं फलम् । मीमांसा द्विविधा प्रोक्ता कर्मणो ब्रह्मणस्तथा ॥३९॥

धर्मशास्त्र, ये चौदह विद्यायें हैं । आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व और अर्थशास्त्र ॥ १७-२२ ॥ ये चार उपविद्यायें हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छ वेदके अङ्ग हैं। इनके अध्ययनका जो फल होता है, उसे सुनो। इनका पाठ करनेसे संहितापाठका आधा फल मिलता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ वेदकी नासिका शिक्षा, कल्प दोनों हाथ, मुख व्याकरण, निरुक्त कान, ज्योतिष नेत्र और छन्द (काव्य) पैर हैं। जो शिक्षा, कल्प, निरुक्त तथा छन्द इनका अर्थ समझनेके लिए उद्योग करते हैं, उन्हें वेदपाठका चतुर्गुण फल प्राप्त होता है। वेदका पाठ करनेसे ज्योतिषशास्त्रके अर्थज्ञानका भी फल मिल जाता है ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ गणितको जाननेवाला विद्वान् संहितापाठका पुण्य पाता है। संहिताका ज्ञान रहनेसे ज्योतिष-शास्त्रके अध्ययनका आधा पुण्य मिलता है ॥ २८ ॥ किन्तु ज्योतिषमें भी जो विद्वान् केवल जातकका प्रश्न-मात्र जानता है और वेदाध्ययनविहीन है, उसे कुछ भी पुण्य नहीं होता। वह कोरा जातक प्रश्नका ज्ञाता ही कहा जायगा ॥ २९ ॥ जो ब्राह्मण गणित नहीं जानता, सब कर्मोंमें निन्दित वह विप्र किसी प्रकारका दान लेनेका अधिकारी नहीं कहा जा सकता ॥ ३० ॥ जो ब्राह्मण अपनी वेदशाखाका अध्ययन करके केवल व्याकरण-ज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजाधम भी निन्दित होता है ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण थोड़ा भी अपनी शाखाका अध्ययन करके अपना ज्ञान बढ़ानेके लिए उपनिषद् तथा शास्त्रोंको पढ़ता है, वह वास्तविक ज्ञानपात्र बनकर अधिकसे अधिक पुण्यका भागी होता है। क्योंकि ब्राह्मणोंमें वृद्धत्व या पूज्यत्व ये दोनों गुण ज्ञानसे ही आते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ज्ञानकी मात्राकी अधिकतासे ही उन लोगोंमें पात्र और अपात्रका विचार करना चाहिए। पाठकोंके भी पुण्यकी अधिकता तथा न्यूनतासे ही पात्रापात्रका विचार किया जा सकता है ॥ ३४ ॥ ज्ञानी और पाठक इन दोनोंमें ज्ञानी विशेष पुण्यात्मा समझा जाता है। इसलिये मेरे मतसे तो पाठककी अपेक्षा ज्ञानी अधिक पूज्य है ॥ ३५ ॥ इस संसारमें ज्ञानसे बढ़कर कोई वस्तु पवित्र नहीं है। ज्ञानीको रामचन्द्रजी अतिप्रिय हैं और रामको ज्ञानी प्रिय है ॥ ३६ ॥ किन्तु पाठकोंमें तो यह प्रथा है कि सैकड़ों पाठकोंमेंसे भी वही श्रेष्ठ माना जाता है, जो वादीको अपनी चतुराईसे परास्त कर सके ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य वेद आदिके ज्ञानके लिये व्याकरण आदि शास्त्रोंका अध्ययन करता है, उसे वेदाध्ययनका ही

वेदार्थज्ञानतुल्याया द्वितीयायाः फलं शृणु । प्रत्यक्षरं तु लभते गायत्रीशतजं फलम् ॥४०॥
ये तूपयोगिनः साक्षाद्ग्रन्थास्तेभ्यो भवंति हि । तेऽप्यर्थफलदा ज्ञेया व्यवधानात्तु पादशः ॥४१॥
वेदोपनिषदामर्थे ज्ञानाधिक्याय चेत्पठेत् । प्रदीपं सर्वविद्यानां यो विद्वान्न्यायविस्तरान् ॥४२॥
वेदार्थज्ञानतुल्यं तु फलं तस्य प्रकीर्तितम् । केवलं जीविकार्थं तु यः पठेन्न्यायविस्तरम् ॥४३॥
हेतुवादरतो ब्रह्मजिज्ञासां नैव यः पठेत् । स शृगालो भवेदेव पठिताक्षरसंख्यया ॥४४॥
वर्षाणि नात्र संदेहो वृथामायणतत्परः । पुराणं वैष्णवं मात्स्यं कौर्मं भागवतं तथा ॥४५॥
आदित्यं गारुडं स्कान्दं मार्कण्डेयमथाष्टमम् । ब्रह्मब्रह्मांडलैंग्यानि ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥४६॥
भविष्योत्तरमाग्नेयं पाद्मं वामनमेव च । वाराहं चैव वायव्यं ह्यष्टादशानि वै त्विति ॥४७॥
महापुराणान्येतानि रामायणभवानि हि । रामायणात्पुराणानि व्यासेन खण्डितानि हि ॥४८॥
अतः पुराणं नामाभूदेतेषां जगतीतले । आदौ कृतानि यान्यत्र तेषां ज्येष्ठत्वसूचकः ॥४९॥
महाशब्दः प्रोच्यते हि वैष्णवादिषु पट्त्रिषु । पुराणानां तु सर्वेषां फलं शिष्य ब्रवीम्यहम् ॥५०॥
वेदतुल्यफलं पाठे श्रवणे च तदर्द्धकम् । अर्थश्रवणतश्चास्य पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥५१॥
वक्तुः स्याद्द्विगुणं पुण्यं व्याख्यातुश्च शताधिकम् । अन्यान्युपपुराणानि सति तेषां फलं शृणु ॥५२॥
विष्णुधर्मोत्तरं शैवं बृहन्नारदमेव च । भगवतीपुराणं च लघुनारदमेव च ॥५३॥
भविष्यत्षष्ठषष्ठं स्यात्तन्त्रं भागवतं तथा । अष्टमं नारसिंहं स्यात्पुराणं रेणुकाभिधम् ॥५४॥
दशमं तत्त्वसारं स्याद्वायुप्रोक्तं तथैव च । नंदिप्रोक्तं द्वादशं स्यात्तथा पाशुपताभिधम् ॥५५॥
यमनारदसंवादस्तथा हंसपुराणकम् । विनायकपुराणं च बृहद्ब्रह्मांडमेव च ॥५६॥
पुण्यं विष्णुरहस्यं स्यादिति ह्यष्टादशानि वै । एतान्युपपुराणानि पुराणार्धफलानि च ॥५७॥

फल मिलता है ॥ ३८ ॥ जब ज्ञान बढ़ जाता है तो उसे आपसे आप वेदका अर्थ ज्ञात हो जाता है। मीमांसा-शास्त्रके दो प्रकार हैं। एक कर्मपरक दूसरा ब्रह्मपरक ॥३९॥ इन दोनोंमें पहले अर्थात् कर्मका मार्ग बतलानेवाले मीमांसाका अध्ययन करनेसे वेदाध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है और दूसरे ब्रह्मज्ञापक मीमांसाको पढ़नेसे जो पुण्य होता है, उसे सुनो। उत्तर मीमांसाका अध्ययन करनेवाला प्राणी जितने अक्षरोंको पढ़ता है, प्रत्येक अक्षरसे उसे सौ गायत्रीके जपका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ ऐसे लोग बड़े ही उपयोगी विद्वान् होते हैं और ग्रन्थोंकी उत्पत्ति उन्हीं लोगोंसे होती है ॥४१॥ जो मनुष्य वेदों और उपनिषदोंके अर्थज्ञानार्थ विद्याओंके प्रदीपस्वरूप न्याय-शास्त्र पढ़ते हैं, उन्हें वेदार्थज्ञानके तुल्य फल मिलता है। किन्तु जो केवल जीविकाके लिये न्यायशास्त्रका अध्ययन करता है और केवल हेतुवादमें संलग्न रहकर ब्रह्मजिज्ञासाके निमित्त नहीं पढ़ता। वह झूठा मनुष्य न्यायके जितने अक्षर पढ़े रहता है, उतने ही वर्षों तक शृगाल हो-होकर जन्म लेता है। इसमें कोई संशय नहीं है। अब पुराणोंको गिनाते हैं—वैष्णव, मत्स्य, कूर्म, भागवत, ॥ ४२-४५ ॥ आदित्य, गरुड़, स्कन्द, मार्कण्डेय, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, लिंग, ब्रह्मवैवर्त, भविष्योत्तर, आग्नेय, पद्म, वामन, वाराह और वायु ये अष्टादश महापुराण हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ये सभी महापुराण रामायणसे ही उत्पन्न हुए हैं। किन्तु व्यासजीने रामायण और पुराण इन दोनोंमेंसे बहुतसे अंश काट दिये हैं ॥ ४८ ॥ इसी कारण इनका पुराण यह नाम पड़ा है। सबसे पहले जो पुराण बनाये गये, उनका ज्येष्ठसूचक महाशब्द है। हे शिष्य! अब मैं तुम्हें पुराणोंके पाठका फल सुना रहा हूँ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पुराणोंका पाठ करनेसे वेदपाठका फल मिलता है और उन्हें सुननेमें उससे आधा फल मिला करता है। किन्तु पुराणोंके अर्थका श्रवण करनेमें उससे दसगुना अधिक फल होता है ॥५१॥ वक्ताको दुगुना और व्याख्या करनेवालेको सौगुना पुण्य होता है। इनके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं। अब उनका नाम सुनो— ॥ ५२ ॥ विष्णुधर्मोत्तर, शैव, बृहन्नारद, भगवतीपुराण, लघुनारद, भविष्यत्का छठाँ पर्व, भागवत, नरसिंह, रेणुका ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ दसवाँ तत्त्वसार, वायु द्वारा कहा हुआ ग्यारहवाँ, नंदी द्वारा कहा हुआ बारहवाँ, पाशुपत, मय और नारदका सम्वाद, हंसपुराण, विनायकपुराण, बृहद्ब्रह्मांड और पवित्र

भारतं वेदतुल्यं स्यादर्थतोऽधिकमुच्यते । तत्रापि भगवद्गीता विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥५८॥
दशाधिकफलं प्रोक्तं भारतादपि सर्वशः । श्रोताऽर्धं फलमाप्नोति भक्तितः शृणुयात्तु यः ॥५९॥
भारतं त्विदितिहासश्च रामायणसमुद्भवम् । यद्वेदपाठपुण्यं तज्ज्ञेयं रामायणस्य च ॥६०॥
पाठात्तदर्द्धं श्रवणे व्याख्यातुश्च दशाधिकम् । वाल्मीकिना कृतं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥६१॥
तत्सर्वेषामादिभूतं महामंगलकारकम् । रामायणादेव नाना संति रामायणानि हि ॥६२॥
शेषभूतं चतुर्विंशत्सहस्रं प्रथमं स्मृतम् । तथा च योगवासिष्ठमध्यात्माख्यं तथास्मृतम्॥६३॥
वायुपुत्रकृतं चापि नारदोक्तं तथा पुनः । लघुरामायणं चैव बृहद्रामायणं तथा ॥६४॥
अगस्त्युक्तं महाश्रेष्ठं साररामायणं तथा । देहरामायणं चापि वृत्तरामायणं पुनः ॥६५॥
ब्रह्मरामायणं रम्यं भारद्वाजं तथैव च । शिवरामायणं क्रौंचं भारतस्य च जैमिनेः ॥६६॥
आत्मधर्मं श्वेतकेतुऋषेश्चैव जटायुषः ॥६७॥
रवेः पुलस्तेर्देव्याश्च गुह्यकं मंगलं तथा । गाधिजं च सुतीक्ष्णं च सुग्रीवं च विभीषणम् ॥६८॥
तथाऽऽनंदरामायणमेतन्मंगलकारकम् । एवं सहस्रशः संति श्रीरामचरितानि हि ॥६९॥
कः समर्थोऽस्ति तेषां हि संख्यां वक्तुं सविस्तरात् ।
शतकोटिमितादेव विभक्तानि पृथक् पृथक् ॥७०॥
सर्वेष्वप्यानंदसंज्ञं वरिष्ठं प्रोच्यते त्विदम् । अस्य पाठेन यत्पुण्यं तत्ते शिष्य वदाम्यम् ॥७१॥
शतकोटिमितं श्रुत्वा यत्फलं लभ्यते नरैः । फलमस्य तदर्द्धं हि ज्ञेयं शिष्य शुभप्रदम् ॥७२॥
श्रवणाद्द्विगुणं पाठे व्याख्यातुश्च दशाधिकम् । तस्मादेतत्सदाऽऽनंदसंज्ञं श्राव्यं नरोत्तमैः ॥७३॥
नानेन सदृशं किंचिद्भूतं नाग्रे भविष्यति । सर्वेष्वपि च शास्त्रेषु पाञ्चरात्रागमोऽधिकः ॥७४॥

विष्णुरहस्य ये अष्टादश उपपुराण हुए । इनका पाठ करनेसे पुराणपाठका आधा फल मिलता है ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ महाभारत तो साक्षात् वेदके समान है । उसमें कही हुई भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम ये दोनों महाभारतसे भी दसगुना अधिक फल देते हैं । जो श्रोता भक्तिपूर्वक उन्हें सुनता है, वह आधा फल पाता है । महाभारत रामायणसे ही निकला हुआ इतिहास है । वेदके पाठसे जो पुण्य होता है, वही फल रामायणके पाठमें है ॥ ५८-६० ॥ मूल-मूल पाठ करनेसे आधा पुण्य मिलता है और व्याख्या करनेसे दसगुना अधिक फल प्राप्त होता है । सौ करोड़ श्लोकोंके विस्तारमें वाल्मीकिने जिस रामायणकी रचना की है, वह सब रामायणोंका मूल और महामङ्गलकारक है । उस रामायणसे ही विविध प्रकारकी रामायणोंकी रचना हुई है ॥ ६१ ॥ उसीके परिशिष्ट अंशसे बनी और वर्तमान समयमें चलती हुई चौबीस हजार श्लोकोंवाली वाल्मीकिरामायण, योगवासिष्ठ, अध्यात्मरामायण, वायुपुत्र (हनुमान्‌जी) की रामायण, नारदरामायण, लघुरामायण, बृहद्रामायण, अगस्त्यजीकी बनायी महाश्रेष्ठ साररामायण, देहरामायण, वृत्तरामायण, भारद्वाजरामायण, शिवरामायण, क्रौंचरामायण, भरतरामायण, जैमिनिरामायण आदि बहुतेरी रामायणें हैं ॥ ६२-६६ ॥ इनके अतिरिक्त आत्मधर्मकी, जटायुकी, श्वेतकेतु ऋषिकी, पुलस्त्यकी, देवीजीकी, विश्वामित्रकी, सुतीक्ष्णकी, सुग्रीवकी, विभीषणकी और यह मङ्गलमय आनन्दरामायण, इस तरह रामचरित्रका वर्णन करनेवाली हजारों रामायणें बनी हैं ॥ ६७-६९ ॥ उन सबकी सविस्तार संख्या बतलानेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता । वाल्मीकिजीके सौ करोड़ श्लोकात्मक रामायणसे ही इन सबका निर्माण हुआ है ॥ ७० ॥ किन्तु ऊपर गिनायी हुई सब रामायणोंमें यह आनन्दरामायण ही श्रेष्ठ है । ऐसा लोगोंने कहा है । इसके पढ़नेसे क्या पुण्य होता है, सो हे शिष्य ! मैं तुमको इसका माहात्म्य बतला रहा हूँ ॥ ७१ ॥ पूर्वोक्त शतकोटिसंख्यात्मक वाल्मीकिरामायणके सुननेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका आधा पुण्य इस आनन्दरामायणके पाठसे होता है । इसको सुननेसे दुगुना और व्याख्या करनेसे दसगुना पुण्य होता है । इस कारण लोगोंको चाहिए कि इस आनन्दरामायणका श्रवण करें ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इसके सदृश पवित्र कोई ग्रन्थ न अबतक हुआ है और न

भगवद्गीतया तुल्यं फलं तस्याखिलस्य च । भारतीयकथाबंधं सद्भक्तैरेव निर्मितम् ॥७५॥
तत्काव्यं यः पठेत्प्राज्ञो दशांशं फलमाप्नुयात् । सद्भक्तैर्निर्मितं तत्तु शतांशफलदं स्मृतम् ॥७६॥
यः करोति स्वयं काव्यं कल्पयित्वा स्वयंकथाम्। तच्छ्रमो व्यर्थतामेति तदध्येता च दोषभाक् ॥७७॥
पौराणीं भारतीं वापि तथा रामायणस्थिताम् । तथा ह्युपपुराणस्थां कथां ग्रथति यः स्वयम् ॥७८॥
रामभक्तोऽपि लभते शक्रलोकाधिवासताम् । प्रत्यक्षरं वर्षमेकं वासस्तस्य भवेद्ध्रुवम् ॥७९॥
रामभक्तः पुराणेभ्यः कथां ग्रथति यः पुनः । व्यासमूर्तिः स लभते बृहस्पतिसलोकताम् ॥८०॥
दौहित्रपोषितः शिष्य आरामश्च जलाशयः । सद्ग्रन्थकरणं पुत्रः ते पुत्रा वै प्रकीर्तिताः ॥८१॥
एवं भूम्यामंशभूतैर्नरैस्ते विचरंति हि । अश्वत्थामादयः सप्त ये चिरंजीविनः सदा ॥८२॥
अतः श्रीरामभक्तैश्च कवित्वैस्तत्स्तुतिः कृता । सापि मान्या सदा श्राव्या पठनीया बुधैर्मुहुः ॥८३॥
भारताच्च शतांशेन फलदात्री स्मृताऽत्र हि । निंदंति ये भक्तकृतां कवितां ते खराः स्मृताः ॥८४॥
तत्तद्भाषाकृतं काव्यं रामवर्णनसंयुतम् । भारतस्य सहस्रांशं श्रोतुर्वक्तुः फलं स्मृतम् ॥८५॥
निर्मातुस्तु भवेत्पुण्यं साधुशब्दशतांशतः । गीर्वाणीकविताकर्ता सोऽपि व्यासांश ईरितः॥८६॥
स्वस्वभाषाकवित्वानां कर्तारस्ते कवीश्वराः । गीर्वाणीकविता चापि पदान्वयसमन्विता ॥८७॥
अर्थप्रमाणसहिता सैव मान्या न चेतरा । नरस्तुतिं तु यः कुर्याज्जीविकार्थं कविः क्वचित् ॥८८॥
निष्फलस्तच्छ्रमः प्रोक्तस्तदध्येता च दोषभाक् । उन्मादेन तु यः कुर्यात्कामिनीनां तु वर्णनम् ॥८९॥
स हि श्वयोनिं प्राप्नोति वर्षाण्यक्षरसंख्यया । वेदोक्तार्थानुसारेण मन्वाद्याः स्मारकाः स्मृता॥९०॥

भविष्यमें होगा । सब शास्त्रोंसे पाञ्चरात्रके आगमको विशेष महत्त्व दिया गया है। उसका पाठ करनेसे भगवद्गीता-पाठके तुल्य फल प्राप्त होता है । महाभारतके कथानकोंको और जिनको अच्छे-अच्छे भगवद्भक्तोंने बनाया है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उन काव्योंको जो मनुष्य पढ़ता है, उसे रामायणके पाठका दशांश पुण्य प्राप्त होता है । अन्य भक्तोंके बनाये काव्योंका अध्ययन करनेसे शतांश फल मिलता है ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य कथाकी कल्पना करके स्वयं काव्य बनाता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है और उसका पाठ करनेवाला भी दोषका भागी बनता है ॥ ७७ ॥ जो कवि पुराणोंमें, महाभारतमें, रामायणमें तथा उपपुराणोंमें लिखी हुई कथाओंका संग्रह करता है। वह रामभक्त होकर इन्द्रलोकमें निवास करता है । वह प्राणी जितने अक्षरोंको लिखे रहता है, उतने ही वर्षतक इन्द्रलोकमें रहता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो रामभक्त पुराणोंसे कथाओंका संग्रह करता है, वह साक्षात् व्यासदेवके समान पूज्य होता हुआ बृहस्पतिके लोकमें निवास करता है ॥ ८० ॥ अपनी लड़कीका लड़का, पोष्य पुत्र, शिष्य, बगीचा, तालाब तथा सद्ग्रन्थकी रचना, अपना निजी पुत्र, इतने सत्पुत्र माने गये हैं ॥ ८१ ॥ वे लोग अंशभूत मनुष्यों अर्थात् अश्वत्थामा आदि जो सात चिरंजीवी बतलाये गये हैं, उनके साथ पृथ्वीमंडलपर विचरते हैं ॥ ८२ ॥ अतएव बहुतेरे रामभक्तोंने अपनी कवितामें श्रीरामकी स्तुति की है। इसलिए लोग उनकी भी कविताओंका आदर करें, बारम्बार सुनें और पढ़ें ॥ ८३ ॥ रामभक्तोंकी कविता महाभारतका शतांश फल देनेवाली होती है । जो लोग किसी रामभक्तकी बनायी कविताका निरादर करते हैं, वे एक प्रकारके गधे हैं ॥ ८४ ॥ संस्कृतभाषाके अतिरिक्त और-और भाषाओंमें रामके चरित्रवर्णन युक्त कवितायें श्रोता-वक्ताको महाभारतके सहस्र अंशका फल देनेवाली होती हैं ॥ ८५ ॥ अच्छे शब्दोंमें की हुई कविता कविको शतांश फल देती है । संस्कृतमें कविता करनेवाला प्राणी व्यास-का अंश होता है ॥ ८६ ॥ अपनी-अपनी भाषामें कविता करनेवाले कवीश्वर अथवा संस्कृतमें रचना करने-वाले कवियोंमेंसे जिनकी कविता पद और अन्वय संयुक्त हो, जिसमें अर्थ तथा प्रमाण दोनों विद्यमान हों, वे ही मान्य हैं, और नहीं । जो कवि अपने स्वार्थके लिए किसी मनुष्यकी स्तुतिमयी कविता करता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है अन्य उसका अध्ययन करनेवाला प्राणी भी दोषका भागी बनता है। जो कवि उन्मादवश स्त्रियोंका वर्णन करता है, वह कवितामें लिखे हुए जितने अक्षर हैं, उतने वर्षतक श्वानकी योनिमें

तेषां वै स्मृतयो नाम नानाधर्मप्रवर्तकाः । तत्र केचिद्वैदिकेषु कर्मस्वधिकृताः परे ॥९१॥
अवैदिकेषु मन्त्रेषु केचित्पशुसमाः स्मृताः । अवैदिकेऽपि प्रोक्तो नाधिकारो भवेन्नृणाम् ॥९२॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तथा । प्रोक्ता ह्याश्रमिणस्त्रेधा भिन्नधर्माण एव च ॥९३॥
कदा कुत्र कथं कर्म केन कार्यमिति स्फुटम् । धर्मशास्त्रं तु निर्णीतमन्यथा दोषभाग्भवेत् ॥९४॥
अदेशे यत्कृतं व्यङ्गप्रकालेनाधिकारिणा । प्रत्येकं तद्भवेद्व्यर्थं प्रत्यवायोऽधिको भवेत् ॥९५॥
तस्मादावश्यकं तत्तु विप्राणां च विशेषतः । स्मृत्यर्थं ज्ञानतो वापि वेदार्थज्ञानतोऽधिकम् ॥९६॥
ऋग्वेदस्योपवेदः स्यादायुर्वेदो हि वैदिकः । परेषामुपकाराय स्वस्यारोग्यार्थमेव वा ॥९७॥
जीविकार्थमप्यसौ हि पठितव्यो द्विजातिभिः । ब्राह्मणं रोगिणं क्षीणमुपचारेण जीवयेत् ॥९८॥
ब्रह्महत्याभवं पापं तस्य नश्यति वै ध्रुवम् । यतः स लभते पुण्यं चतुःकृच्छ्रसमुद्भवम् ॥९९॥
एवं पुण्यं भवेत्तस्य तत्तद्वर्णानुसारतः । यत्ने कृतेऽपि यो रोगी न जीवत्यायुषः क्षयात् ॥१००॥
सोऽप्यर्धफलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा । जीविकार्थं तु यः कुर्यादुपविद्याचतुष्टयम् ॥१०१॥
इह लोके फलं तस्य परलोके न किञ्चन । नरं रोगार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवः ॥१०२॥
कस्तेन न कृतो धर्मः कां वा पूजां न सोऽर्हति । गतश्रीर्गणकान् द्वेष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् ॥१०३॥
गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान् द्वेष्टि मूढधीः । गांधर्वमप्यधीयीत रामाग्रे यश्च गायति ॥१०४॥
तद्भक्तियुक्तो लभते गांधर्वं लोकमुत्तमम् । धनुर्वेदो दंडनीतिर्ब्राह्मणानां तु जीविका ॥१०५॥
क्षत्रियाणां तु सा प्रोक्ता वेदार्थफलप्रदा । ज्ञातिष्वेतेषु सर्वेषु पुण्यं ज्ञानानुसारतः ॥१०६॥

रहता है। वेदोक्त अर्थोंके अनुसार मन्वादि स्मृतियाँ बनी हैं। जिनसे विविध प्रकारके धर्मोंका आविष्कार हुआ है। उनमेंसे कुछ धर्मवाले वैदिक कर्मोंके अधिकारी हैं। कुछ वेदविहीन मन्त्रोंसे सब कर्म करते हैं और कुछ बिल्कुल पशुकी तरह अपना जीवन बिताते हैं। उन लोगोंको अवैदिक कर्म करनेका भी अधिकार नहीं दिया गया है ॥ ८७-९२ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी ये भिन्न-भिन्न मिश्रित धर्म माने गये हैं ॥ ९३ ॥ कब कहाँ और कैसा कर्म करना चाहिये, ये सब बातें धर्मशास्त्रसे ही निर्णीत की जा सकती हैं। यदि उनसे निर्णय किये बिना कोई कर्म किया जाता है तो दोषका भागी बनना पड़ता है ॥ ९४ ॥ जो कर्म अदेशमें, अङ्गरहित, बिना समयके अथवा अनधिकारी व्यक्ति द्वारा किया जाता है, वह सब व्यर्थ होता है और पुण्यके स्थानमें पाप ही होता है ॥ ९५ ॥ इसलिये कर्मोंके विषयमें धर्मशास्त्रसे निर्णय कर लेना आवश्यक है। तिसमें भी ब्राह्मणोंको तो अवश्य ऐसा कर लेना चाहिए। अपने ज्ञानकी अपेक्षा स्मृतिकी आज्ञा और स्मृतिसे भी वेदकी आज्ञा विशेष माननीय है ॥ ९६ ॥ ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद है। उसे परोपकारके लिए अथवा अपनी आरोग्यताके लिये या जीविकाके लिए भी द्विजातियोंको अवश्य पढ़ना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण रोगी होनेके कारण दुर्बल हो गया हो तो उसे दवा देकर भला-चङ्गा कर देना चाहिये ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ऐसा करनेसे दवा देनेवालेके ब्रह्महत्या सदृश पातक भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं। साथ ही उसे चार कृच्छ्र चान्द्रायण व्रतके पुण्यकी प्राप्ति होती है ॥ ९९ ॥ इस तरह पृथक्-पृथक् वर्णोंके अनुसार पुण्य होता है। यदि यत्न करनेपर भी कोई रोगी आयु पूरी हो जानेके कारण न बच सके तो भी दवा देनेवालेको आधा पुण्य होता ही है। इसमें किसी प्रकारका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो मनुष्य अपनी जीविका चलानेके लिए चारों उपविद्याओंका उपयोग करता है, उसे इस लोकमें अवश्य फल मिलता है, किन्तु परलोकमें कुछ भी नहीं मिलता। जो मनुष्य रोगरूपी समुद्रमें डूबे हुए किसी मनुष्यका उद्धार करता है ॥ १०० ॥ १०२ ॥ उसने कौन-सा धर्म नहीं कर लिया और कौन-सी पूजा नहीं की। अर्थात् उसने सब कुछ कर लिया। जिस प्राणीकी श्री नष्ट हो जाती है, वह ज्योतिषियोंसे द्वेष करता है। जिसकी आयु क्षीण हो जाती है, वह वैद्योंसे द्वेष करता है। गतश्री एवं गतायु ये दोनों प्राणी ब्राह्मणोंसे द्वेष किया करते हैं। जो मनुष्य गन्धर्वविद्या (संगीत) का अध्ययन करके रामचन्द्रजीके सम्मुख गाता है, उसे उत्तम गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है।

विवेकस्तस्य कर्तव्यो द्रव्यदाने विशेषतः । अन्नस्य क्षुधितः पात्रं पानीयस्य पिपासितः ॥१०७॥
द्रव्यदाने तु कर्तव्यं विशेषात्पात्रवीक्षणम् । खलायां गवि दुग्धं स्याद्दुग्धमप्युरगे विषम् ॥१०८॥
पात्रापात्रविचारेण सत्पात्रे दानमुत्तमम् । यथा पुण्याधिकं पात्रं तथा दानं फलाधिकम् ॥१०९॥
ज्ञानाधिक्याद्भवेत्पुण्याधिक्यात्पात्रं श्रमेण वा। रामभक्तश्च पात्रं स्याद्रामभक्तो न सर्वथा ॥११०॥
रामद्वेषी वर्जनीयो दर्शनालापनादिषु । संगतश्च भवेत्पूतस्तद्भक्तानां तु नान्यथा ॥१११॥
यच्छक्तेरधिकं दद्यात्तद्दानं परिकीर्तितम् । वित्तशाठ्येन यद्दानं न तद्दानं स्मृतं बुधैः ॥११२॥
देशकालविशेषेण तत्तत्पात्रविशेषतः । दानस्य फलमुद्दिष्टमधिकं न्यूनमेव च ॥११३॥
विप्रशुल्कं तु यो मूढो न दद्याच्छक्तिसंभवम् । विष्ठाक्रिमिर्भवेदेव सुवर्णैरेव संख्यया ॥११४॥
दिव्यवर्षाणि नैवात्र त्वया कार्यस्तु संशयः । यत्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पुण्यदायकम् ॥११५॥
अधिकं तत्फलं प्रोक्तमज्ञानिकृतकर्मणः । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पापहानिस्तथा तथा ॥११६॥
यत्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पापकारकम् । तन्न्यूनफलदं प्रोक्तमज्ञानिकृतपातकात् ॥११७॥
यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पापहानिस्तथा तथा । यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥११८॥
ज्ञानाग्निर्दुष्टकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा । वर्णाधिक्यं यथा हेम्नो वह्निसंगेन जायते ॥११९॥
पुण्याधिकं तथा शिष्य ज्ञानिसंगेन जायते । पुण्येन वर्द्धते पुण्यं पापं स्वल्पं च जायते ॥१२०॥
पापेन पापवृद्धिश्च पुण्यं स्वल्पं च जायते । अतिसूक्ष्मो विचारोऽयं दुर्ज्ञेयः स्थूलदृष्टिभिः ॥१२१॥
तथाप्येवं विचार्यं स्यात्तत्त्वज्ञानानुसारतः । यस्तु सत्यधिकारेऽपि ज्ञाने वा पठनेऽपि वा ॥१२२॥

धनुर्वेद और दण्डनीति, ये दोनों ब्राह्मणोंकी जीविकायें हैं ॥ १०३-१०५ ॥ किन्तु क्षत्रियोंको वे वेदपाठका फल देती हैं। ऊपर बतलायी हुई सब जातियोंमें ज्ञानके अनुसार ही पुण्य होता है। इसलिये लोगोंको चाहिए कि विशेष करके द्रव्यदानके विषयमें विचार करें। भूखेको अन्नदान और प्यासेको पानी पिलाना श्रेष्ठ धर्म है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ द्रव्यदान देते समय पात्रका विचार करना आवश्यक है। क्योंकि दुष्ट गौमें भी दूध होता है और सर्पके पेटमें पहुँच जानेपर दूध भी विष बन जाता है ॥ १०८ ॥ इस तरह पात्र और अपात्रका विचार करके सत्पात्रमें दान देना अच्छा है। दानका पात्र जितना ही अच्छा होगा, उतना ही अधिक पुण्य होगा ॥ १०९ ॥ इस पात्र और अपात्रका विचार, ज्ञानकी अधिकता, पुण्यकी अधिकता तथा परिश्रमकी अधिकता देखकर किया जाता है। जो मनुष्य रामका भक्त है, वही पात्र है और जो रामभक्तिसे रहित है, उसीको अपात्र जानना चाहिए। जो मनुष्य रामसे द्वेष रखता हो, उसका दर्शन और उससे सम्भाषण आदि कदापि न करे। जो रामके भक्तोंका साथ करता है, वह अपवित्र मनुष्य भी पवित्र हो जाता है ॥ ११० ॥ १११ ॥ अपनी शक्तिसे अधिक जो दान दिया जाता है, वही दान दान है और कंजूसीके साथ जो दान दिया जाता है, वह दान दान नहीं है ॥ ११२ ॥ देश-काल एवं पात्र अपात्रकी विशेषताके अनुसार अधिक या न्यून फल कहा गया है ॥ ११३ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणको पारिश्रमिक नहीं देता, वह उन पैसोंकी संख्याके अनुसार दिव्य वर्षों तक विष्ठाका क्रिमि बना रहता है। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिये। ज्ञानवान् मनुष्य जिन पवित्र कर्मोंको करता है, अज्ञानियोंकी अपेक्षा उसे अधिक फल मिलता है। जैसे-जैसे ज्ञानकी मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसके पाप नष्ट होते जाते हैं ॥ ११४-११६ ॥ ज्ञानी मनुष्य यदि कोई पाप करता है तो अज्ञानियों द्वारा किये पातकोंकी अपेक्षा उसे पापका भी न्यून ही कुफल मिलता है ॥ ११७ ॥ जैसे-जैसे ज्ञान होता जाता है, वैसे-वैसे पाप अपने आप नष्ट होते जाते हैं। जिस तरह जलती हुई अग्नि लकड़ियोंको जलाती है, उसी तरह ज्ञानाग्नि समस्त कर्मोंको भस्म कर डालती है। जिस तरह अग्निके संयोगसे कंचनकी कान्ति अधिक हो जाती है, उसी तरह ज्ञानियोंका सङ्ग करनेसे पुण्यकी मात्रा बढ़ती जाती है। पुण्यसे पुण्य बढ़ता है और पाप कम होता जाता है ॥ ११८-१२० ॥ पापसे पापकी वृद्धि होती है और पुण्य कम होता जाता है। यह बड़ा ही सूक्ष्म विचार है और स्थूलदृष्टिवालोंके लिए तो और

प्रयत्नं नैव कुर्वीत स नरो जायते पशुः । ज्ञानाद्वाऽध्ययनाद्वापि पुण्यं विप्रस्य वर्धते ॥१२३॥
इति संक्षेपतः प्रोक्तमेतत्पृष्टं त्वयाऽनघ । उभयं चाऽनुसृत्यैव पुण्यं पापमथापि वा ॥१२४॥
धर्मास्तु बहवः संति तथा पापान्यनेकशः । तत्र तत्रोदितान्येव प्रायश्चित्तानि वै बुधैः ॥१२५॥
कर्तव्यानि जनैस्तानि सम्यग्बुद्ध्याविचिन्त्य च । सर्वसारमिदं प्रोक्तं रहस्यं पुरतस्तव ॥१२६॥
ग्रहणीयं प्रयत्नेन न ह्यभक्ताय दीयताम् । शुश्रूषवे साधवे च रामभक्ताय दीयताम् ॥१२७॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मनोहरकाण्डे सर्वेषां वेदादीनां फलश्रुतिर्नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामकी विशेषकालकी पूजा)

विष्णुदास उवाच

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य विशेषेण च पूजनम् । यस्मिन्काले प्रकर्तव्यं तं कालं कथयस्व माम् ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि कालं पुण्यतमं शुभम् । वदामि रामचन्द्रस्य पूजनार्थं विशेषतः ॥ २ ॥
माघस्य शुक्लपक्षस्य या पुण्या पञ्चमी तिथिः । पुण्या श्रीपञ्चमीनाम्नी सा ख्याताऽस्ति जगत्त्रये ॥३॥
तदारभ्य सार्धमासद्वयं रामं महोत्सवैः । पूजयेत्पञ्चमीं यावद्वैशाखे कृष्णपक्षजाम् ॥ ४ ॥
माघकृष्णचतुर्थ्याश्च नवमी मधुशुक्लजा । यावत्तावत्फलाहारो चैत्राशीति दिनानि हि ॥ ५ ॥
सीतारामस्य नित्यं हि केचित्कुर्वन्ति पूजनम् । पौर्णिमांताः स्मृताश्चात्र मासाः सर्वत्र भो द्विज ॥ ६ ॥
प्रत्यहं वाहनारूढं कृत्वा रामं महोत्सवैः । भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्महावाद्यपुरःसरैः ॥ ७ ॥

भी कठिन है ॥ १२१ ॥ यह सब होते हुए भी तत्त्वज्ञानके अनुसार इसपर विचार करना ही चाहिए। जो मनुष्य अधिकारी होता हुआ भी ज्ञानके लिए प्रयत्न नहीं करता, वह पशुयोनिमें जन्म पाता है। ज्ञान अथवा अध्ययनसे विप्रका पुण्य बढ़ता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ हे अनघ ! तुमने जो कुछ पूछा, मैंने उसे संक्षेपमें कह सुनाया। लोगोंको चाहिए कि इसके अनुसार पाप और पुण्यका निर्णय कर लिया करें ॥ १२४ ॥ पुण्य और पाप ये दोनों बहुत प्रकारके हैं। पण्डितोंने समय-समयपर पापके प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ १२५ ॥ लोगोंको चाहिए, कि उनको अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह विचारकर करें। सब धर्मोंका सार एवं रहस्य मैंने तुम्हारे आगे कह सुनाया। इसे यत्नके साथ ग्रहण करना चाहिए। इसे भक्तिविहीन प्राणीको न देकर उसे देना चाहिए जो शुश्रूषु, साधु एवं रामभक्त हो ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्द-रामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीका विशेष पूजन किस समय करना चाहिए। वह समय आप मुझे बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! सुनो, मैं तुम्हें रामकी पूजाका परम पुनीत समय बतलाता हूँ। रामचन्द्रजीका पूजन करनेके लिये वह समय बहुत ही उपयोगी होता है। माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि बड़ी ही पवित्र तिथि है। श्रीपञ्चमी उसका नाम है। इसी नामसे वह तीनों लोकमें विख्यात है ॥ २ ॥ ३ ॥ तबसे लेकर जबतक वैशाखके कृष्णपक्षकी पञ्चमी न आ जाय अर्थात् ढाई महीनेतक महान् उत्सवोंके साथ रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ ४ ॥ माघके कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे चैत्रके शुक्लपक्षकी नवमी तक अर्थात् इक्यासी दिन केवल फलाहार करके रहे ॥ ५ ॥ जो लोग नित्य सीतारामका पूजन करते हैं, उनके लिए पूर्णिमान्त ही माना जाता है ॥ ६ ॥ प्रतिदिन वाहनपर बैठे हुए रामको भेरी-दुन्दुभी आदि बाजे-गाजे, वेश्याओंके नृत्य, छत्र, चमर, तोरण, विविध प्रकारकी पुष्पवर्षा, नाना प्रकारके स्तोत्र-पाठ, तरह-तरहके सुगन्धित

वारस्त्रीणां नृत्यगीतैश्छत्रचामरतोरणैः । नानाकुसुमवर्षाद्यैर्नानास्तोत्रादिपाठनैः ॥८॥
नानापरिमलद्रव्याञ्जलीनां मोचनादिभिः । नानामांगल्यवस्तूनामंजलीभिः सुशोभनैः ॥९॥
नानाकुसुमरंगानां तैलानां च परस्परम् । रामं च वारनार्यश्च जलयन्त्रैः करे धृतैः ॥१०॥
मुहुर्मुहुः सिंचनाद्यैस्तथा स्त्रीणां सुगायनैः । द्विजानां वेदघोषैश्च धूपैर्नीराजनादिभिः ॥११॥
सहकाराराममध्ये नीत्वैवं परमोत्सवैः । सहकारवृक्षबद्धदोलके तं निवेशयेत् ॥१२॥
नागेन वा पुष्पकेण शेषयानेन वाजिना । रथेन गरुडेनापि तथा सिंहासनेन च ॥१३॥
तथा शिविकया वापि वायुपुत्रेण वा तथा । यानैर्नवभिरेतैश्च सदा नेयो रघूत्तमः ॥१४॥
आम्रवृक्षाराममध्ये वल्लीपुष्पनगान्विते । अवनिं चन्दनैर्लिप्त्वा विकीर्य कुसुमानि च ॥१५॥
आच्छाद्य नानावस्त्रैश्च शोभनीयाऽवनिः शुभा । हेमसिंहासनस्यैव कृत्वा दोलकमुत्तमम् ॥१६॥
चूतवृक्षस्य शाखायां तं बद्ध्वा शृंखलादिभिः । तत्र श्रीरामतोभद्रे रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥१७॥
नानानवविधैः पुष्पैः षोडशैरुपचारकैः । संपूज्य सीतया बधुसुग्रीवाद्यैः समन्वितम् ॥१८॥
आंदोलयेद्दोलकं तं शिशुबालकवच्छनैः । नर्तितव्या वारवेश्यास्तदाऽग्रे शतशो मुदा ॥१९॥
गायनीया गायकाश्च नर्तितव्या नटादयः । वादनीयानि वाद्यानि ज्वालनीयाः सुधूपकाः ॥२०॥
वीजनीयश्चामराद्यैः सीतया रघुनन्दनः । तद्दासैः कीर्तनान्येव कारयित्वा महोत्सवैः ॥२१॥
पुनः पूज्य पूर्ववच्च समानीतो गृहं प्रति । संपूजनीयः श्रीरामः कुंभदीपार्तिकादिभिः ॥२२॥
एवं नित्यं सार्धमासद्वय रामं प्रपूजयेत् । चूतवृक्षतले नीत्वा पूजयेच्च सविस्तरम् ॥२३॥
यदा रामश्च सीता च बहिर्नेया निजगृहात् । तदा तयोर्नयनाधः कस्तुर्यांगुलिनाऽसिताः ॥२४॥
देयाश्च बिंदवो यत्नात्परदुर्दृष्टिनाशनाः । एवं दोलापूजनं च शिष्य ते कथितं मया ॥२५॥
विशेषं शृणु तत्रापि कथ्यते यो मयाऽधुना । वसंतपूजनात्पूर्वदिवसे गणनायकम् ॥२६॥
माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूजयेद्विघ्ननाशनम् । माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः ॥२७॥

द्रव्योंका अंजलीदान, विविध प्रकारके पुष्पोंके रङ्गों तथा तैलोंसे परस्पर वेश्याओंके पिचकारी छोड़ने, स्त्रियोंके सुन्दर गायन, ब्राह्मणोंके वेदघोष, धूप, नीराजन आदि करता हुआ आमके बगीचेमें ले जाय और वहाँ भगवानको आम्रवृक्षमे पड़े हिंडोलेपर बिठाले ॥ ७—१२ ॥ हाथीसे, पुष्पकसे, शेषकी सवारीसे, घोड़ेसे, रथसे, गरुडसे, सिंहासनसे, शिबिका द्वारा तथा वायुपुत्र द्वारा, इन नौ सवारियोंपर रामको ले जाना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ आम्रवृक्षके बगीचे जिसमें कि वल्लरियों तथा पुष्पोंके वृक्ष लगे हों, पृथ्वीको चन्दनसे लीपकर फूल बिखेरे ॥ १५ ॥ नाना प्रकारके वस्त्रोंसे ढाँककर उस पृथ्वीका शृंगार करे । सुवर्णका सिंहासन बनाकर शृंखला आदिके द्वारा आमके वृक्षमे झूला डालकर रामको बिठाले और सर्वतोभद्र बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विविध तथा नौ प्रकारके फूलों एवं षोडश उपचारोंसे सीता, बन्धु तथा सुग्रीव आदि मित्रोंके साथ भगवान्‌का पूजन करके बच्चोंकी तरह उस झूलेको धीरे-धीरे रस्सी खींचकर झुलाये । उनके आगे सैकड़ों वेश्यायें नचायें, गायकोंसे गाने गवाये, नटोंसे नृत्य कराये, विविध प्रकारके बाजे बजवाये और नाना प्रकारके धूप-दीप आदि जलाये ॥ १८–२० ॥ सीता तथा रामपर चमर आदि हाँके और रामभक्तोंको बुलाकर कीर्तन आदि कराये ॥ २१ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार फिर पूजन करके रामचन्द्रजीको घरपर ले आये । घर पहुँचनेके बाद भी कलश, दीप तथा आरती आदिसे रामकी पूजा करे ॥ २२ ॥ इस तरह प्रतिदिन ढाई महीने तक आम्रवृक्षके नीचे भगवान् रामका पूजन करे ॥ २३ ॥ जब राम और सीताको घरसे बाहर लाना हो तो उनकी आँखोंके नीचे कस्तूरीकी काली बिन्दी लगा दे ॥ २४ ॥ इसको लगानेसे लोगोंकी दुर्दृष्टि उनपर नहीं पड़ेगी । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दोलापूजनका प्रकार बतलाया ॥ २५ ॥ इसमें भी जो

ये ढुंढिं पूजयिष्यंति तेऽर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम् । माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन्काल उपोषितः ॥२८॥
अर्चयित्वा विघ्नराजं जागरं तत्र कारयेत् । चतुर्थी कुन्दनाम्नीयं कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥२९॥
माघशुक्लपंचमी सा ज्ञेया श्रीपंचमी शुभा । तस्यां तिथौ रमानाथं रामचन्द्रं श्रियाऽर्चयेत् ॥३०॥
माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रिया । पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात्समृद्धये ॥३१॥
नीत्वा रामं चूतवृक्षतले दोलकसंस्थितम् । सीतारामं पूजयेच्च गेहे वाऽथ प्रपूजयेत् ॥३२॥
प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ । कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥३३॥
वंदयेद्धोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशांतये । वंदिताऽसि सुरेंद्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ॥३४॥
अतस्त्वं पाहि मां देवि भूते भूतिप्रदा भव । चैत्रे मासि महापुण्ये पुण्ये तु प्रतिपद्दिने ॥३५॥
यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः । न तस्य दुरितं किंचिन्नाधयो व्याधयो नृप ॥३६॥
वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्याः प्रातर्वसंतसमये समुपस्थिते च ।
संप्राश्य चूतकुसुमं सह चंदनेन सत्यं हि विप्रपुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात् ॥३७॥
चूतमग्रं वसंतस्य माकंद कुसुमं तव । सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये ॥३८॥
पञ्चम्यां माघमासेऽपि चूतपुष्पं सचन्दनम् । प्राशनीयं नरैर्भक्त्या कलकंठो भविष्यति ॥३९॥
चूतपुष्पप्राशनेन कोकिलास्वरवत्स्वरः । भविष्यति मानवानां कलकंठो मनोरमः ॥४०॥
सीतारामं चूतपुष्पैस्तथा कोमलपल्लवैः । पूजयेत्प्रत्यहं भक्त्या दोलकस्थं महोत्सवैः ॥४१॥
चैत्रकृष्णप्रतिपदि चूतपुष्पं सचन्दनम् । पीत्वा महोत्सवेनैव सीतारामं प्रपूजयेत् ॥४२॥

विशेष बातें हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। वसन्तपूजासे एक दिन पहले गणेशजीका पूजन करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ माघशुक्ल चतुर्थीको गणपतिका पूजन तथा उपवास करना चाहिए ॥ २७ ॥ इस तरह जो व्रत और गणपतिका पूजन करता है, वह प्राणी देवताओं तथा असुरोंका भी पूजनीय हो जाता है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि माघशुक्ल की चतुर्थीको उपवास करके गणेशजीका पूजन और रात्रि भर जागरण करें। इसका नाम 'कुन्द'चतुर्थी है। इसलिये इस रोज कुन्दके फूलोंसे गणेशजीका पूजन करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ माघशुक्लकी पञ्चमीको 'श्रीपंचमी' समझकर उस रोज रामचन्द्रजीका श्रीसे पूजन करना चाहिए। इससे यह मतलब निकला कि माघ शुक्ल चतुर्थीको श्रीसे पूजन करके पञ्चमीको कुन्दके फूलोंसे अपनी समृद्धिके लिये पूजन करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विशेष अच्छा तो यह हो कि रामचन्द्रजीको आम्रवृक्षके नीचे ले जाय और झूलेमें बिठाकर पूजन करे। यदि ऐसा न कर सके तो घर ही में पूजन कर ले ॥ ३२ ॥ चैत्रमास लगते ही प्रतिपदाको सूर्योदयके समय आवश्यक कामोंसे निबटकर पितरोंका तर्पण करे और सब प्रकारके दुःखकी शान्तिके निमित्त होलिकाभूमिकी वन्दना करता हुआ कहे-हे होलिके! इन्द्र, ब्रह्मा तथा शङ्करजीने आपकी वन्दना की है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अतएव हे देवि! तुम मेरे लिये भी विभूतिदायिनी बन जाओ। परम पवित्र चैत्रके महीनेमें पुष्य नक्षत्र और प्रतिपदाको जो मनुष्य श्वपच (डोम) को छूकर स्नान करता है, उसे न किसी प्रकारका पातक लगता है और न किसी प्रकारकी आधि-व्याधि ही सताती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जाड़ेके दिन बीत जाने और वसन्त ऋतुके आनेपर चैत्रशुक्लपक्षकी पूर्णिमाका प्रातःकाल चन्दनके साथ आमका बौर चाटे तो हे विप्र! वह प्राणी साल भर बड़े सुखसे रहता है ॥ ३७ ॥ बौरको चाटते समय 'चूतमग्रं वसन्तस्य' यह मंत्र पढ़ता जाय। जिसका मतलब यह है कि हे सहकार वृक्ष! मैं वसन्तऋतुके अग्रिम भागमें तुम्हारा फूल चन्दनके साथ इस वास्ते चाट रहा हूँ कि मेरी सब अभिलषित कामनायें पूर्ण हो जायँ ॥ ३८ ॥ माघमासकी वसन्त पञ्चमीको भी चन्दनके साथ बौर चाटना चाहिये। ऐसा करनेसे उसका स्वर कोकिलके समान मीठा हो जाता है ॥ ३९ ॥ उस दिन आम्रपुष्पका प्राशन करनेसे प्रत्येक मनुष्यका स्वर कोयलके स्वरकी तरह मीठा हो सकता है ॥ ४० ॥ प्रतिदिन सीता तथा रामको झूलेमें बिठाकर आमके बौर तथा कोमल पल्लवोंसे सोत्साह पूजन करे ॥ ४१ ॥ चैत्रकृष्णकी प्रतिपदाको चन्दनके साथ आमका

एवं तच्च दिनं नीत्वा ततश्चाग्रे दिनत्रयम् । नानोत्सवसुगीताद्यैर्नीत्वा चैव ततः परम् ॥४३॥
पञ्चम्यां चैत्रकृष्णेऽपि सौभाग्यद्रव्यसङ्कुलैः । स्नात्वा केशरपालाशकृतरागैः शुभावहैः ॥ ४॥
चित्रितानि हि वासांसि परिधाय नरोत्तमाः । नानासुगंधतैलाद्यैरभ्यङ्गं तूर्यनिस्वनैः ॥४५॥
जानक्यै रामचन्द्राय कृत्वा तीर्थोदकैः शुभैः । केशरादिभी रागैश्च वासांसि चित्रितानि हि ॥४६॥
दत्त्वा रामाय सीतायै ततो भक्त्या प्रपूजयेत् । वसंतोद्भवपुष्पैश्च नानामंगलपूर्वकम् ॥४७॥
नानादानानि देयानि निजमांगल्यहेतवे । नानासुगंधद्रव्याणि गृहीत्वा च परस्परम् ॥४८॥
एकैकोपरि सिंचेच्च महामांगल्यदायकम् । मिष्टान्नैर्भोजयेद्विप्रान् स्वयं चापि सुहृज्जनैः ॥४९॥
भोक्तव्यं तु वसंतर्तौ पञ्चम्यां मानवैः सुखम् । वसन्तपञ्चमीनाम्नी महापुण्यात्मिका सिता ॥५०॥
पक्षे पक्षे तु पञ्चम्यामारभ्य माघपञ्चमीम् । एवं रामं पूजयेच्च यावद्वैशाखपञ्चमी ॥५१॥
विशेषेण नवम्यां हि पक्षे पक्षे प्रपूजयेत् । अथवा माघशुक्लायां कृष्णायां चैत्रमासि वै ॥५२॥
कृष्णायां माधवे चापि पञ्चम्यां पूजयेन्नरः । महोत्साहेन श्रीरामो दोलकस्थोऽतियत्नतः ॥५३॥
ततश्चैत्रशुक्लपक्षे प्रतिपदि नरोत्तमैः । तैलाभ्यङ्गं स्वयं कृत्वा रामायाभ्यङ्गमाचरेत् ॥५४॥
पूजयेन्नवरात्रं तं यावत्सा नवमी तिथिः । वत्सरादौ वसंतादौ बलिराज्ये तथैव च ॥५५॥
तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते । अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रे महोत्सवे ॥५६॥
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत् । प्रपामुत्सृजेद्विद्वान्मंत्रेणानेन मानवः ॥५७॥
अरण्ये निर्जले देशे पथि ग्रामेऽथवा शुभा । प्रपेयं सर्वसामान्याद्भूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥५८॥
अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः । प्रतिवार्षं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम् ॥५९॥
देवालयेषु लिंगानां देयाश्चोपगलंतिकाः । प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना ॥६०॥

और पोकर सीतारामकी पूजा करनी चाहिए ॥ ४२ ॥ इस तरह वह दिन तथा आगेवाले तीन दिन बिताकर आगेवाले तीन दिन विविध प्रकारके उत्सवोंके साथ बिताये । तदनन्तर चैत्रकृष्ण पञ्चमीको मंगलमय सौभाग्यद्रव्योंके साथ स्नान करके केसरका उबटन लगाकर तरह-तरहके कपड़े पहने और नाना प्रकारके बाजोंके साथ सुगन्धित तेल आदि लगाकर जानकी तथा रामको पुनीत तीर्थजलसे स्नान कराके चित्र-विचित्र वस्त्र पहनाये । इसके अनन्तर वसन्तके पुष्पोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करे और अपने कल्याणके निमित्त नाना प्रकारके दान दे । इसके अनन्तर नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्यमिश्रित जलोंको लेकर लोग परस्पर एक दूसरेपर छोड़ें । अच्छे-अच्छे पदार्थ ब्राह्मणोंको भोजन करायें और स्वयं भी अपने मित्रोंके साथ भोजन करें ॥ ४३-४९ ॥ यह वसन्त पञ्चमी बड़ी पवित्र तिथि है । इसलिये लोगोंको चाहिए कि इस रोज अच्छे-अच्छे पदार्थ बनाकर स्वयं खायें और अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी खिलायें ॥ ५० ॥ इस तरह माघ मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे लेकर वैशाख पञ्चमी पर्यन्त रामकी पूजा करनी चाहिये ॥५१॥ विशेषकर प्रत्येक पक्षकी नवमीको पूजन करे अथवा माघके शुक्लपक्षमें, चैत्रके कृष्णपक्षमें और वैशाखके भी कृष्णपक्षमें पञ्चमीको रामचन्द्रजीको पालनेमें बैठाकर अतिप्रयत्न और उत्साहके साथ पूजन करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके बाद चैत्र शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको स्वयं अपने शरीरमें उबटन लगाये ॥ ५४ ॥ इस तरह नौ रात्रि पर्यन्त अर्थात् जबतक नवमी तिथि न आये, तबतक संवत्सरके आदिमें जो प्राणी तेल-उबटन नहीं लगाता, वह नरकगामी होता है । फाल्गुनमासकी समाप्ति और चैत्रमासके प्रारम्भमें किसी पवित्र दिन अथवा ब्राह्मण जो दिन बतला दे उस रोजसे पौशाला बैठाकर जलदान प्रारम्भ करे । विद्वान् मनुष्यको चाहिए कि प्रपादानके प्रारम्भमें 'अरण्ये प्रान्तरे' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण कर लिया करे ॥ ५५-५७ ॥ अरण्य, निर्जल प्रदेश, रास्ता अथवा ग्राममें सर्वसाधारणके लिए इस पौसरेकी स्थापना कर रहा हूँ । इसके दानसे मेरे पिता-पितामह आदि पितर तृप्त हों । इस प्रकार उसकी स्थापना करके चार महीने तक निरन्तर जलदान करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ यदि कोई प्राणी प्रपादानका पुण्य प्राप्त करना चाहता हो और उसमें दान करनेकी सामर्थ्य न हो तो उसे चाहिए वह शिवालयमें शिवलिंगपर